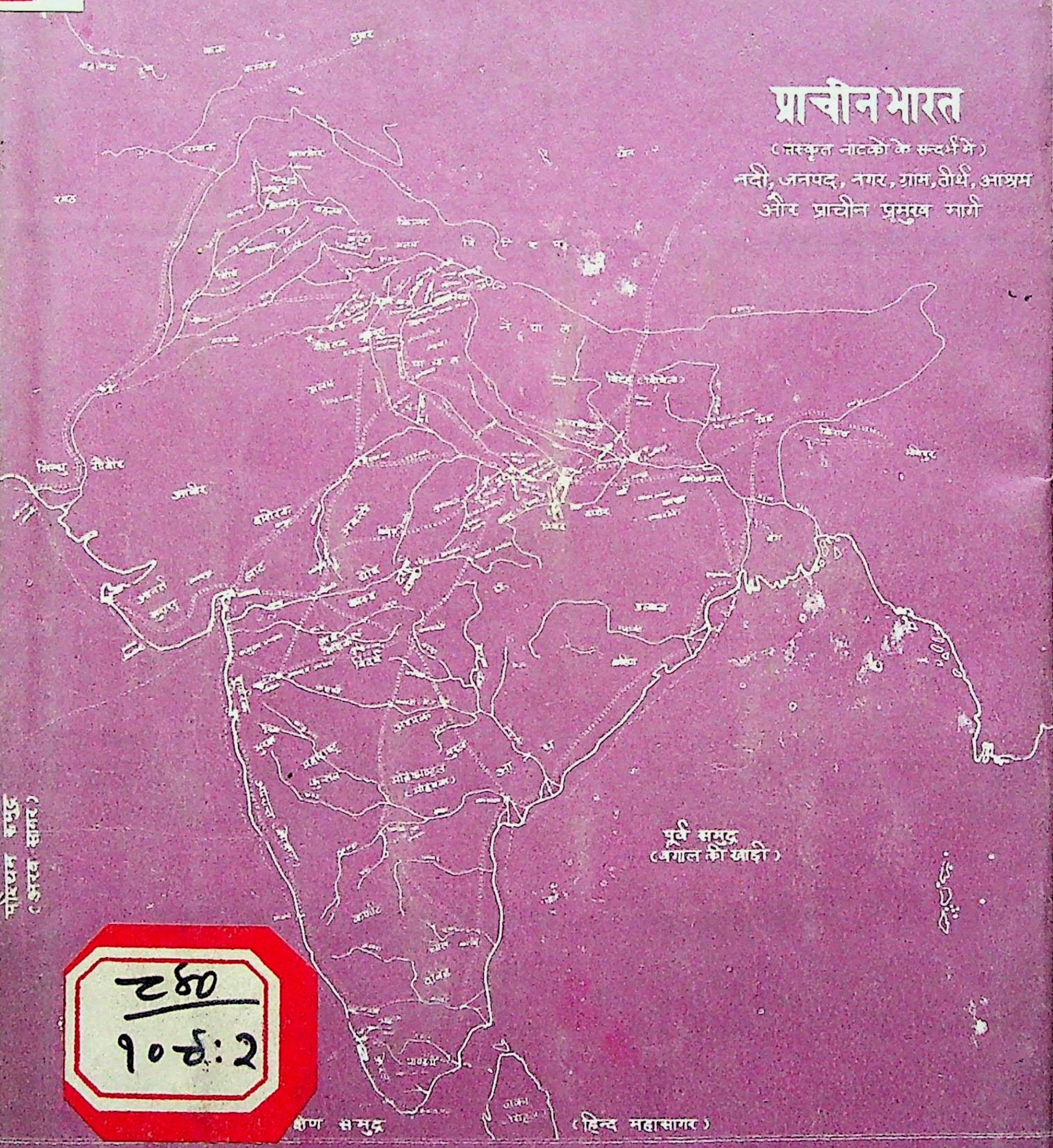
संस्कृतनाटकों का भौगोलिक परिवेश



—डॉ॰ कृष्णकुमार

संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश

(Geographical Horizon of Sanskrit Drama)

डा० कृष्णकुमार
एम.ए., साहित्याचार्य, पी-एच.डी., डी.लिट.
निदेशक
प्राच्य विद्या अकादमी, कनखल

मयंक प्रकाशन, कनखल (हरिद्वार)

Due on	Borrower's Name	Returned on

Due on	Borrower's Name	Returned on

पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या............ आगत संख्या 122325

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित हैं । इस तिथि सहित ३०वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा ।

संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश

प्रकाशक:
मयंक प्रकाशन
मिश्रा बाग, हनुमानगढी
कनखल (हरिद्वार)

१९९४

मूल्य: एक सौ पचीस रुपये मात्र

मुद्रक:
Competent Printographics
54 - Civil Lines, Roorkee.

संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश

डा० कृष्णकुमार
एम० ए०, साहित्याचार्य,
पी० एच० डी०, डी० लिट्०

मयंक प्रकाशन
मिश्रा बाग, हनुमानगढी
कनखल (हरिद्वार)

लेखक की अन्य प्रकाशित रचनायें:-

१. भारतीय संस्कृति के आधार तत्त्व
२. अलङ्कारशास्त्र का इतिहास
३. वैदिक साहित्य का इतिहास
४. संस्कृत साहित्य का इतिहास
५. पं० अम्बिकादात्त व्यास-एक अध्ययन
६. ऋक्सूक्त-सुधाकर
७. ऋक्सूक्त-संग्रह
७. चतुर्वेद-सूक्त-संग्रह
९. वैदिक-सूक्त-संग्रह
१०. विषविज्ञान
११. पोषण के लिए खनिज और विटामिन
१२. संस्कृत-नाटक-सूक्तितरङ्गिणी
१३. छन्दोऽलङ्कारप्रकाश
१४. प्राचीन कथायें
१५. गढ़वाल के प्रमुख तीर्थ
१६. गढ़वाल के संस्कृत अभिलेख
१७. उदयनचरितम् (संस्कृत उपन्यास)
१८. ध्वन्यालोक व्याख्या
१९. अभिज्ञानशाकुन्तलम् व्याख्या
२०. प्रियदर्शिका व्याख्या
२१. प्रतिमानाटकम् व्याख्या
२२. हर्षचरितम् पञ्चम उच्छ्वास व्याख्या
२३. किरातार्जुनीयम् प्रथम सर्ग व्याख्या
२४. रघुवंशम् द्वितीय सर्ग व्याख्या
२५. रघुवंशम् त्रयोदश सर्ग व्याख्या
२६. कुसुमलक्ष्मी व्याख्या
२७. शिवराजविजय व्याख्या
२८. अस्ति कश्चिद् वागर्थीयम् (संस्कृत नाटक)
२९. संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश
३०. **Descriptive Catalogue of Sanskrit Manusripts Part I**
३१. **Descriptive Catalogue of Sanskrit Manusripts Part II**
३२. **Descriptive Catalogue of Sanskrit Manusripts PartIII**
३३. संस्कृत नाटकों का वानस्पतिक पर्यावरण
३४. संस्कृत नाटकों का जीव-जगत्
३५. चौरपञ्चाशिका
३६. अस्ति कश्चिद् वाग्विशेष:
३७. अन्त:स्रावी ग्रन्थियां
३८. प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास
३९. तपोवनवासिनी (संस्कृत उपन्यास)
४०. केदारखण्ड पुराण (चार खण्डों में)
४१. मेघदूतानुशीलनम्
४२. गढवाल के प्राचीन अभिलेख एवं उनका ऐतिहासिक महत्त्व

Sanskrit Natakon ka Bhaugolika Parivesh

(Geographical Horizon of Sanskrit Drama)

संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश

संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश

डा० कृष्णकुमार
एम.ए., साहित्याचार्य, पी-एच.डी., डी.लिट्.
विभागाध्यक्ष संस्कृत
गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल

मयंक प्रकाशन
मुरादाबाद

संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश

डा० कृष्णकुमार

प्रकाशक :

मयंक प्रकाशन
भूषण भवन, मण्डी बांस
मुरादाबाद

मूल्य—65.00
1983 ई०

विशेष डीलक्स संस्करण

मुद्रक :

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी-मुद्रणालय
हरिद्वार

समर्पण

प्राचीन महान् संस्कृत कवियों के प्रति

जिनकी रचनाओं ने महान् भारत-राष्ट्र की भावनात्मक और राजनीतिक एकता का परिपोषण करके राष्ट्रीय भावनाओं को उद्‌बोधित करते हुये भारतीय संस्कृति के प्रचार-प्रसार को प्रोत्साहित किया।

आ शैलेन्द्राच्छिलान्तःस्खलितसुरधुनीशीकरासारशीता-
त्तीरान्तान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य ।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्तां
चूडारत्नांशुगर्भास्तव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः ॥

मुद्राराक्षस 3.19 ॥

प्राक्कथन

प्राचीन समय के भारतीय लेखकों ने भूगोल विषय पर वर्तमान वैज्ञानिक युग के सदृश यद्यपि विशिष्ट एवं व्यवस्थित साहित्य का सृजन नहीं किया था, तथापि उस युग के विद्वानों का भौगोलिक ज्ञान कम नहीं था। विभिन्न पुराणों का मुख्य विषय भूगोल न होने पर भी उनमें भूगोल से सम्बन्धित विस्तृत प्रसङ्ग हैं। अन्य साहित्य से भी विशद भौगोलिक जानकारी प्राप्त होती है। प्राचीन भारतीय मनीषी अपने विशाल देश के भूभागों से तो भली भांति परिचित थे ही, भारत के बाहर के देशों से भी परिचित थे। विशेष रूप से भारतीय सीमाओं से लगे देशों, समुद्रों और द्वीपों का सटीक ज्ञान प्राप्त होने के सबल प्रमाण उपलब्ध हैं। प्राचीन विवरणों में उपलब्ध कुछ स्थानों को छोड़ कर अधिकांश स्थानों की पहचान की जा सकी है। इस भौगोलिक परिज्ञान ने उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में दक्षिण समुद्र तक और पश्चिम में वंक्षु (आक्सस या आमू) की तटवर्ती भूमियों से लेकर पूर्व में ब्रह्मपुत्र की घाटी कामरूप (आसाम) तक सम्पूर्ण भारतवर्ष की भावनात्मक एवं राजनीतिक एकता को स्थापित करने में महत्वपूर्ण भाग लिया था।

प्राचीन समय के भौगोलिक विवरणों से विदित होता है कि वंक्षु नदी भारतवर्ष की उत्तर-पश्चिमी सीमा का निर्धारण करती थी। रघु की सेनाओं ने इस नदी के तट पर पहुंच कर हूणों को पराजित किया था। इस विशाल भूभाग में अधिकांश समय में अनेक स्वतन्त्र राज्यों के विद्यमान रहने पर भी धर्म और संस्कृति ने सारे देश को एक सूत्र में पिरो रखा था। संस्कृत कवियों ने सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप की राजनीतिक एकता की कल्पना अपनी कृतियों में की है।

प्राचीन भारतीय मनीषियों और वीर पुरुषों को भारत से बाहर के देशों का भी परिज्ञान था। उन्होंने उन देशों में जाकर धार्मिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक उपनिवेशों की स्थापना की थी। भारतीय ऋषि और तपस्वी अपने धर्म तथा संस्कृति का प्रसार सम्पूर्ण एशिया में दक्षिण-पूर्वी द्वीपसमूह में और उससे भी परे के देशों में करने में समर्थ हुये थे। भारतीय

वीरों ने अनेक देशों में जाकर अपने राजनीतिक प्रभुत्व को स्थापित किया था तथा उन देशों को सभ्य बनाया था। भारतीय व्यापारियों के जलपोत अपनी पताकायें फहराते हुये बंगाल की खाड़ी, अरब सागर, हिन्द महासागर, प्रशान्त महासागर और भूमध्य सागर की यात्रायें करते थे। उनका व्यापार चीन, दक्षिण-पूर्वी द्वीपसमूह, अफ्रीका, अरब देशों और यूरोप के साथ प्रचुर मात्रा में था। समुद्र पार के देशों से भी भारतीय व्यापार के प्रमाण अनेक सूत्रों से प्राप्त होते हैं।

प्राचीन साहित्य में, विशेष रूप से 'रामायण', 'महाभारत' और पुराणों में प्राचीन युग की अति मूल्यवान् सामग्री सुरक्षित है। वेद तथा अन्य शास्त्रीय ग्रन्थ, ज्योतिष, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, अलङ्कारशास्त्र आदि से सम्बन्धित ग्रन्थ भी भौगोलिक जानकारियों को प्रस्तुत करते हैं। पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' तथा पतञ्जलि का 'महाभाष्य' भी इस प्रकार की सूचनाओं के अच्छे स्रोत हैं। राजशेखर की 'काव्यमीमांसा' भी महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत काव्यों से भी भूगोल-सम्बन्धी सूचनायें प्राप्त होती हैं। कालिदास; भारवि, माघ, श्रीहर्ष आदि के काव्यों का उपयोग तत्कालीन भूगोल को जानने के लिये किया जा सकता है।

बुद्ध तथा बुद्धोत्तर भारत को जानने के लिये बौद्धों का संस्कृत तथा पालि का साहित्य महत्वपूर्ण है। बौद्ध साहित्य से ही छठी शताब्दी ईसवी पूर्व के 16 महाजनपदों की स्थिति का यथार्थ बोध होता है। त्रिपिटक साहित्य, जातक कथायें, 'दीपवंश,' 'महावंश', 'ललितविस्तर', अवदान साहित्य आदि में अनेक स्थानों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। जैन साहित्य भी भौगोलिक जानकारी को प्रदान करता है। प्राचीन अभिलेख और सिक्के भी स्थान-विशेषों का निर्धारण करने में सहायक हो जाते हैं।

प्राचीन समय से ही अनेक विदेशी पर्यटक और यात्री भारतवर्ष का भ्रमण करते रहे हैं। उन्होंने अपने संस्मरणों में यहां के विविध स्थानों की जानकारी दी है। हिकेटियस (549–486 ई0 पू0), हेरोडोटस (484–431 ई0 पू0) और टेसियस (398 ई0 पू0) के संस्मरणों में भारतीय स्थानों के विवरण दिये गये हैं। सिकन्दर के समय आये यूनानी इतिहासकार भी उस युग की भौगोलिक जानकारी प्रस्तुत करते हैं। चन्द्रगुप्त की राजसभा में राजदूत के रूप में रहने वाले मेगास्थनीज के इण्डिका (Indika) से हमें महत्व-पूर्ण भौगोलिक जानकारी मिलती है। एरियन, प्लिनी, 'पेरीप्लस आफ दी

एरिथ्रियन सी' और टालेमी के विवरण भी प्राचीन भौगोलिक जानकारी के अच्छे स्रोत हैं।

प्राचीन समय में अनेक चीनी तीर्थ यात्रियों ने भारतवर्ष का भ्रमण किया था। उनके संस्मरण वर्तमान में प्राप्य हैं। पांचवीं शताब्दी के फाहियान, सातवीं के ह्वेनसांग, इत्सिंग और सुंगयुंग के भारत-भ्रमण के संस्मरण उस युग के भौगोलिक स्थानों का विशद परिचय देते हैं। प्राचीन समय का भूगोल जानने में मुस्लिम यात्री तथा लेखक भी प्रकाश में आते है। इनमें अलबरुनी प्रमुख है। भारत के विषय में लिखी गई–'तहकीक-ए-हिन्द' पुस्तक में उसने इस देश के भूगोल का भी विवरण दिया है।

वर्तमान समय में प्राचीन काल के भूगोल पर विस्तृत कार्य हुआ है। प्राचीन भारतीय साहित्य और प्राचीन विदेशी यात्रियों और लेखकों के संस्मरणों के आधार पर विद्वान् समालोचकों ने भारत के प्राचीन भौगोलिक स्वरूप को निर्धारित करके स्थानों को सुनिश्चित करने का प्रयास किया है। सम्भवतः इस सम्बन्ध में प्रथम महत्वपूर्ण कार्य जनरल कनिंघम की पुस्तक 'एन्शिएन्ट ज्योग्राफी आफ इन्डिया' है। इस पुस्तक का मुख्य आधार फाहियान, ह्वेनसांग और यूनानी लेखकों के विवरण हैं। इसके अनन्तर अनेक भारतीय और विदेशी लेखकों ने भी इस विषय पर कार्य किया है। इसकी लम्बी सूची देना यहां सम्भव नहीं होगा। श्री विमलचरण लाहा ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल' (Historical Geography of Ancient India) में इन कार्यों की विस्तृत सूची प्रस्तावना में दी है। इससे विदित होता है कि विद्वानों ने इस विषय को कितना महत्वपूर्ण समझा था।

प्राचीन भारत का क्रमबद्ध इतिहास छठी शताब्दी ई० पू० से प्रारम्भ होता है। यह समय भगवान् बुद्ध और उनके बाद का है। महाभारत-युद्ध के बाद इस समय तक भारतवर्ष में विभिन्न शक्तिशाली राजतन्त्रों और प्रजातन्त्रों की स्थापना हो गई थी। छठी शताब्दी ई0 पू0 के समय के 16 महाजनपद भारतीय इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हैं। भारत के प्राचीन ऐतिहासिक युग को मुस्लिम आक्रमणों से पूर्व दसवी शताब्दी तक का मानना अधिक उचित होगा। यह हिन्दू युग रहा तथा इस युग में इस देश में भारतीय धर्म और संस्कृति का अच्छा प्रचार और प्रसार रहा। इस युग के भौगोलिक वृत्तान्तों को जानने के लिये अनेक आन्तरिक और बाह्य प्रामाणिक स्रोत हैं। इनमें नाटक भी तत्कालीन जानकारी के अच्छे स्रोत हो सकते हैं।

संस्कृत साहित्य के अनुसार नाटकों के लेखन की परम्परा अति प्राचीन होने पर भी प्राचीनतम नाटक भास के ही उपलब्ध हैं। भास का समय सामान्यतः चौथी शताब्दी ई0 पू0 माना गया है। अतः नाटकों के आधार पर प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति को जानने के लिये भास से लेकर दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दिङ्नाग तक के नाटकों का अध्ययन करना समुचित होगा।

चतुर्थ शताब्दी ई0 पू0 से दसवीं शताब्दी तक का समय भारतीय इतिहास का गौरवमय युग रहा। 'रामायण' तथा 'महाभारत' में वर्णित राजवंशों के अनन्तर चतुर्थ शताब्दी ई0 पू0 में मौर्य सम्राट् ही ऐसे हुये, जिन्होंने समग्र भरतखण्ड को, वंक्षु (आमू) से लेकर कामरूप तक और हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक एक राजनीतिक शासन के अन्तर्गत समाविष्ट किया था। इसके अनन्तर भी भरतखण्ड के विभिन्न स्वतन्त्र जनपदों को अनेक महत्वाकांक्षी राजाओं ने इस राजनीतिक ऐक्य में बांधने के प्रबल प्रयत्न किये थे। इनमें गुप्तवंशी राजा सबसे प्रसिद्ध हैं। संस्कृत कवियों ने प्रायः अपने नाटकों में भारत की राजनीतिक एकता को स्थापित करने के आदर्श उपस्थित किये थे। विशाखदत्त ने, जो गुप्तवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्त का समकालीन रहा, हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्र तक सम्पूर्ण भारतवर्ष के एक छत्र शासन में बंधा होने की कामना की है[1]।

प्रस्तुत भौगोलिक अध्ययन के लिए चतुर्थ शताब्दी ई० पू० के भास कवि से लेकर दसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध के दिङ्नाग कवि तक के नाटकों को लिया गया है। भास का समय मौर्य साम्राज्य का पूर्ववर्ती तथा उसके उत्कर्ष का युग है। सम्भवतः कौटिल्य भी इसी युग में हुआ था। भास के 13 नाटकों में उस युग के भारतवर्ष का अति विस्तृत भौगोलिक परिचय मिलता है। भास के अनन्तर शूद्रक (ई0पू0 दूसरी शताब्दी), कालिदास (ई0पू0 प्रथम शताब्दी), विशाखदत्त (चतुर्थ शताब्दी), चतुर्भाणी के लेखक शूद्रक-ईश्वरदत्त-वररुचि-श्यामिलक (पंचम शताब्दी), हर्ष (सप्तम शताब्दी), भट्टनारायण (सप्तम-शताब्दी), भवभूति (सप्तम-अष्टम शताब्दी), महेन्द्रविक्रवर्मा (सप्तम-शताब्दी)

---

1. आशैलेन्द्राच्छिलान्तःस्खलितसुरधुनीशीकरासारशीतात्
तीरान्तान्नैकरागस्फुरितमणिरुचो दक्षिणस्यार्णवस्य ।
आगत्यागत्य भीतिप्रणतनृपशतैः शश्वदेव क्रियन्तां
चूडारत्नांशुगर्भास्तिव चरणयुगस्याङ्गुलीरन्ध्रभागाः ।। मुद्राराक्षस 3.19 ।।

बिज्जिका (सप्तम शताब्दी), यशोवर्मन (अष्टम शताब्दी), मुरारि (अष्टम शताब्दी), अनङ्गहर्ष (अष्टम–नवम शताब्दी), शक्तिभद्र (नवम शताब्दी), कुलशेखरवर्मन् (नवम शताब्दी), दामोदर मिश्र (नवम शताब्दी), क्षेमीश्वर (नवम-दशम शताब्दी), राजशेखर (नवम-दशम शताब्दी) और दिङ्नाग (दशम शताब्दी का उत्तरार्ध) के नाटकों में भौगोलिक स्वरूप तथा स्थानों के वर्णनों में प्राचीन भारत की गौरवमयी झांकी प्राप्त होती है। विभिन्न समयों में विभिन्न स्थानों के कवियों के वर्णन हमको व्यवस्थित तथा सही जानकारी प्रदान करते हैं।

इन संस्कृत नाटकों से यह भी विदित होता है कि प्राचीन समय में आर्य सभ्यता का प्रसार सम्पूर्ण भारतवर्ष में तो था ही, विदेशों में भी भारत का सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रभाव था। व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित हो चुके थे। भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमायें सिन्ध नदी और हिन्दूकुश को भी पार करके वर्तमान अफगानिस्तान के उत्तर तक विस्तृत थीं। इतिहास बताता है कि किस प्रकार समय के व्यतीत होने के साथ-साथ ये सीमायें निरन्तर संकुचित होती गईं। पश्चिमोत्तर सीमाओं से आक्रमणकारियों ने भारत में प्रवेश किया। इस देश को पददलित करके उन्होंने आर्य सभ्यता, संस्कृति और धर्म का विनाश किया। वर्तमान समय में तो भारतवर्ष की सीमायें संकुचित होकर रावी (इरावती) नदी के भी पूर्व में आ गई हैं और पूर्वी भारत से भी इस देश का बहुत बड़ा भाग पृथक् होकर विदेश बन गया है। इन भूभागों से आर्य धर्म और संस्कृति का भी सम्पूर्ण रूप से निष्कासन हो चुका है, राजनीतिक प्रभाव का तो कहना ही क्या है। तक्षशिला, जो किसी समय भारतीय शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था, वहां आज उस विश्वविद्यालय का नाममात्र भी अवशिष्ट नहीं है। वर्तमान भारतवर्ष की सीमाओं के अन्तर्गत क्षेत्रों में भी आर्य सभ्यता, संस्कृति और धर्म का ह्रास होता जा रहा है। धर्म, विद्या और संस्कृति के प्रसिद्ध केन्द्र काश्मीर में इसका ह्रास स्पष्ट है। ऐतिहासिक किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि 'नैषधीयचरितम्' के रचयिता श्रीहर्ष को अपने काव्य की श्रेष्ठता को प्रमाणित कराने के लिए काश्मीर जाना पड़ा था। महाकवि विल्हण ने लिखा है कि काश्मीर ही शारदा (सरस्वती) का देश है, अन्यत्र वैसी कवितायें नहीं होतीं[1]।

---

1. सहोदराः कुङ्कुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
   न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः॥
   विक्रमाङ्कदेवचरितम् 1 21॥

प्राचीन संस्कृत साहित्य के आधार पर प्राचीन भारत के भूगोल को प्रस्तुत करने के अनेक प्रयत्न हुये हैं। परन्तु नाटकों को आधार बना कर इस प्रकार का प्रयास नहीं किया गया। लोकजीवन के अधिक समीप होने के कारण नाटकों में वर्णित तथा प्रतिबिम्बित तथ्य अधिक स्पष्ट, सत्य तथा ग्राह्य हैं। यद्यपि कुछ नाटकों में कल्पनायें भी हैं, तथापि यथार्थ सत्य को पृथक् किया जा सकता है। अतः इस माध्यम से प्राचीन भौगोलिक जानकारी अधिक उपयोगी तथा भावोद्दीपक है।

भूगोल बहुत व्यापक विषय है। प्रदेशों की जल-वायु, विभिन्न परि-स्थितियां, निवासी, रहन-सहन, खनिज, उद्योग-व्यवस्था, आदि के विवरण इसके अन्तर्गत आ सकते हैं। इन सभी तथ्यों के वर्णन के लिये बहुत विस्तार की आवश्यकता है। प्रस्तुत अध्ययन सीमित है। इसके अन्तर्गत केवल प्राचीन संस्कृत नाटकों में वर्णित तथा सङ्केतित भौगोलिक नामों की आधुनिक सन्दर्भ में पहचान की गई है।

संस्कृत नाटकों में उल्लिखित भौगोलिक स्थानों की सूची विविध तथा दीर्घ है। इन स्थानों का वर्गीकरण करके प्रस्तुत अध्ययन सात अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय में ब्रह्माण्ड, पृथिवी और भारतवर्ष का भौगोलिक विभाजन है। दूसरे अध्याय में पर्वतों वनों, सरोवरों और समुद्रों का परिचय है। तीसरे अध्याय में नदियों तथा नदी-सङ्गमों का वर्णन है। चौथे अध्याय में प्राचीन भारतीय जनपदों को लिया गया है। पाँचवें अध्याय में भारत के जातीय राज्यों और विदेशी जनपदों के सम्बन्ध में बताया गया है। छठे अध्याय में नगरों और ग्रामों का परिचय है। सातवें अध्याय में तीर्थों और ऋषियों के आश्रमों का विवरण है। अन्त में दो परिशिष्ट हैं। प्रथम परिशिष्ट में आलोच्य नाटकों का परिचय है। दूसरे परिशिष्ट में सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची है। मानचित्रों द्वारा वनों, पर्वतों, नदियों तथा संगमों, जनपदों, नगरों, तीर्थों, आश्रमों आदि की स्थिति स्पष्ट की गई है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन तथा प्रकाशन में अनेक विद्वान् महानुभावों का सहयोग प्राप्त हुआ है। इनके प्रति कृतज्ञता होना स्वाभाविक है। आदरणीय गुरुवर डा. गोविन्द त्रिगुणायत, रीडर एवं विभागाध्यक्ष संस्कृत, के. जी के. कॉलेज मुरादाबाद ने अति कृपा एवं स्नेह के भाव से इस पुस्तक का पुनरीक्षण करके बहुमूल्य सुझाव देने की कृपा की है। उन्हीं के अध्यापन एवं निर्देशों से मैं

इस पुस्तक को पूर्ण करने की योग्यता प्राप्त कर सका। अनुज डा. भारतभूषण विद्यालङ्कार प्रवक्ता वेद विभाग गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय के प्रति स्नेह अविस्मरणीय है। इन्होंने पुस्तक के प्रूफ देखने तथा अनुक्रमणिका आदि बनाने में बहुमूल्य सहायता प्रदान की है। अग्रज डा. हरिप्रकाश जी, व्यवसायाध्यक्ष गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी का स्नेह ही इस पुस्तक के मुद्रण के लिए सहायक रहा है। इनके प्रति मैं किन शब्दों में आभार प्रकट करूं, समझ नहीं आ रहा है।

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय के सहयोग से ही इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका है। डा. रणवीर रांग्रा निदेशक, श्री राजमल जैन उपनिदेशक, श्री देवेन्द्रदत्त नौटियाल उपनिदेशक और श्री शिवतोषदास सहायक निदेशक का मैं बहुत अधिक अनुगृहीत हूं, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक की गुणवत्ता का अनुभव करके इसको केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय की योजना के अन्तर्गत स्वीकृत किया।

प्राचीन संस्कृत नाटकों के आधार पर किया गया भारत की भौगोलिक स्थितियों का यह अध्ययन ज्ञान के अभिलाषी जनों के लिये रोचक और उपयोगी होगा। इससे प्राचीन भारत की गौरवमयी परम्पराओं की अभिव्यक्ति होकर भारतीय जनों के मनों में उनके प्रति गौरव, श्रद्धा और विश्वास की भावनायें जागृत होंगी। इनके माध्यम से वे वर्तमान में भी आत्मविश्वास से परिपूर्ण होंगे, ऐसी लेखक को आशा है।

माघी संक्रान्ति सं० २०३६ **कृष्णकुमार**

विषय-सूची

ग्रन्थ-सङ्केत

अनर्घराघव—अन
अभिज्ञानशाकुन्तल—अभिज्ञा
अभिषेक नाटक—अभि
अर्ली हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म - अहिबु
अविमारक—अवि
आश्चर्यचूडामणि—आ
इन्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली—इहिक्वा
उत्तररामचरित—उत्त
उभयाभिसारिका—उभ
उरुभङ्ग—उरु
ऐतिहासिक नामावली—ऐना
ऐन्शिएन्ट इन्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन—ऐमेइ
कर्णभार—कर्ण
कर्पूरमञ्जरी—कर्पू
कल्चुरल हिस्ट्री फ्राम वायुपुराण—कहिवा
कालिदास का भारत—काभा
कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थानों का प्रत्यभिज्ञान—काकृभौप्र
काव्यमीमांसा—काव्य
कुन्दमाला—कुन्द
कुमारसम्भव—कुमार
कौमुदीमहोत्सव—कौ
चण्डकौशिक—चण्ड
चारुदत्त—चा
जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ इन्डिया—जे. ए.एस. आई.
जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल—जे. ए. एस. बी.
जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी—जे. आर. ए. एस.
डेवलपमेन्ट ऑफ ज्योग्राफिकल नालेज इन एन्शिएण्ट इण्डिया—डेज्योइ
तपतीसंवरण—तप
तापसवत्सराज—ताप
दी एन्शिएन्ट ज्योग्राफी ऑफ इन्डिया—ज्योए
दी ज्योग्राफिकल डिक्शनरी ऑफ एन्शिएन्ट एण्ड मिडीवल इन्डिया—ज्योडिएमि
दूतघटोत्कच—दूघ
दूतवाक्य—दूत

देवीचन्द्रगुप्तम्--देवी
धूर्तविटसंवाद—धूर्त
नागानन्द--ना
नैषधीयचरितम्—नैष
पञ्चरात्र—पञ्च
पद्मप्राभृतक—पद्म
पतञ्जलिकालीन भारतवर्ष—पकाभा
पाणिनिकालीन भारतवर्ष—पाभा
पादताडितक—पाद
पोलीटिकल हिस्ट्री श्राफ एन्शिएन्ट
इन्डिया—पोहिएइ
प्रतिज्ञायौगन्धरायण—प्रतिज्ञा
प्रतिमानाटक—प्रति
प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल
—प्राऐभू
प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप
—प्राभास्व
प्राचीन भारतीय परम्परा श्रौर
इतिहास—प्राभापइ
प्राचीन भारतीय साहित्य की
सांस्कृतिक भूमिका—प्राभाभू
प्रियदर्शिका—प्रिय
बालचरितम्—बाल
बालभारत—बाभा
बालरामायण--बारा
बालमीकि रामायण--रामायण
मत्तविलास—मत्त
मध्यमव्यायोग--मध्य
मनुस्मृति—मनु
महाभारत--मभा
महावीरचरितम्--महा
मालतीमाधव--माल
मालविकाग्निमित्र—माका
मुद्राराक्षस—मुद्रा
मृच्छकटिक—मृच्छ
रघुवंश—रघु
रत्नावली—रत्ना
रामाभ्युदय—रामा
विक्रमोर्वशीयम्—विक्र
विद्धसालभञ्जिका—विद्ध
वीणावासवदत्तम्—वीणा
वेणीसंहार—वेणी
संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी श्राप्टे
—श्राप्टेडि
सुभद्राधनञ्जय--सुभ
स्टडीज इन दी ज्योग्राफी श्रॉफ
एन्शिएन्ट एण्ड मिडीवल इण्डिया
—ज्योएमि
स्वप्नवासवदत्तम्—स्वप्न
हनूमन्नाटक—हनू
हिन्दू सभ्यता—हिस
हिमालयन गजेटियर—हिग
हिस्टोरिकल ज्योग्राफी श्रॉफ एन्शिएन्ट
इन्डिया—हिज्योएइ

संस्कृत नाटकों का भौगोलिक परिवेश

प्रथम अध्याय

विषय - प्रवेश

प्राचीन भारत की संस्कृति तथा इतिहास के अध्ययन के लिए उस युग के भौगोलिक परिवेश को जानना भी आवश्यक है। भौगोलिक परिवेश का उस स्थान के निवासियों तथा वहाँ की परिस्थितियों पर नियत रूप से प्रभाव पड़ता है। प्राचीन भौगोलिक परिस्थितियों का अध्ययन तत्कालीन साहित्य से किया जा सकता है। नाटक भी इस ज्ञान के अच्छे स्रोत हो सकते हैं। अतः प्राचीन संस्कृत नाटकों के आधार पर भारतवर्ष की भौगोलिक स्थितियों का अध्ययन उपयोगी होगा।

1. नाटकों में भौगोलिक जानकारी की विवेचना

संस्कृत नाटकों से प्राचीन भारतवर्ष की भौगोलिक जानकारी बहुत कुछ प्राप्त होती है। इस जानकारी को प्राप्त करने में कुछ कठिनाइयां भी हैं, क्योंकि अनेक बार इनसे भूगोल का पूरा स्पष्टीकरण नहीं होता। इसका प्रमुख कारण पौराणिक परम्पराओं पर विश्वास और कवियों की कल्पना की उड़ानें हैं। उदाहरण के रूप में 'अनर्घराघव' में मुरारि द्वारा प्रस्तुत भौगोलिक विवरण हैं। वे हिमालय से निकलने वाले झरनों के गिरने का उल्लेख दक्षिण समुद्र में करते हैं तथा प्रकाशमान औषधियों से भरे पर्वत-खण्डों से दक्षिण–समुद्र पर सेतु बंधवाते हैं[1]। भौगोलिक दृष्टि से हिमालय से निकलने वाले झरने पूर्व तथा पश्चिम समुद्र में गिरते हैं तथा प्रकाशमान औषधियां भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हिमालय पर्वत पर होती हैं।

---

1. अन सप्तम अंक।

परम्परागत पौराणिक वर्णनों के कारण नाटकों के भौगोलिक वर्णनों की यथार्थता को समझने में अनेक बार कठिनाई होती है। मुरारि ने वर्णन किया है कि लंका-युद्ध के बाद राम का विमान सीधे हिमालय पर्वत पर गया। यहां से वह मन्दराचल और कैलाश पर्वतों पर होते हुए मेरु पर जाता है। इस पर्वत की तलहटियों में चन्दन के वृक्ष हैं। यहां से यह विमान सीधा चन्द्रलोक के समीप पहुंचा है और वहां से नीचे उतर कर समुद्रतटवर्ती भूमि पर आकर अगस्त्य के आश्रम में होता हुआ पुनः उत्तर की ओर बढ़ता है[1]।

नाटकों में भारतवर्ष की सीमाओं का भी अधिक स्पष्ट सङ्केत नहीं है। इस देश के लिए जम्बूदीप, आर्यावर्त. अन्तर्वेदी, भारतवर्ष आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। विद्वानों द्वारा इन नामों की यथार्थता के सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार करने पर भी उनकी वैज्ञानिकता सन्दिग्ध बनी हुई है। सिंहल और लङ्का की भौगोलिक स्थिति पर भी विवाद है। यह भी विवादास्पद है कि ये दोनों नाम एक ही स्थान का सङ्केत करते हैं, या भिन्न स्थानों का। नाटकों में अनेक स्थानों के वर्णनों में परस्पर विरुद्धता भी है। 'हनूमन्नाटक' में एक स्थान पर सात कुलपर्वत[2] और दूसरे स्थान पर आठ कुलपर्वत कहे गये[3] हैं।

इतनी अस्पष्टताओं के होने पर भी संस्कृत नाटकों से प्राप्त भौगोलिक जानकारी काफी महत्वपूर्ण है और यह अध्ययन उस युग के स्थानों के नामों के विषय में बहुत कुछ ज्ञानकारी दे सकता है।

संस्कृत नाटकों से उपलब्ध भौगोलिक स्थितियों का विभाजन वर्णन की सुविधा के लिए निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

1. ब्रह्माण्ड, पृथिवी और भारतवर्ष का भौगोलिक विभाजन
2. भारतवर्ष के पर्वत, वन, सरोवर और समुद्र
3. नदियां
4. प्राचीन भारतीय जनपद
5. जातीय राज्य और विदेशी जनपद
6. नगर और ग्राम
7. तीर्थ और ऋषियों के आश्रम

---

1. अन सप्तम अंक ॥ 2. हनू 13.12 ॥ 3. हनू 1.26 ॥

प्रस्तुत भौगोलिक विवेचन में इन सभी स्थानों की वर्तमान सन्दर्भ में पहचान करना उपयोगी होगा। यह प्रथम अध्याय में ब्रह्माण्ड, पृथिवी और भारतवर्ष के भौगोलिक विभाजन की रूपरेखा दी जा रही है। शेष का विवरण क्रमशः अगले अध्यायों में दिया जाए ।

2. ब्रह्माण्ड और भारत का भौगोलिक विभाजन

प्राचीन पौराणिक परम्पराओं का अनुकरण करते हुए संस्कृत नाटककारों ने ब्रह्माण्ड का भौगोलिक विभाजन इस प्रकार दिया है—

ब्रह्माण्ड में सात समुद्र, दस दिशाएं, सात कुल-पर्वत, पृथिवी आदि 14 लोक, वायुमण्डल और नक्षत्र मण्डल हैं[1]। इनकी परिगणना इस प्रकार है—

(क) सात समुद्र—

राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में सात समुद्र इस प्रकार परिगणित किये हैं—

लावणो रसमयः सुरोदकः सार्पिषो दधिजलः पयःपयः ।
स्वादुर्वारिरुदधिश्च सप्तमस्तान् परीत्य त इमे व्यवस्थिताः[2] ।।

'बालरामायण' नाटक में भी उसने सात समुद्रों का वर्णन किया है— लवण, इक्षुरस, सुरा, सर्पिः, दधि, दुग्ध और जल[3]। समुद्रों की संख्या के विषय में राजशेखर ने अन्य आचार्यों के मत भी प्रस्तुत किये हैं। कुछ आचार्य केवल एक लावण समुद्र मानते हैं[4], कुछ तीन[5], कुछ चार[6] और कुछ सात[7]। 'हनूमन्नाटक' में सात समुद्रों की गणना है[8]। कुलशेखर वर्मन ने पृथिवी को सप्तसमुद्री माना था[9]।

---

1. सप्ताम्भोनिधयो दशैव च दिशः सप्तैव गोत्राचलाः ।
   पृथ्व्यादीनि चतुर्दशैव भुवनान्येकं नभोमण्डलम् ।।
   एतावत्परिमाणमात्रकटके ब्रह्माण्डभाण्डोदरे ।। हनू 13.12 ।।
2. काव्य 91.1-2 ।।
3. बारा पृ० 451 ।। 4. काव्य 91.3 ।। 5. वही 91.8 ।।
6. वही 91.17-18 ।। 7. वही 91.20-21 ।। 8. हनू 1.32 ।।
9. सुभ पृ० 150 ।।

(ख) दस दिशायें—

दिशाओं की संख्या दस कही गई है। इनमें पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण ये चार दिशायें मुख्य हैं। आग्नेय, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान चार दिशाओं के कोण हैं। ऊपर और नीचे की दो अन्य दिशायें हैं। 'विद्धसालभञ्जिका' में इन दस दिशाओं का उल्लेख है[1]।

(ग) सात कुल-पर्वत—

ब्रह्माण्ड और पृथिवी के विभाजन में सात कुल-पर्वतों का उल्लेख हुआ है। ये पर्वत पृथिवी को धारण करते हैं[2]। इनके नाम हैं – विन्ध्य, पारियात्र, शुक्तिमान्, ऋक्ष, महेन्द्र, सह्य और मलय[3]। 'हनूमन्नाटक' में एक स्थान पर कुलपर्वतों की संख्या आठ भी है। इनको कवि दिगद्रि कहता है। इनके नाम हैं-- विजय, कुमुद, नील, निषध, हिमवान्, जयन्त, कालनिषम और वाहीक[4]।

(घ) चौदह लोक—

लोकों की संख्या चौदह बताई गई है। सामान्यत. साहित्य में तीन लोक कहे गये हैं-- भूलोक, स्वर्गलोक और पाताललोक। विशद विवरण 14 लोकों का भी मिलता है। इनमें सात लोक – भूः, भुवः, स्व, महः, जनः, तपः और सत्यम् या ब्रह्मलोक एक के ऊपर क्रमशः दूसरा स्थित है। अन्य सात लोक क्रमशः पृथिवी के नीचे कल्पित किये गये हैं— अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल। पृथिवी के नीचे स्थित लोकों को सामान्यतः पाताल भी कहा गया था। इनको अगम्य समझा जाता था। यहां छिपने वाले को खोज लेना सम्भव तथा सरल नहीं था। परन्तु वीर पुरुष यहां भी पहुंच जाते थे[5]।

---

1. विद्ध 3.1 ॥ 2. आ पृ० 221 ॥

3. (क) विन्ध्यश्च पारियात्रश्च शुक्तिमानृक्षपर्वतः ।
महेन्द्रसह्यमलयाः सप्तैते कुलपर्वताः ॥ काव्य 92.16–17 ॥

(ख) महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः ।
विन्ध्यः पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥
॥ मार्कण्डेय पुराण 57.10–11 ॥

4. हनू 1.32 ॥ 5. यदि व्रजसि पातालम्–मृच्छ 2.3 ॥

लोकों की अन्य प्रकार से भी कल्पना है-- सुरलोक, मनुजलोक और असुरलोक[1]। इनमें सुरलोक ही स्वर्ग, मनुजलोक पृथिवी और असुरलोक पाताल हैं।

(ङ) वायुमडण्ल—

पृथिवी के ऊपर सभी ओर वायुमण्डल है। वायु के सात स्तर माने गये हैं— आवह, प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह, परिवह और परावह[2]। स्वर्ग और पृथिवीलोक के मध्य ये सातों आवरण रहते हैं। राजशेखर ने इनको वायु के स्कन्ध बताया था। इनकी गणना पृथिवीलोक से या स्वर्गलोक से की जाती है। पृथिवी से लगा वायुमण्डल प्रथम वायुस्कन्ध है तथा स्वर्ग से लगा सप्तम वायुस्कन्ध है[3]। कालिदास ने अन्तरिक्ष में विद्यमान परिवह नामक वायु के मार्ग का वर्णन किया है[4]। यह पृथिवीलोक की ओर से छठा है।

(च) नभोमण्डल—

पृथिवी से ऊपर दृष्टिगोचर होने वाले नक्षत्रों की गणना अनन्त होने से इसको एक ही नभोमण्डल कह दिया गया है।

(छ) पृथिवीलोक—

मानव जाति के निवास को पृथिवीलोक [भूः] कहा गया है। यह चौदह लोकों में से एक है। इस पर 18 द्वीपों की गणना की गई है[5]। पृथिवी का विभाजन सात महाद्वीपों में भी किया गया था[6]— जम्बूद्वीप, प्लक्षद्वीप, शाल्मलद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, शाकद्वीप और पुष्करद्वीप[7]। कुछ स्थानों पर पृथिवी के नव द्वीपों[8] और कहीं 13 द्वीपों का वर्णन[9] हुआ है। वर्तमान समय में इन द्वीपों की पहचान करना या स्थिति के सम्बन्ध में निश्चय रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है।

---

1. सुभ पृ० 9 ॥
2. भूवायुरावह इह प्रवहस्तदूर्ध्वं स्यादुद्वहस्तदनु संवहसंज्ञकश्च।
   अन्यस्ततोऽपि सुवहः परिपूर्वको स्याद् बाह्यः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः ॥
   सिद्धान्तशिरोमणि ॥
3. बारा पृ० 205 ॥ 4. अभिज्ञा 7.6॥ 5. काव्य 91.4–7, नैष 1.18॥
6. काव्य 90.13–24, सप्तद्वीपवती मही–ब्रह्माण्डपुराण 37.13 ॥
7. विष्णुपुराण 2.2.5 ॥ 8. पद्मपुराण–स्वर्गखण्ड 7.26 ॥
9. पद्मपुराण–आदिखण्ड 74.19 ॥

पुराणों के अनुसार मुख्य लोक तीन ही हैं— स्वर्ग, पृथिवी और पाताल। पृथिवी को मध्यम लोक माना गया है। कालिदास के अनुसार मध्यम लोक के पराक्रमी राजाओं की सहायता देवराज इन्द्र को भी अपेक्षित थी[1]।

3. भारतवर्ष का भौगोलिक विभाजन

संस्कृत नाटकों में भारतवर्ष तथा इसके विभिन्न भागों के उल्लेख मिलते हैं। पृथिवीलोक के सात महाद्वीपों में एक जम्बूद्वीप भी है। 'पादताडितक' में उज्जयिनी नगरी को जम्बूद्वीप की तिलकभूत कहा गया है[2]। इस नाटक (भाण) की रचना गुप्तकाल में हुई थी, जबकि गुप्त राजाओं ने उज्जयिनी को अपनी दूसरी राजधानी बनाया था। गुप्तों का साम्राज्य गान्धार से लेकर कामरूप तक और तिब्बत से लेकर केरल तक विस्तृत था। इस प्रकार जम्बूद्वीप को भारतवर्ष का पर्यायवाची माना जा सकता है।

बौद्ध साहित्य में भी भारतवर्ष का नाम आया है। यही जम्बूद्वीप है। इसकी समृद्धि और कल्याण की कामना की गई है[3]। सम्भवतः राजशेखर ने भारतवर्ष और जम्बूद्वीप पदों को पर्याय नहीं माना था। उनके अनुसार जम्बूद्वीप अधिक विस्तृत क्षेत्र था और भारतवर्ष उसका एक भाग था। जम्बूद्वीप के अन्तर्गत मेरु पर्वत और तीन वर्ष हैं—हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्ष। इनमें भारतवर्ष मेरु पर्वत के दक्षिण में है[4]। राजशेखर ने सम्भवतः एशिया महाद्वीप को जम्बूद्वीप कहा है।

संस्कृत कवियों के अनुसार भारतवर्ष की सीमायें उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में समुद्र तक विस्तीर्ण थीं। उत्तर में हिमालय पर्वत भारतीय

---

1. उपस्थितसंपरायो महेन्द्रोऽपि
   मध्यमलोकात् सबहुमानमाहूय। विक्र पृ० 157 ॥

2. पाद पृ० 161 ॥

3. अयं जम्बूद्वीपो इद्धो चैव भविस्सदि फीतो च।
   कुक्कुटसम्पादिता गामनिगमराजधानीयो ॥ दिग्धनिकाय भाग 3 पृ० 59।

4. काव्य 92.7 ॥

सीमा का रक्षक है, जो पूर्व से पश्चिम समुद्र तक फैला है । यह पृथिवी का मानदण्ड है[1] ।

परन्तु यह भावना कालिदास के समय में ही अधिक प्रबुद्ध हुई होगी । कालिदास तथा उनके उत्तरवर्ती कवि जबकि दक्षिण समुद्र से हिमालय पर्यन्त भूमिभाग को एक प्रशासन के अन्तर्गत देखने की कामना करते हैं, भास की दृष्टि विन्ध्य और हिमालय की सीमाओं को अधिक महत्व देती है । वे दो समुद्रों के मध्य, किन्तु हिमालय और विन्ध्य की मध्यवर्ती भूमि को राजा राजसिंह के एक छत्र के नीचे रखने की कामना करते हैं । वे दोनों पर्वतों को पृथिवी के दो कुण्डल कहते हैं[2] ।

भास के उत्तरवर्ती कवियों की दृष्टि अधिक विशाल हो गई थी । उन्होंने विन्ध्य के दक्षिण की भूमि को भी भारत की सीमाओं के अन्तर्गत सम्मिलित किया । प्रायः यह कामना की गई है कि यह सारा भूभाग एक ही सम्राट् के शासन के अन्तर्गत होना चाहिये । चन्द्रगुप्त को चाणक्य आशीर्वाद देता है कि हिमालय से लेकर दक्षिण समुद्रों तक के राजा तुम्हारे चरणों का स्पर्श करें[3] । कालिदास ने भारतवर्ष की इन्हीं सीमाओं का प्रतिपादन किया था । ये सीमायें समुद्र के जल के स्पर्श से सदा पावन रहती हैं और इस सारी भूमि पर एक ही शासन होना चाहिये[4] । चक्रवर्ती सम्राटों का यह ध्येय है कि वे अपने साम्राज्यों का विस्तार इन सीमाओं तक करें ।

कालिदास के काव्यों के अवलोकन से प्रतीत होता है कि उसने भारतीय मानचित्र को तीन भागों में विभक्त किया था[5]—

1. हिमालय की विशाल पर्वत श्रेणी

---

1. अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः ।
पूर्वापरौ तोयनिधी वगाह्य स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः ।। कुमार 1.1 ।।
2. इमां सागरपर्यन्तां हिमवद्विन्ध्यकुण्डलाम् ।
महीमेकातपत्राङ्कां राजसिंहः प्रशास्तु नः ।।
स्वप्न 6.19, बाल 5.20, दूत 1.56 ।।
3. मुद्रा 3.19 ।।
4. नैतच्चित्रं यदयमुदधिश्यामसीमां धरित्रीम् ।
एकः कृत्स्नां वलयपरिघप्रांशुबाहुः भुनक्ति ।। अभिज्ञा 2.5 ।।
5. काभा भाग 1 पृ० 21 ।।

2. सिन्धु-गङ्गा और ब्रह्मपुत्र नदियों से बनी मध्यवर्ती उर्वरा भूमि।
3. भारतीय प्रायद्वीप का दक्षिणी विस्तृत पठार।

संस्कृत नाटकों में उपलब्ध राज्यों और जनपदों के विवरणों से स्पष्ट है कि यह महान् देश पूर्व में कामरूप और बंगाल से लेकर पश्चिम में अफगानिस्तान तक और उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में सिंहलद्वीप तक विस्तृत था। मुरारि के वर्णनों के अनुसार राम का विमान लंका में सुवेल पर्वत से उड़ कर[1] समुद्र को पार करता हुआ कैलास तक पहुँचता है[2]। 'चतुर्भाणी' में जिस प्रकार अनेक प्रदेशों का वर्णन है, उससे इस महान् देश की सीमाओं का बहुत कुछ बोध होता है। सभी प्रदेशों के निवासी उज्जयिनी में आकर निवास करते थे। उज्जयिनी के राजधानी और केन्द्रीय स्थान होने से विभिन्न प्रदेशों के लोगों का यहां आकर बसना स्वाभाविक था। अपरान्त[3], सह्याद्रि तथा पश्चिमी समुद्र की मध्यवर्ती भूमि (आधुनिक कोंकण), केरल[4], सिंहल[5] कलिंग और बंग[6], मलद[7] (आधुनिक बंगाल का माल्दा प्रदेश), गान्धार[8] और और पारस (फारस) प्रदेशों और इनके मध्यवर्ती भूभागों के लोग उज्जयिनी में आकर रहते थे। इन वर्णनों से सहज ही भारतवर्ष की सीमाओं की परिकल्पना की जा सकती है। 'विष्णुपुराण' में हिमालय के दक्षिणवर्ती और समुद्र के उत्तरवर्ती भूभाग को भारतवर्ष कहा गया है[9]।

कवियों के वर्णनों में भारतवर्ष के दो मुख्य विभागों—उत्तरापथ और दक्षिणापथ का उल्लेख हुआ है[10]। इनका विभाजक विन्ध्य पर्वत था। इस प्रकार इस देश के तीन मुख्य विभाग थे—उत्तरापथ, दक्षिणापथ और विन्ध्यभूमि। इनका रूप संक्षेप से इस प्रकार है—

(1) उत्तरापथ—

भारतवर्ष के उत्तरीय भाग को उत्तरापथ कहा गया था। इसको आर्यावर्त भी कहते थे। राजशेखर ने इसको आर्यावर्त कहा है, जिसको पार

1. अन पृ० 320 ॥ 2. वही पृ० 343 ॥ 3. पाद श्लोक 24 ॥
4. वही पृ० 223 ॥ 5. वही श्लोक 24 ॥ 6. वही पृ० 193 ॥
7. वही पृ० 224 ॥ 8. वही श्लोक 24 ॥
9. उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
   वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः ॥ विष्णुपुराण 2.31 ॥
10. आ पृ० 4 ॥

करके दक्षिण देश प्रारम्भ होता है[1]। प्राचीन साहित्य में पूर्व-पश्चिम समुद्रों और हिमालय-विन्ध्य पर्वतों की मध्यवर्ती भूमि को आर्यावर्त माना गया है[2]। 'बोधायन धर्मसूत्र' के अनुसार गङ्गा-यमुना का प्रदेश आर्यावर्त है[3]।

उत्तरापथ के अन्तर्गत अन्तर्वेदी का प्रदेश सम्मिलित है। राजशेखर इस प्रदेश का उल्लेख करते हैं[4] और उसको सांस्कृतिक दृष्टि से श्रेष्ठ मानते हैं। पश्चिम में विनशन (सरस्वती नदी के लुप्त होने का स्थान) और पूर्व में प्रयाग तक गङ्गा-यमुना का मध्यवर्ती प्रदेश अन्तर्वेदी कहलाता है[5]। मुरारि ने वर्णन किया है कि अन्तर्वेदी में कृष्णवर्णा यमुना और श्वेतवर्णा भागीरथी का सङ्गम होता।

(2) दक्षिणापथ--

भारतवर्ष के दक्षिणी भाग को दक्षिणापथ कहा गया है। यह आर्यावर्त के दक्षिण में है[6]। आर्यावर्त की दक्षिणी सीमा क्योंकि विन्ध्य पर्वत थी, अतः इसके दक्षिण का भाग दक्षिणापथ कहलाया। भास ने वर्णन किया है कि सुग्रीव ने सीता की खोज के लिये अंगद को दक्षिणापथ की ओर भेजा था[7]। राजशेखर के अनुसार दक्षिणापथ के राजा की कन्या विभ्रमलेखा का विवाह राजा चन्द्रपाल से हुआ था[8]। दाक्षिणापथ के निवासी दाक्षिणात्य कहलाते थे[9]।

(3) विन्ध्यभूमि--

आर्यावर्त और दक्षिणापथ को विभक्त करने वाले विन्ध्य पर्वत की भूमियों को विन्ध्य-देश या विन्ध्य-भूमि कहा गया था। यहां आटविकों का राज्य था[10]।

---

1. बारा पृ० 364 ।।
2. (क) आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्तु दक्षिणात् ।
 तयोरेवान्तरं गिर्योरार्यावर्तं विदुर्बुधाः ।।मनु 2.22 ।।
 (ख) पूर्वापरयोः समुद्रयोर्हिमवद्विन्ध्ययोश्चान्तरमार्यावर्तः ।
 तस्मिंश्चातुर्वर्ण्यं चातुराश्रमं च । यन्मूलं सदाचारः ।।
 काव्य 93. 17-18 ।।
3. बोधायन धर्मसूत्र 1. 1. 28 ।। 4. बारा 6. 38 ।।
5. विनशनप्रयागयोः गङ्गायमुनयोश्चान्तरमन्तर्वेदीति । काव्य 94.18 ।।
6. अन पृ० 38 ।। 7. बारा पृ० 364 ।।
8. दक्षिणापथमुखस्य कुमारांगदस्य । अभि पृ०23 ।। 9. कर्पू पृ०17 ।।
10. बारा पृ० 5 ।।

भारतवर्ष का भौगोलिक विभाजन एक अन्य प्रकार से भी किया गया है। वराहमिहिर ने इसके 9 खण्ड कहे हैं[1]– मध्य, पूर्व, दक्षिणपूर्व, दक्षिण, दक्षिण-पश्चिम, पश्चिम, उत्तरपश्चिम, उत्तर और उत्तरपूर्व। इनमें मध्य का मुख्य जनपद पांचाल, पूर्व का मगध, दक्षिणपूर्व का कलिंग, दक्षिण का आवन्त, दक्षिणपश्चिम का आनर्त, पश्चिम का सिन्धु-सौवीर, उत्तरपश्चिम का हरदौर, उत्तर का मद्र और उत्तरपूर्व का कौणिन्द है।

भारतवर्ष के ६ खण्डों का वर्णन कुछ अन्य भी प्रकार से उपलब्ध होता है। 'महाभारत' और पुराणों में ये इस प्रकार हैं–इन्द्र, कसेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, कुमारिका, नाग, सौम्य, वरुण और गान्धर्व[2]। प्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्य ने इस विभाजन को स्वीकार किया है[3]। इन नौ खण्डों का उल्लेख राजशेखर ने भी किया है[1]।

प्राचीन वर्णनों से यह प्रतीत होता है कि भारतवर्ष के इन नौ खण्डों में से कुमारिका खण्ड को सम्भवतः प्रमुख माना गया था। 'वराहपुराण' में नौ खण्ड नवद्वीप के नाम से कहे गये हैं। इस पुराण में अन्य खण्ड तो वे ही हैं, परन्तु कुमारिकाखण्ड को भरतखण्ड कहा गया है[5]।

परन्तु भारतवर्ष का यह नवधा विभाजन अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ। अधिकांश विचारकों ने इस देश का विभाजन पांच विभागों मे किया था— मध्य, पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर। मध्य भाग में कुरु-पाञ्चाल, पूर्व में कामरूप-आसाम, दक्षिण में पुण्ड्र-कलिंग, पश्चिम में सुराष्ट्र-सुर-आभीर–अर्बुद-करुष-मालव-सौवीर-सैन्धव और उत्तर में हूण-शाल्व-शाकल-राम-अम्बष्ट-पारस्त्क जनपद प्रमुख थे।[6]

अति प्राचीन काल के भारतीय साहित्य में भी भारतवर्ष का विभाजन इसी प्रकार से पांच भागों में है। परन्तु इन भागों को दिक् कहा गया है।[7] 'ऐतरेय ब्राह्मण' में भारतवर्ष का विभाजन पांच दिशाओं में है– प्राची,

---

1. प्रिय पृ० 14 ।। 2. वराहसंहिता 14. 7–9 ।। 3. ज्योए पृ० 6 ।।
4. सिद्धान्तशिरोमणि 3.41 ।। 5. काव्य 92. 7-9 ।।
6. इन्द्रकसेरुताम्रपर्णीगभस्तिनागद्वीपाः ।
तथा सौम्यो गान्धर्वो वारुणो भारतं वेति ।। वराहपुराण अध्याय85 ।।
7. ज्योए पृ० 6-7 ।।

दक्षिणा, प्रतीची, उदीची, और ध्रुवा[1]। 'अथर्ववेद'[2] और 'यजुर्वेद'[3] में भी इसी प्रकार से विभाजन है। उत्तरवर्ती साहित्य में 'दिक्' के स्थान पर 'दिशा' कहा जाने लगा था।

'काव्यमीमांसा' में भारतवर्ष का विभाजन पांच मुख्य खण्डों या देशों में हैं- पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और मध्य। इन खण्डों में जनपदों की गणना इस प्रकार है-

(1) **पूर्व**– वाराणसी से परे पूर्व देश है। यहां अंग–बंग– कलिंग- कोसल-तोसल–उत्कल- मगध -मुद्गर–विदेह- नेपाल–पुण्ड्र - प्राग्ज्योतिष– ताम्रलिप्तक मलद–मल्ल–नर्तक- सुह्म-ब्रह्मोत्तर आदि जनपद हैं।[4]

(2) **दक्षिण (दक्षिणापथ)**- माहिष्मती से परे दक्षिणापथ है। यहां महाराष्ट्र- महिषक-अश्मक- विदर्भ- कुन्तल-क्रथकैशिक- सूर्पारक- कांची-केरल-कावेर–मुरल-वानवासक-सिंहल-चोल-दण्डक-पाण्ड्य-पल्लव-गांग-नासिक्य-कोंकण- कोल्ल- गिरिवेल्लर आदि जनपद हैं।[5]

(3) **पश्चिम (पश्चाद्देश)**-देवसभा से परे पश्चाद्देश है। यहां देवसम-सुराष्ट्र-दशेरक - त्रवण - भृगुकच्छीय – आवर्त - अर्बुद - ब्राह्मण – बाह्मवन आदि जनपद हैं।[6]

(4) **उत्तर (उत्तरापथ)**- यहां शक-केकय - वीवकाण - वाणायुज - काम्बोज-बाह्लीक- बाह्लव- लिम्पाक- कुलूत- कीर- तंगण- तुषार- तुरुष्क- बर्बर-हरहूर- बहुहूक- सहूड- हंसमार्ग- रमठ- करकण्ठ आदि जनपद हैं।[7]

(5) **मध्य**- विनशन (कुरुक्षेत्र) से पूर्व में और प्रयाग से पश्चिम में हिमालय और विन्ध्य के मध्य में जो क्षेत्र है, वह मध्य देश कहलाता है।[8]

राजशेखर ने मध्य देश के जनपदों की गणना नहीं की है। अति प्रसिद्ध होने के कारण उसने इसकी आवश्यकता नहीं समझी होगी। 'गरुड-पुराण' के अनुसार मध्यदेश में निम्न जनपद थे–

---

1. ऐतरेय ब्राह्मण 8. 14 ॥
2. अथर्ववेद 3. 27, 4. 40॥
3. यजुर्वेद– तैत्तिरीयसंहिता 4. 4.12, वाजसनेयिसंहिता 15. 10-14॥
4. काव्य 93. 20-22, ॥ 5. वही 93. 25-28 ॥
6. वही 94. 4-5 ॥ 7. वही 94. 9-11 ॥
8. वही 94. 17-18 ॥

पञ्चाल, कुरु, मत्स्य, यौधेय, पटच्चर, कुन्ति, शूरसेन[1]।

मनु ने भी मध्य देश की सीमाओं को उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्य तक कहा है। यह पश्चिम में विनशन से लेकर पूर्व में प्रयाग तक विस्तृत है[2]।

प्राचीन समय में भारतवर्ष का यह पांच खण्डों में विभाजन चीनियों को विदित था। सातवीं शताब्दी के चीन के थंग वंश के प्रलेखों में भारतवर्ष के पांच भाग बताये गये हैं— प्राच्य, प्रतीच्य, उदीच्य, दक्षिण और मध्य। इसके अनुसार इस देश को पञ्च-भारत कहा गया था[3] (Five Indias)। आधुनिक भूगोल के अनुसार भी भारतवर्ष के पांच विभाग किए गए हैं—

(1) **पूर्वी भारत**—इसमें बिहार, बंगाल, आसाम तथा समीपस्थ प्रदेश हैं।

(2) **पश्चिमी भारत**—इसमें सिन्ध, पंजाब, राजस्थान और अरबसागर के तटवर्ती प्रदेश हैं।

(3) **उत्तरी भारत**—इसमें अफगानिस्तान से लेकर नेपाल तक के सभी हिमालयवर्ती प्रदेश हैं।

(4) **दक्षिणी भारत**—इसके अन्तर्गत नर्मदा से दक्षिण के प्रदेश आते हैं।

(5) **मध्य भारत**—इसके अन्तर्गत हिमालय और विन्ध्य के मध्यवर्ती एवं गङ्गा–यमुना से सिञ्चित प्रदेश हैं।

भारतवर्ष के पांच विभागों के इस भौगोलिक विभाजन को प्रायः स्वीकार कर लिया गया था। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा-विवरणों में भारतवर्ष का यही रूप प्रस्तुत किया था। उसने इसी के अनुसार यात्रा की थी।[4]

---

1. पञ्चालाः कुरवो मत्स्याः यौधेयाः सपटच्चराः।
कुन्तयः शूरसेनाश्च मध्यदेशजनाः स्मृताः ।। गरुडपुराण 55.10 ।।
2. हिमवद्–विन्ध्ययोर्मध्यं यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः ।। मनु 2.21 ।।
3. ज्योए पृ० 11 ।। 4. वही पृ० 9 ।।

द्वितीय अध्याय

पर्वत, वन, सरोवर और समुद्र

संस्कृत नाटकों में अनेक पर्वतों, वनों, सरोवरों और समुद्रों के वर्णन आये हैं। इनकी स्थिति पर क्रमशः विचार किया जा रहा है।

(क) पर्वत

संस्कृत नाटकों में अनेक पर्वतों का उल्लेख हुआ है। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में पृथिवी को धारण करने वाले सात कुल पर्वत गिनाये गये हैं— विन्ध्य, पारियात्र, शुक्तिमान्, ऋक्ष, महेन्द्र, सह्य और मलय[1]। 'बालरामायण' में एक स्थान पर नौ प्रमुख पर्वतों का उल्लेख है— कैलास, कलिन्द, मलय, मन्दर, मेरु, सह्य, विन्ध्य, महेन्द्र और हिमवान्[2]। एक अन्य स्थान पर आठ प्रमुख पर्वतों का वर्णन है— मेरु, हिमालय, मन्दर, कैलास, गन्धमादन, अंजनाचल, विन्ध्य और रोहणगिरि[3]। इसके शिखरों को उखाड़ कर वानरों ने समुद्र पर सेतु का निर्माण किया था।

भवभूति ने भारतवर्ष के दक्षिणी भाग के पर्वतों के सौन्दर्य का वर्णन किया है। इनके शिखर बड़े-बड़े शिलाखण्डों से निर्मित हैं। यहां मेघ छाये रहते हैं; मयूरों की ध्वनि गूंजती है तथा चन्दन, साल, सरल, पाटल, कदम्ब और जामुन के वृक्ष हैं[4]। सल्लकी लतायें, गम्भारी, अमलतास और तिनिश के वृक्ष यहां हैं। नदियों के तट पर अश्मन्तक घास होती है[5]। इनमें गोदावरी

---

1. काव्य 92.16–17 ॥ 2. बारा 7.12 ॥ 3. वही पृ० 444 ॥
4. माल पृ० 380–381 ॥ 5. वही 9.7 ॥

नदी बहती है[1]। मयूर, पूर्णिक, दात्यूह; और ककुभ नामक पक्षी यहां निवास करते हैं। पर्वतीय गुफाओं में भालुओं की गर्जनायें गूंजती रहती हैं[2]।

आलोच्य संस्कृत नाटकों में निम्न पर्वतों का वर्णन हुआ है—

१. विन्ध्य–

कुल पर्वतों में विन्ध्य को प्रमुख माना गया है[3]। यह उत्तरापथ और दक्षिणापथ का विभाजन करता है । वनवास की अवधि को व्यतीत करने के लिए राम विन्ध्य पर्वत की ओर गये थे[4]। यहां की भूमियां विन्ध्य देश कहलाती थीं, जहां आटविकों का राज्य था[5]। पुराण–कथाओं के अनुसार ऊंचे उठते हुए विन्ध्य पर्वत ने देवताओं और सूर्य के मार्ग को रोकना प्रारम्भ कर दिया। उस समय अगस्त्य मुनि ने इस वृद्धि को रोका और वे इसको पार करके दक्षिण की ओर चले गये[6]।

विन्ध्य पर्वत की स्थिति सुनिश्चित है और विवादरहित है। भारत-वर्ष के मध्य भाग में यह पूर्व से पश्चिम तक फैला है। बिहार–उड़ीसा से लेकर गुजरात तक सारी पर्वत-शृंखलायें विन्ध्य से सम्बन्धित है। मध्यप्रदेश में इसका विशेष विस्तार है। पारियात्र, ऋक्ष शुक्तिमान्, चित्रकूट, अमर-कण्टक आदि पर्वत विन्ध्य–शृंखला के ही भाग हैं।

विन्ध्य पर्वत को विशेष समृद्धिशाली बताया गया है। यह प्रचुर वनस्पतिज और खनिज सम्पत्तियों से भरा हुआ है। इसमें जल के अनन्त साधन विद्यमान हैं। कवियों ने विन्ध्य के प्राकृतिक सौन्दर्य का भी बहुत उल्लेख किया है। वर्षा ऋतु में इस पर्वत पर बिजलियां इस प्रकार चमकती हैं, मानों मेघों की पंक्ति विद्युत रूपी रज्जु से प्रहार कर रही हो[7]। विन्ध्य-पर्वत की तलहटियों मे बहने वाली नर्मदा का कालिदास ने मनोरम चित्रण किया है[8]।

---

1. वही पृ० 380–381 ॥ 2. वही 9.7 ॥
3. सभा–भीष्म पर्व 9.11 ॥ 4. बारा पृ० 355 ॥
5. प्रिय पृ० 14 ॥ 6. बारा 1.28 ॥
7. विद्युद्दाम्ना मेघराजीव विन्ध्यम् । भाका 3.21 ॥
8. रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णाम् । पूर्वमेघ 20 ॥

२. पारियात्र—

पारियात्र पर्वत की भी गणना कुल-पर्वतों में की गई है। यह विन्ध्य-पर्वत का ही एक भाग है। इसकी पहचान विन्ध्याचल के पश्चिमी भाग से की जाती है। सम्भवतः अरावली की पर्वत श्रेणियां इसमें सम्मिलित थीं[1]।

बाल्मीकि के अनुसार सुग्रीव के आदेश से सीता की खोज में गये वानर पश्चिम दिशा में पारियात्र पर्वत पर भी पहुँचे थे[2]। 'सौन्दरानन्द' में पारियात्र को मध्य देश की दक्षिणी सीमा बताया गया है। कालिदास इसके शिखर को बहुत ऊंचा कहते हैं[3]। भण्डारकर महोदय का कथन है कि पारियात्र पर्वत विन्ध्य का ही एक भाग है। इससे चम्बल और बेतवा नदियां निकलती हैं। राय चौधरी इसको भूपाल के पश्चिम में कहते हैं[4]।

इन विवरणों के आधार पर कहा जा सकता है कि विन्ध्य पर्वत के पश्चिमी भाग से खम्भात की खाड़ी तक विस्तृत अरावली की पर्वतमालायें पारियात्र कहलाती थीं।

३. शुक्तिमान्—

शुक्तिमान् पर्वत की गणना भी कुल पर्वतों में है। यह भी विन्ध्य का ही एक भाग माना गया है। कनिंघम के अनुसार शुक्तिमान् पर्वत छत्तीसगढ़ तथा बस्तर के मध्य हजारीबाग के उत्तर में फैला हुआ है। यहां से केन नदी निकलती है[5]। डे के अनुसार इसके अन्तर्गत गोंडवाना, छोटा नागपुर और महेन्द्र की पर्वत श्रेणियां आती हैं[6]। कुछ समालोचकों ने काठियावाड़ की पहाड़ियों को शुक्तिमान् कहा है[7] तथा कुछ हैदराबाद और गोलकुण्डा के पर्वतीय क्षेत्र को शुक्तिमान् मानते हैं[8]। डा० राय चौधरी के अनुसार मध्यप्रदेश के रायगढ़

---

1. जे. आर. ए. एस. (1974) पृ० 258, पुराणविमर्श पृ० 342 ॥
2. रामायण—किष्किन्धाकाण्ड 41.19–20 ॥
3. उच्चैः शिरस्त्वाज्जितपारियात्रम्। रघु 10.16 ॥
4. प्राभास्व पृ० 22 ॥
5. आर्केओलोजिकल सर्वे रिपोर्ट पृ० 17–24–26 ॥
6. ज्योडिएमि पृ० 196 ॥ 7. एपिक इण्डिया पृ० 276 ॥
8. प्राभास्व पृ० 22 ॥

जिले के शुक्ति प्रदेश से लेकर बिहार के मानभूम और सन्थाल परगने तक फैले पर्वतीय प्रदेश को शुक्तिमान् पर्वत मानना चाहिए[1]।

प्राचीन विवरणों के अनुसार शुक्तिमान पर्वत की स्थिति विन्ध्य के पूर्व में है, अतः इस सम्बन्ध में डा० राय चौधरी का मत अधिक समीचीन है।

४. ऋक्ष—

ऋक्ष पर्वत की गणना भी कुल-पर्वतों में की जाती है। यह भी विन्ध्याचल का ही एक भाग है, जो नर्मदा की घाटी में स्थित है। रीछों (ऋक्ष) की बहुलता होने के कारण ही इसका नाम ऋक्ष पर्वत हुआ होगा[2]। कालिदास ने ऋक्ष पर्वत का मनोरञ्जक वर्णन किया है : इन्दुमती के स्वयंवर में जाते हुये अज के सैन्यशिविर में एक गज आ गया। यह एक शापग्रस्त गन्धर्व था। यह ऋक्ष पर्वत की गैरिक शिलाओं पर दांतों की टक्कर मारता हुआ नर्मदा का अवगाहन कर रहा था[3]।

ऋक्ष पर्वत की स्थिति के सम्बन्ध में अनेक मत प्रकट किये गये हैं। भगवतशरण उपाध्याय का मत है कि आधुनिक सतपुडा की पहाड़ियां ही ऋक्ष पर्वत कहलाती होंगी, जो नर्मदा और ताप्ती नदियों के मध्य है[4]। नन्दलाल डे के अनुसार गोंडवाना की प्राचीन पहाड़ियों का नाम ऋक्ष रहा होगा[5]। ताप्ती, पयोष्णी, और निर्विन्ध्या नदियों का उद्गम ऋक्ष कहा गया है[6]।

जयचन्द्र विद्यालंकार और वासुदेव विष्णु मिराशी ने भी सतपुड़ा को ही ऋक्ष पर्वत प्रतिपादित किया है। ताप्ती और वेनगङ्गा इसको सींचती हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार सतपुड़ा से लेकर महादेव पर्वत के पूर्व तक ऋक्ष नामक कुल-पर्वत है[7]। बलदेव उपाध्याय भी इसी मत के हैं[8]। इन आधारों पर सतपुड़ा को ही ऋक्ष मानना चाहिये।

1. स्टडीज इन इन्डियन एन्टिकिटीज पृ० 120 ॥
2. रामायण युद्धकाण्ड 27.7–9 ॥
3. निःशेषविक्षालितधातुनापि वप्रक्रिया ऋक्षवतस्तटेषु। रघु 5.44 ॥
4. काभा भाग 1 पृ० 32 ॥
5. ज्योंडिएमि पृ० 119 ॥
6. विष्णुपुराण 2. 3. 11 ॥
7. भारत की मौलिक एकता पृ० 40 ॥
8. पुराणविमर्श 1965 ॥

5. महेन्द्र--

महेन्द्र पर्वत की गणना भी कुल-पर्वतों में है। राम से पराजित होकर परशुराम ने इस पर्वत को अपना निवास बनाया था। 'नैषधीयचरितम्' में इस पर्वत की स्थिति कलिंग में बताई गई है[1]। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में कालिदास कलिंगराज को महेन्द्र पर्वत का स्वामी कहते हैं[2]। इस पर्वत की चोटी पर रघु ने अपनी सेना का शिविर लगाया था। पूर्व दिशा को जीत कर रघु ने दक्षिण की ओर जाते हुए कलिंग को जीता था।

समालोचकों के अनुसार पूर्वी घाट की पर्वत शृंखला का उत्तरी भाग महेन्द्र पर्वत कहलाता था[3]। कलिंग (उत्कल) प्रदेश में गंजाम के निकट का पर्वतीय भूभाग अब भी महेन्द्र कहलाता है। यह समुद्रतल से 5500 फीट ऊंचा है। राय चौधरी का मत है कि गंजाम से लेकर हेनेवली तक विस्तृत पर्वत-शृङ्खला महेन्द्र पर्वत है[4]।

6. सह्य---

सह्य पर्वत की गणना भी कुल पर्वतों में हुई है। प्राचीन साहित्य में इस पर्वत का वर्णन दक्षिण भारत में है। पश्चिमी घाट की पर्वत शृङ्खला सह्य है। इसके समीप से कृष्णा नदी बहती है[5]। कुलशेखर वर्मन ने सह्य पर्वत का वर्णन दक्षिणी भारत में किया है[6]। वर्तमान में भी पश्चिमी घाट पर यह पर्वत इसी नाम से जाना जाता है।

कालिदास ने रघु की दिग्विजय के प्रसंग मे सह्य पर्वत का वर्णन किया है[7]। इससे प्रतीत होता है कि यह पर्वत पश्चिमी घाट पर समुद्र से कुछ हट कर था। वर्तमान समय में भी समुद्र और सह्य पर्वत के मध्य भूमि की संकीर्ण पट्टी है। पौराणिक कथा प्रसिद्ध है कि सम्पूर्ण पृथिवी का दान करके परशुराम ने यह भूमि समुद्र से प्राप्त की थी। रघु की सेना समुद्रतट-वर्ती इसी मार्ग से आगे बढ़ी थी।

सह्य पर्वत मलय के उत्तर में केरल से लेकर अपरान्त तक फैला है। कावेरी और गोदावरी नदियां इसके पूर्वी ढलानों से निकल कर पूर्व समुद्र की ओर बहती हैं।

7. मलय--

मलय पर्वत का प्राचीन साहित्य में प्रचुर वर्णन है। इसकी गणना भी कुल-पर्वतों में है। नाटकों में मलय की स्थिति दक्षिण भारत में वर्णित

---

1. नैष 10. 24 ।। 2. रघु 4.43 ।। 3. ऐना पृ॰ 728 ।।
4. स्टडीज इन इन्डियन एन्टीकिटीज पृ॰109 ।।
5. काव्य 84. 26-27 ।। 6. सुभ पृ॰ 168 ।। 7. रघु 4.52-58 ।।

है[1]। अगस्त्य का आश्रम इसी पर्वत पर था[2]। जटायु का भाई सम्पाति भी मलय पर्वत की गुफाओं में रहता था[3]।

पश्चिमी घाट के दक्षिणी पर्वतीय भूभाग को मलय पर्वत कहा जा सकता है। कोयम्बटूर से लेकर कुमारी अन्तरीप तक विस्तीर्ण पर्वतीय भूमि मलय है। अन्नामलाई और एलामलाइ की पर्वत श्रेणियां मलय के अन्तर्गत हैं[4]। नीलगिरि की पहाड़ियां भी इसी का भाग हैं[5]। भगवतशरण उपाध्याय ने कावेरी के दक्षिण में मैसूर से ट्रावनकोर तक फैली पर्वत-शृङ्खला को मलय पर्वत माना है[6]।

मलय-पर्वत की अनेक विशेषताओं और सौन्दर्य का वर्णन नाटककारों ने किया है। ताम्रपर्णी नदी का यह उद्गम स्थान है[7]। यह कावेरी से परिवेष्टित है[8]। यहां काली मिर्च, इलायची, चन्दन, सुपारी और कक्कोल वृक्ष बहुतायत से हैं[9]। संस्कृत साहित्य में मलय-अनिल को बहुत रोमान्टिक कहा गया है। यह बसन्त ऋतु में बहती है, अति सुखद है और उन्मादक है[10]।

कालिदास के अनुसार मलय पर्वत पर चन्दन के वृक्ष और चन्दन-लतायें प्रचुर हैं[11]। भास वर्णन करते हैं कि मलय पर्वत पर चन्दन के वन हैं, जिनकी सुगन्धि के कारण मध्याह्न में सुखद निद्रा प्राप्त होती है[12]।

राजशेखर और कालिदास ने मलय पर्वत के चित्ताकर्षक वर्णन किये हैं। यह सर्पों से परिवेष्टित उत्तम चन्दन की और कवक-कोलक-एला-मरिच-जातिपुष्पों की जन्मभूमि है। यहां ताम्रपर्णी नदी मोतियों को प्रदान करती है। यहां विविध रत्न होते हैं। अगस्त्य मुनि (कुम्भोद्भव) इसको पवित्र करते हैं[13]। मलय पर्वत की गुफाओं को अति पवित्र और रमणीक कहा गया है।

---

1. सुभ पृ० 168 ॥ 2. अन 7. 94 ॥ 3. महा 5. 3, बारा 6. 56 ॥
4. भारत भूमि पृ० 90 ॥ 5 ऐना पृ०802॥
6. इण्डिया इन कालिदास पृ० 11-12 ॥ 7. बारा 6.56, 10.56, ॥
8. महा 5. 3 ॥ 9. बारा 10.14 ॥
10. कर्पू 1. 5, बारा 10.54, सुभ 3.8 ॥
11. मलयतरून्मूलिता चन्दनलता । अभिज्ञा पृ० 316 ॥
12. यास्यावो मलयस्य चन्दननगान्मध्याह्ननिद्रासुखम् ॥ अवि 4.10 ॥
13. आमूलयष्टेः फणिवेष्टितानां सच्चन्दनानां जननन्दनानाम् ।
कवकोलकैलामरिचैर्युतानां जातीतरूणां स च जन्मभूमिः ॥
यस्योत्तमां मौक्तिककामधेनुमुपत्यकामर्चति ताम्रपर्णी ।
रत्नेश्वरो रत्नमहानिधानं कुम्भोद्भवस्तं मलयं पुनाति ॥ काव्य पृ०225 ॥

सर्पों से परिवेष्टित चन्दन तरुओं के स्कन्ध, काली मिर्च की झाड़ियों में उड़ते तोते, पृथ्वी पर बिखरे लोंग के बीज मन का हरण करते हैं[1]।

8. रैवतक–

नाटककारों ने द्वारका के समीप रैवतक पर्वत की स्थिति कही है। 'सुभद्राधनञ्जय' के अनुसार द्वारका के नागरिक यहां भ्रमण के लिए आया करते थे। अर्जुन ने सुभद्रा को पाने के लिये यहीं पर मस्करी (वानप्रस्थी) का रूप धारण किया था[2]।

माघ ने रैवतक पर्वत की नैसर्गिक सुषमा का विशद वर्णन किया है। द्वारका से इन्द्रप्रस्थ की ओर यात्रा करते हुये कृष्ण ने इस पर्वत की तलहटी में शिविर लगवाया था। सूर्योदय वेला में रैवतक पर्वत के एक ओर उदय होते हुये सूर्य और दूसरी ओर अस्त होते हुये चन्द्रमा की उपमा कवि ने हाथी के दोनों ओर लटकते हुये घण्टों से दी है[3]। इस कारण कवि का नाम घण्टामाघ भी प्रसिद्ध हो गया था।

9. हिमालय–

संस्कृत-साहित्य में हिमालय का वर्णन अति विशद और महत्वपूर्ण है। काव्यों में ही नहीं, धार्मिक साहित्य में भी हिमालय की महिमा का गान है। यह देवभूमि कहा जाता है। भारतवर्ष की उत्तरी सीमाओं का निर्धारण हिमालय ही करता है। कालिदास इसको देवताओं का अधिवास कहते हैं, जो उत्तर दिशा में पूर्व समुद्र से पश्चिम समुद्र तक फैला हुआ है[4]। कालिदास को उद्धृत करके राजशेखर ने भी हिमालय को भारतवर्ष का प्रहरी कहा है[5]।

संस्कृत साहित्य में हिमालय का वर्णन एक विशाल विस्तृत राज्य के रूप में भी है। इसकी राजधानी ओषधिप्रस्थ थी और यहीं शिव-पार्वती का विवाह हुआ था[6]। हिमालय की पुरुष के रूप में भी कल्पना है। वे हिम-प्रदेश के राजा थे और पार्वती के पिता थे[7]। हिमालय को ओषधियों का महान् भण्डार समझा जाता था[8]। 'हनूमन्नाटक' में वर्णन है कि हिम से

1. रघु 4. 46–51 ॥ 2. सुभ पृ० 40 ॥
3. उदयति विततोर्ध्वरश्मिरज्जावहिमरुचौ हिमधाम्नि याति चास्तम्।
वहति गिरिरयं विलम्बिघण्टाद्वयपरिवारितवारणेन्द्रलीलाम् ॥
शिशुपालवधम् 4. 20 ॥
4. कुमार 1. 1 ॥ 5. काव्य 96. 1–4 ॥
6. बाल 7. 29 ॥ 7. गौरीगुरोः पावनाः । अभिज्ञा 6. 17 ॥
8. मुद्रा 1. 23 ॥

आवृत इस पर्वत पर चमकती हुई औषधियां हैं। इसके द्रोणगिरि शिखर पर विशल्यशल्या नाम की औषधि होती है, जिसको लक्ष्मण की चिकित्सा के लिये हनूमान् उखाड़ कर लाये थे[1]।

प्राचीन ऋषियों और कवियों ने हिमालय को बहुत अधिक आदर दिया था। यहां ऋषियों के पवित्र आश्रम थे। इन ऋषियों का समाज में बहुत आदर था। कुलपति कण्व का आश्रम भी हिमालय की उपत्यका में ही था[2]। इस कारण वहां से आने वाले तपस्वियों के आगमन के समाचार को सुन कर दुष्यन्त ने तुरन्त ही उनके उचित सत्कार का आदेश दिया।

भास ने हिमालय की कुछ विशेषताओं का वर्णन किया है। उत्तर में हिमालय है। इसके अनेक ऊंचे शिखर हैं। इनमें एक सप्तम शिखर है। यहां स्थाणु (शिव) निवास करते हैं। इनके सिर से निरन्तर गंगा प्रवाहित होती है। हिमालय में कांचनपार्श्व नाम के परम वेगशाली मृग रहते हैं। इनकी पीठ वैदूर्य के समान श्यामल है। वे गंगाजल का पान करते हैं[3]। इस हिमालय में चमकने वाली दिव्य औषधियों के वन हैं, अतः वहां रहने का बहुत आकर्षण है[4]। हिमालय में अति आकर्षक गुफायें हैं। विद्याधर आदि दिव्य योनियां विविध क्रीडाओं के लिये ललचाई दृष्टि डालती हैं[5]।

संस्कृत कवियों द्वारा वर्णित मन्दराचल, गन्धमादन, कैलास, हेमकूट, मेरु, क्रौंच, मैनाक आदि पर्वत वस्तुतः हिमालय के ही अन्तर्गत विभिन्न पर्वत-श्रेणियाँ हैं। हिमालय की स्थिति सुनिश्चित है। यह पश्चिम में हिन्दू-कुश से लेकर पूर्व में बर्मा की सीमा तक 2000 मील फैला है। उत्तर-दक्षिण में इसका विस्तार 150–200 मील है और यह चीन तथा भारत का मध्यवर्ती है।

10. मन्दराचल–

हिमालय के उत्तरवर्ती भूभाग में मन्दराचल है। यह महान् हिमालय का ही एक भाग है। 'रामायण' में इसकी गणना पांच महान्

1. हनू 13. 23 ॥
2. हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः काश्यपसन्देशमादाय। अभिज्ञा पृ० 335 ॥
3. प्रति पृ० 137 ॥
4. वत्स्यामि तेषु हिमवद्गिरिकाननेषु।
   दीप्तैरिवौषधिवनैरुपरञ्जितेषु॥ प्रति 5.11॥
5. क्रीडार्थं हिमवद्गुहासु चरिता दृष्टिश्च संलोभिता ॥ अवि 4. 10 ॥

पर्वतों (महेन्द्र, हिमवान्, विन्ध्य, मन्दर और कैलास) में की गई है[1]। 'महाभारत' के अनुसार यह हिमालय की शृङ्खला का ही एक भाग है[2] और गन्धमादन के पूर्व तथा बदरिकाश्रम के उत्तर में है[3]।

पौराणिक वर्णनों के अनुसार मन्दराचल को मथनी बना कर देव-दानवों ने समुद्र का मन्थन किया था[4]। 'कुमारसम्भव' में शिव ने पार्वती से विवाह करके क्रमशः मेरु, मंदर, कैलास और गंधमादन पर विचरण किया था[5]। भास ने वर्णन किया है कि मन्दर पर्वत की कन्दराओं में विद्याधर आदि देवयोनियां यौवन-सुलभ विलास क्रीडायें करती थीं[6]।

देव-दानवों द्वारा मन्दराचल की मथानी से समुद्र का मन्थन करने के कारण इसकी स्थिति की कल्पना समुद्र तट पर की जा सकती है। 'रामायण' में इसके समुद्रतटवर्ती होने का सङ्केत भी है[7]। परन्तु संस्कृत-साहित्य में इसका अधिकांश वर्णन हिमालय के ही क्षेत्र में हुआ है।

११. गन्धमादन—

हिमालय की एक शृङ्खला का नाम गन्धमादन है। कालिदास ने वर्णन किया है कि उर्वशी विहार करने के लिए पुरूरवा को गन्धमादन पर्वत पर ले गई थी। वहीं मन्दाकिनी नदी है[8]। गन्धमादन के समीप ही कुमारवन है। इसमें स्त्रियों का प्रवेश वर्जित है[9]।

प्राचीन साहित्य में गन्धमादन का प्रचुर उल्लेख है। 'विष्णु-पुराण' में इसको विष्णु का निवास कहा गया है। यहां पूर्व में मन्दर और दक्षिण में गन्धमादन है[10]। इसी गन्धमादन पर बदरिकाश्रम है[11]।

वर्तमान समय में हिमालय का एक शिखर गन्धमादन के नाम से प्रसिद्ध है। 'महाभारत' की एक कथा के अनुसार वानप्रस्थ ग्रहण करके

---

1. रामायण–किष्किन्धाकाण्ड 73.2 ।। 2. मभा अनुशासन पर्व अध्याय 19।।,
3. मभा वनपर्व अध्याय 162–164 ।। 4. अन 7. 47., रघु 4. 27 ।।
5. कुमार 8 22-59।। ६. भूयोमन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदितं यौवनम्।अवि 4.10।
7. रामायण किष्किन्धाकाण्ड 73. 2 ।। 8. विक्र पृ० 213 ।।
9. वही पृ० 214 ।।
10. पूर्वेण मन्दरो नाम दक्षिणे गन्धमादनः। विष्णुपुराण 2.2.16 ।।
11. यद् बदर्याश्रमं पुण्यं गन्धमादनपर्वते। विष्णुपुराण 2.2.17।।

पाण्डु ने हिमालय की यात्रा की। वे जैतवन, कालकूट और हिमवन्त को पार करके गन्धमादन पहुँचे[1]। बदरीनाथधाम से कुछ पहले पड़ने वाले पाण्डुकेश्वर स्थान को पाण्डु की तपोभूमि कहा जाता है। इसके समीप ही विश्वविख्यात पुष्पों की घाटी है। यहां प्रभूत मात्रा में विविध प्रकार के सुगन्धित पुष्प खिलते हैं। मादक गन्ध वाला होने के कारण इसी को गन्धमादन कह सकते हैं।

कालिदास ने गन्धमादन के समीप मन्दाकिनी नदी का उल्लेख किया है। गन्धमादन के उपवनों में याचकों की मनोकामना को पूरा करने वाले कल्पवृक्ष थे। समीप ही हैमवतपुर (औषधिप्रस्थ) था[2]। मन्दाकिनी नदी केदारनाथ के समीप हिमानियों से निकल कर रुद्रप्रयाग में अलकनन्दा में मिल जाती है। इन वर्णनों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 'महाभारत' तथा पुराणों की रचना के समय में वर्तमान रुद्रप्रयाग और केदारनाथ से लेकर वदरीनाथ के भी कुछ आगे तक का क्षेत्र गन्धमादन कहलाता था। इस क्षेत्र को सिद्धों, गन्धर्वों, अप्सराओं और देवताओं की क्रीड़ाभूमि एवं ऋषियों की तपोभूमि कहा गया है।

वर्तमान समय में बदरिकाश्रम (बदरीनाथधाम) के उत्तर-पूर्व में स्थित पर्वत को गन्धमादन कहा जाता है।

12. कैलास—

मन्दर पर्वत के उत्तर में कैलास पर्वत है[3]। यह भगवान् शिव का निवास-स्थान है[4]। शिव की क्रीड़ा-भूमि होने से यह पर्वत कैलास (कैलं शिवस्य केलीनां समूह आस्यतेऽत्र इति कैलासः) कहलाया। इस स्थान का अधिपति देवता कुबेर माना गया है, अतः उसको कैलासनाथ कहा गया। बाल्मीकि ने इस पर्वत की गणना पांच प्रधान पर्वतों में की है[5] और इसको उत्तर में स्थित कहा है[6]। 'महाभारत'[7] और 'ब्रह्माण्डपुराण'[8] के अनुसार कैलास की स्थिति का अनुमान कुमायूं—गढ़वाल की उत्तर—पश्चिम पर्वत श्रेणियों में किया

---

1. स चैत्ररथमासाद्य कालकूटमतीत्य च।
   हिमवन्तमतिक्रम्य प्रययौ गन्धमादनम्॥ मभा आदि पर्व॥
2. कुमार 46–47॥ 3. अन पृ० 340॥ 4. काव्य 85.15॥
5. रामायण किष्किन्धाकाण्ड 73.2॥ 6. वही 73.22॥
7. मभा वनपर्व अध्याय 144; 156॥ 8. ब्रह्माण्डपुराण अध्याय 51॥

जा सकता है। कालिदास के वर्णनों से भी इसी प्रकार का आभास मिलता है[1]। कैलास पर्वत शाश्वत हिम से ढका हुआ है। यह मानो स्फटिक का बना है और अप्सरायें इसमें अपना मुख देख सकती हैं। कुबेर की राजधानी अलकापुरी कैलास की तलहटियों में बसी हुई थी[2]। कैलासनाथ कुबेर की सेवा करके लौटती हुई उर्वशी का अपहरण केशी राक्षस ने किया था।[3]।

अनेक स्थलों पर कैलास और हेमकूट पर्यायवाची हैं। 'महाभारत' के कुछ वर्णनों में इसका प्रतिपादन है[4]। 'विष्णुपुराण' में मेरु के दक्षिण में तीन पर्वत कहे गये हैं— हिमवान्, हेमकूट और निषध[5]। परन्तु साहित्यिक वर्णनों से कैलास और हेमकूट पृथक् ही प्रतीत होते हैं।

वर्तमान भौगोलिक विवरणों के अनुसार गढ़वाल में उत्तर में बन्दरपुच्छ की पर्वत श्रृंखलाओं से यमुना, गङ्गा और अलकनन्दा का उद्गम है। नन्दलाल डे का यह मत है कि यही पर्वत-श्रृंखला हेमकूट है। कैलास और बन्दरपुच्छ की पर्वत श्रृंखलाओं को कैलास नाम भी दिया गया है[6]। कैलास की स्थिति वर्तमान समय में तिब्बत में मानी जाती है। बैटन महोदय का कथन है कि मानसरोवर के उत्तर में लगभग 25 मील की दूरी पर नीति पास के पूर्व में कैलास पर्वत है। तिब्बती भाषा में इसको खंग-रिन-पेचे कहते हैं[7]। मानसरोवर को यह पर्वत तीन ओर घेरे हुये है। 'अभिधानकोष' के अनुसार यह राक्षसताल से 50 मील दूर है। सिन्धु, शतद्रु और ब्रह्मपुत्र नदियां यहां से निकलती हैं। भोट देश में यह तसि कहलाता है। गढवाल से नीति पास से होकर यहां जाया जा सकता है।

१३. हेमकूट—

पौराणिक साहित्य में हेमकूट पर्वत बहुत प्रसिद्ध है। यह अप्सराओं का निवास है। कालिदास ने वर्णन किया है कि हेमकूट नामक किम्पुरुष पर्वत पर मारीच नामक प्रजापति निवास करते हैं। यह तपस्या का सिद्धिक्षेत्र है[8]।

---

1. विक्र पृ० 87 ॥ 2. तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव...अलकाम्। पूर्वमेघ 46 ॥
3. कैलासनाथमनुसृत्य निवर्तमाना। विक्र 1. 4 ॥
4. हेमकूटस्तु सुमहान् कैलासो नाम पर्वतः। मभा भीष्मपर्व 6.41 ॥
5. हिमवान् हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे। विष्णुपुराण 2. 2. 10 ॥
6. ज्योडिएमि पृ० 75 ॥ 7. जे. ए. एस. बी. 1925 पृ० 314 ॥
8. हेमकूटो नाम किम्पुरुषपर्वतस्तपःसंसिद्धिक्षेत्रम्। यत्र-
स्वायम्भुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ॥ अभिज्ञा 7.9. ॥

मेनका ने शकुन्तला को इसी स्थान पर लाकर रखा था। उर्वशी की रक्षा करने के लिये केशी दैत्य का पीछा करते हुये पुरुरवा से अप्सराओं ने कहा था कि वे हेमकूट पर प्रतीक्षा करेंगी[1]।

पौराणिक भूगोल के अनुसार यह पृथिवी सात द्वीपों में विभक्त है– जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश क्रौंच, शाक और पुष्कर। जम्बूद्वीप में ९ वर्ष हैं– कुरु, हिरण्मय, रम्यक, इलावृत, हरि, केतुमाल, भद्राश्व, किन्नर और किम्पुरुष। यहां सम्भवतः हिमालय की मध्यवर्ती पर्वत भूमियों को किम्पुरुष कहा गया है। इसी की मध्यवर्ती कोई पर्वत भूमि हेमकूट कहलाती होगी। हेमकूट का काल्पनिक क्षेत्र 90 हजार योजन लम्बा और 2 हजार योजन चौड़ा कहा गया है।

'वराहपुराण' के अनुसार यमुना, भागीरथी और अलकनन्दा के उद्गम क्षेत्र में हेमकूट की स्थिति है[2]। नन्दलाल डे ने बन्दरपुच्छ पर्वत-शृंखला को हेमकूट माना है[3]।

. मेरु—

संस्कृत साहित्य में मेरु या सुमेरु का बहुधा उल्लेख है। यह पर्वत स्वर्ण का बना हुआ है और देवताओं का अधिवास है। मुरारि ने कैलास के उत्तर में मेरु को बताया है[4]। इसकी तलहटियों में चन्दन के वृक्ष हैं और भूमि स्वर्ण की है[5]। इसको कनकाद्रि भी कहते हैं[6]।

''महाभारत' के अनुसार मेरु या सुमेरु गंगा का उद्गम है[7]। 'पद्मपुराण' का भी यही कथन है। अतः मेरु की स्थिति उत्तरी गढवाल में होनी चाहिये। गङ्गा के उद्गम स्थल गोमुख के तीन ओर के पर्वत-शिखर मेरु हो सकते हैं। प्रातः-सायं सूर्य के प्रकाश में और चन्द्रमा की ज्योत्स्ना में ये हिम-मण्डित शिखर स्वर्ण के समान चमकते हैं। 'मत्स्यपुराण' के अनुसार सुमेरु पर्वत उत्तरकुरु जनपद से घिरा है[8]। उत्तरकुरु जनपद का विस्तार उत्तरी गढवाल से लेकर सतलज और व्यास नदियों की ऊपरी घाटियों तक माना

1. एतस्मिन् हेमकूटशिखरे। विक्र पृ० 156.॥
2. वराहपुराण अध्याय 82॥ 3. ज्योडिएमि पृ० 75॥
4. अन पृ० 346॥ 5. वही 7.55-56॥ 6. बाभा 2. 198॥
7. मभा शान्तिपर्व अध्याय 335-436॥
8. मत्स्यपुराण अध्याय 113॥

गया है । कुछ विद्वानों की मान्यता है कि केदारनाथ की पर्वत शृंखला ही मेरु है । वर्तमान समय में इसी को सुमेरु कहते हैं[1] । कालिदास ने मेरु की स्थिति कैलास और गन्धमादन के पास कही है । विवाह के बाद शिव-पार्वती ने यहां विहार किया था[2] ।

'तैत्तिरीय आरण्यक' में महामेरु का उल्लेख है । यहां अष्टक सूर्य सदा चमकता है[3] । इस आधार पर अनेक विद्वानों ने मेरु की स्थिति उत्तरी ध्रुव में कल्पित की है[4] । कुछ इसकी कल्पना साइबेरिया में करते हैं[5] ।

'महाभारत' के भीष्म पर्व के दूसरे अध्याय में मेरु को शाक द्वीप का पर्वत कहा गया है । अतः कुछ समालोचक मेरु को पामीर के पठार के समीप मानते हैं[6] । वासुदेवशरण अग्रवाल पामीर के पठार को ही मेरु कहते हैं[7] । परन्तु पुराणों और कालिदास के अनेक वर्णनों के आधार पर मेरु पर्वत की स्थिति गढ़वाल की उत्तरी पर्वतीय भूमियों में ही होनी चाहिये । इसके समीप ही गन्धमादन और कैलास हैं ।

15. क्रौञ्च–

भारतीय साहित्य में हिमालय के अन्तर्गत क्रौञ्च पर्वत का बहुधा उल्लेख हुआ है । परशुराम के कैलास जाते समय क्रौञ्च पर्वत की ऊंचाई वाधा बनती थी । इस पर्वत को वेध कर उन्होंने क्रौञ्च मार्ग बनाया । इससे हंस भी मानसरोवर जाया करते थे[8] । साहित्य में परशुराम द्वारा क्रौञ्च-मार्ग बनाने की कथा बहुत प्रसिद्ध है[9] । इसको हंस-मार्ग भी कहा गया था[10] ।

क्रौञ्च-रन्ध्र या क्रौञ्च-मार्ग वर्तमान समय का नीति दर्रा रहा होगा । यह गढ़वाल के चमोली जिले में स्थित है । ऋषिकेश से देवप्रयाग, श्रीनगर, रुद्रप्रयाग और जोशीमठ होकर तपोवन जाते हैं । यहां से कुछ ही दूरी पर

---

1. जे. ए. एस. बी. (1925) पृ० 361 ।। 2. कुमार 8.22-59 ।।
3. तैत्तिरीय आरण्यक 1.7 ।।
4. भूगोल पत्रिका (मई-जून-जुलाई 1932) वैदिक भूगोल पृ० 1 ।।
5. ऐना पृ० 758 ।। 6. ज्योडिएमि पृ० 89 ।।
7. भारत की मौलिक एकता पृ० 39 ।। 8. महा 2.17, हनू 1.42 ।।
9. भिन्नो मद्बाणवेगेन क्रौञ्चत्वं वा गमिष्यति । प्रति 5.12 ।।
10. पूर्वमेघ 57 ।।

नीति मार्ग है । भारत और तिब्बत के मध्य व्यापार का यह प्रमुख मार्ग रहा है [1]। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार अलमोड़ा से आगे लीपूलेक का दर्रा ही क्रौञ्च रन्ध्र है[2] ।

16 मैनाक–

पुराणों में मैनाक पर्वत को हिमालय का पुत्र कहा गया है । इन्द्र द्वारा पर्वतों के पंख काटे जाने पर वह समुद्र में छिप गया था[3] । अनेक कवियों ने इस कथानक के संकेत दिये हैं[4] ।

मैनाक पर्वत की यथार्थ भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में कहना कठिन है । हिमालय का पुत्र वर्णित होने से तथा समुद्र में छिपा होने से मैनाक को हिमालयवर्ती तथा दक्षिण समुद्रवर्ती दोनों स्थानों में स्थित माना जा सकता है । कुछ विद्वानों ने हिमालय की शिवालिक पर्वत श्रेणी को मैनाक माना है। इसको सामान्यतः लघु-हिमालय कहा जाता है । 'महाभारत'[5] और पुराणों[6] के वर्णन के अनुसार भी शिवालिक पर्वत-श्रेणी को मैनाक समझ सकते हैं । अनेक समालोचकों ने इसे स्वीकार किया है[7] ।

परन्तु पौराणिक कथाओं की रूढ़ियां इसको समुद्र के अन्तर्गत मानती हैं । सामान्यतः भारत और लंका के मध्यवर्ती समुद्र के अन्तर्गत इसको माना जाता है । कालिदास के अनुसार जब राम पुष्पक विमान द्वारा लंका से अयोध्या लौट रहे थे तो मध्य समुद्र में सैंकड़ों पर्वत छिपे थे, जो इन्द्र के वज्रप्रहार से पंख काटे जाने से डरे थे[8] । भारत के दक्षिणी छोर पर धनुष्कोटि से लंका तक चली गई समुद्र के गर्भ में विद्यमान पर्वत शृङ्खला को मैनाक माना जा सकता है ।

---

1. ज्योडिएमि पृ॰ 104 ।।
2. कादम्बिनी अक्टूबर 1962 ।। 3. बारा 7.39 ।।
4. पक्षच्छिदा गोत्रभिदात्तगन्धाः शरण्यमेनं शतशो महीध्राः । रघु 13.7 ।।
   मैनाकमम्भोनिधिबद्धसख्यम् । कुमार 1.20 ।।
   स चैको मैनाको पयसि मम मग्नो निवसति । प्रसन्नराघव 5.53 ।
5. मभा वनपर्व अध्याय 135 ।।
6. कूर्मपुराण अध्याय 36, मार्कण्डेय पुराण अध्याय 57 ।।
7. ज्योडिएमि पृ॰ 73, भूगोलपत्रिका–भुवनकोषाङ्क पृ॰ 4 ।।
8. रघु 13.7 ।।

17. सुवेल–

सुवेल पर्वत की स्थिति लंका में बताई गई है। समुद्र पार करके लंका पहुँच कर राम ने सुवेल पर्वत की उपत्यका में शिविर लगाया था[1]। लंका से अयोध्या जाते हुए राम के विमान ने सबसे पहले सुवेल पर्वत को पार किया था[2]। लंका में एडम्स पोक को सुवेल पर्वत माना गया है[3]।

18. त्रिकूट–

त्रिकूट पर्वत की स्थिति भी लंका में वर्णित है[4]। रावण का प्रमदवन त्रिकूट पर्वत पर बना था[5]।

प्राचीन वर्णनों के अनुसार त्रिकूट पर्वत की स्थिति भारतवर्ष में भी प्रतीत होती है। तीन शिखरों वाले किसी भी पर्वत को त्रिकूट कहा जा सकता था। हिमालय में एक त्रिकूट पर्वत का वर्णन है, जहां विशेष प्रकार का भोजन प्राप्त होता है[6]। कालिदास ने रघु की दिग्विजय में वर्णन किया है कि रघु द्वारा अपरान्त को जीत लेने पर उसके हाथियों ने त्रिकूट पर दान्तों की टक्करें मार कर जयस्तम्भ बनाया था[7]। त्रिकूट से रघु स्थल-मार्ग द्वारा पारसीक देश को जीतने गये थे[8]।

भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार नासिक के समीप की पर्वत श्रेणी ही त्रिकूट है[9]। 'अभिधानकोष' में गुजरात में गिरनार पर्वत के अन्तर्गत त्रिकूट बताया गया है। राधाकुमुद मुकर्जी अपरान्त को कोंकण मान कर नासिक के पश्चिम भाग में त्रिकूट पर्वत की स्थिति प्रतिपादित करते हैं[10]।

19. रोहणाचल–

कवियों ने वर्णन किया है कि दक्षिण भारत में रोहणाचल पर्वत पर अगस्त्य मुनि का आश्रम था[11]। सम्भवतः मलय पर्वत या उसके किसी भाग

---

1. अन पृ० 275, अभि पृ० 81 ॥ 2. अन पृ० 320॥ 3. ऐना पृ० 981 ॥
4. बारा पृ० 115 ॥
5. परभृतजुष्टं पद्मषण्डाभिरामं सुरुचिरतरुषण्डं तोयदाभं त्रिकूटम्।
   अभि 2.26 ॥
6. भूगोलपत्रिका भुवनकोषांक पृ० 13 ॥
7. मत्तेभरदनोत्कीर्णव्यक्तविक्रमलक्षणम्।
   त्रिकूटमेव तत्रोच्चैर्जयस्तम्भं चकार स ॥ रघु 4. 59 ॥
8. रघु 4.60 ॥ 9. काभा भाग 1 पृ० 34 ॥
10. प्राचीन भारत पृ० 118 ॥ 11. बारा पृ० 24, 444 ॥

के लिये रोहणाचल कहा गया होगा। मुरारि ने एक स्थान पर मलयाचल के आगे पर्वत पर अगस्त्य का दूसरा आश्रम बताया है[1]। एक अन्य प्रसंग में वे समुद्रतटवर्ती सैकत भूमि में रोहणगिरि बताते हैं, जहां अगस्त्य का दूसरा आश्रम है[2]।

20. माल्यवान्–

माल्यवान् पर्वत की स्थिति दक्षिण में गोदावरी को पार करके वर्णित है। सीता का हरण होने के पश्चात् विलाप करते हुए राम यहां घूमते रहे थे[3]। राम ने वर्षा ऋतु यहीं व्यतीत की थी।

राजशेखर वर्णन करते हैं कि माल्यवान् पर्वत पर केतकी के पादप, बांस के जंगल और कुटज-तमाल के वन हैं[4]। इस पर्वत को प्रस्रवण भी कहा गया है। भवभूति ने वर्णन किया है कि गोदावरी का उद्गम इसी पर्वत से हुआ है। इस पर्वत की स्थिति जनस्थान में है और यह घने वृक्षों से आच्छादित है। गोदावरी ने उसमें अनेक कन्दरायें बना दी हैं[5]। मुरारि के अनुसार इसी पर्वत के समीप गोदावरी के तट पर पंचवटी थी, जहां राम ने अपनी कुटी बनाई थी[6]। कालिदास वर्णन करते हैं कि लङ्का से अयोध्या की ओर लौटते हुए राम ने ऊंचे माल्यवान् शिखर को सीता को दिखाया था[7]। इसी के आगे पम्पा सरोवर था[8]।

अनुमान किया गया है कि आधुनिक औरंगाबाद का समीपवर्ती पर्वतीय क्षेत्र प्रस्रवण पर्वत है। पर्जीटर का मत है कि माल्यवान् और प्रस्रवण पर्वत एक ही हैं। पूरी पर्वत शृङ्खला को प्रस्रवण कहते हैं और माल्यवान् उसका एक शिखर है। यह वर्तमान समय में देवगिरि है[9]। नन्दलाल डे मैसूर की अनागुंडी पर्वत श्रेणी को माल्यवान् मानते हैं[10]। सीताराम चतुर्वेदी ने माल्यवान् को रत्नागिरि जिले में बताया है[11]।

---

1. अन 7.94 ॥ 2. अन पृ० 362 ॥ 3. अन 7.100 ॥

4. बारा 10.52 ॥ 5. महा पृ0 172 ॥ 6. अन पृ0 366 ॥

7. रघु 13.26 ॥ 8. रघु 13.30 ॥

9. जे. आर. ए. एस.–दी ज्योग्राफी आफ रामाज एक्जाइल (1894) पृ0 256–257 ॥ 10. ज्योडिएमि पृ0 123 ॥

11. कालिदास ग्रन्थावली–अभिधानकोष। पृ0 147 ॥

21. ऋष्यमूक—

ऋष्यमूक पर्वत किष्किन्धा राज्य में था। वालि ने यह स्थान सुग्रीव को रहने के लिए दे रखा था[1]। इस पर्वत पर ही मतङ्ग ऋषि का आश्रम था और उसके समीप ही पम्पा सरोवर था[2]।

वर्तमान समय में हम्पी के विरूपाक्ष मन्दिर से कुछ दूर स्थित एक पर्वत को ऋष्यमूक कहा जाता है[3]। ऋष्यमूक ही सम्भवतः कुञ्जवान् रहा होगा। भवभूति ने इसका जनस्थान में वर्णन किया है[4]।

22. चित्रकूट—

चित्रकूट प्रयाग के समीप मन्दाकिनी के तट पर वर्णित है[5]। प्रयाग में यमुना को पार करके चित्रकूट को मार्ग जाता है। प्राचीन समय में यहां घना जंगल रहा होगा और यहां घूमना कठिन होगा[6]। चित्रकूट के साथ वहने वाली एक धारा को मन्दाकिनी कहते हैं। मन्दाकिनी में विहार करके राम चित्रकूट गये थे[7]। भरत ने इसी स्थान पर आकर राम से घर लौटने की प्रार्थना की थी[8]।

कालिदास ने चित्रकूट के नीचे से बहने वाली मन्दाकिनी का सुन्दर वर्णन किया है। यह पृथिवी रूपी नायिका के गले का मोतियों का हार प्रतीत होती[9] है।

चित्रकूट की पहचान में कोई भ्रान्ति नहीं है। बांदा जिले में झांसी–मानिकपुर रेलवे मार्ग पर चित्रकूट स्टेशन स्थित है। यहां से चित्रकूट पर्वत चार मील है। चित्रकूट की पहाड़ी पर चढ़ने के लिए पक्की सीढियां बनी हैं। इनको छत्रसाल की रानी ने बनवाया था। रामनवमी और दीपावली को यहां मेले लगते हैं। चित्रकूट के सम्बन्ध में मल्लिनाथ को भ्रान्ति हुई थी। उसने 'मेघदूत' में वर्णित रामगिरि को ही चित्रकूट कह दिया था। चित्रकूट प्रयाग

---

1. महा 4.9 ।। 2. वही पृ0 188 ।।
3. ऐना पृ0 108 ।। 4. उत्त पृ0 76 ।। 5. महा पृ0 165 ।।
6. बारा पृ० 370 ।। 7. उत्त पृ0 434 ।। 8. हनू पृ0 48 ।।
9. एषा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तरभावतन्वी ।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे............।। रघु 13.47 ।।

के समीप है, जबकि रामगिरि नागपुर से 24 मील दूर है और वर्तमान समय में रामटेक कहलाता है।

23. मदगन्धीर–

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में मदगन्धीर पर्वत का उल्लेख हुआ है। नागवन में नीले हाथी के समाचार को जान कर उदयन ने नर्मदा नदी के पार वेणुवन में अपने परिजनों को छोड़ दिया था। यहां से वे नागवन में गये। कुछ योजन जाने पर मदगन्धीर पर्वत एक योजन रह गया था[1]।

भास के इस विवरण से प्रतीत होता है कि मदगन्धीर पर्वत नर्मदा को पार करके दक्षिण की ओर जाने पर कुछ योजन दूर रहा होगा। मदगन्धीर पर्वत और नर्मदा के तटवर्ती वेणुवन के मध्यवर्ती भूभाग में नागवन होगा। नर्मदा को पार करके कुछ ही दूरी पर ऋक्ष पर्वत है। सम्भवतः भास ने इसके ही किसी शिखर को मदगन्धीर कहा है।

24. श्रीपर्वत–

प्राचीन काल में श्रीपर्वत एक पवित्र तीर्थस्थान के रूप में प्रसिद्ध था। यह कृष्णा नदी के तट पर है। शिव के 12 ज्योतिर्लिङ्गों में से मल्लिकार्जुन नामक लिङ्ग का स्थान इस पर्वत को माना जाता है। भवभूति के समय में यह स्थान कापालिकों का विशिष्ट केन्द्र रहा होगा। 'मालतीमाधव' के अनुसार अघोरघण्ट कापालिक और उसकी शिष्या कपालकुण्डला श्रीपर्वत से पद्मावती आये थे[2]। कपालकुण्डला मालती को उठा कर इसी पर्वत पर ले गई थी[3]। इसी पर्वत पर सौदामिनी कापालिक व्रत का पालन करती थी[4]।

श्रीपर्वत ज्ञान–विज्ञान और शिक्षा का भी केन्द्र रहा होगा। यहां से श्रीखण्डदास नामक एक वनस्पतिविज्ञान का वेत्ता कौशाम्बी आया था। उसके प्रयोगों से पौधों पर विना ऋतु के भी पुष्प आ गये थे[5]।

'अग्निपुराण' के अनुसार श्रीपर्वत की स्थिति नर्मदा और कावेरी के संगम पर होनी चाहिए तथा यह प्रसिद्ध तीर्थ है[6]। परन्तु यह वर्णन विचित्र प्रतीत होता है, क्योंकि नर्मदा और कावेरी का संगम नहीं होता। श्रीपर्वत का उल्लेख 'श्रीमद्भागवत' में भी हुआ है[7]। दूसरी शताब्दी ईसवी में यह

---

1. एतावन्मात्राणीव योजनानि गत्वा क्रोशमात्रेणेव मदगन्धीरपर्वतमनासाद्य। प्रतिज्ञा पृ० 16॥
2. माल पृ० 32॥ 3. वही पृ० 360॥ 4. वही पृ० 31॥
5. रत्ना पृ० 42॥ 6. अग्निपुराण 113.3-4॥
7. श्रीमद्भागवत 5. 18. 16॥

स्थान प्रसिद्ध महायानी आचार्य नागार्जुन के नाम से नागार्जुनी कोंड के नाम से भी प्रसिद्ध रहा था[1]।

(ख) वन

संस्कृत नाटकों में अनेक वनों का भी उल्लेख हुआ है। प्रायः रामायण– महाभारत कालीन घटनाओं से सम्बन्धित वनों का इनमें वर्णन है। परन्तु अन्य भी कुछ वन प्रसंगवश आये हैं। प्रमुख वन निम्न हैं—

1. विन्ध्यारण्य–

भारतवर्ष के उत्तरापथ और दक्षिणापथ का विभाजन विन्ध्य पर्वत द्वारा हुआ है। इसके क्षेत्र में फैले हुये वन को विन्ध्य नाम दिया गया था। चित्रकूट को पार करके दक्षिण की ओर जाने पर विन्ध्य अरण्य प्रारम्भ होता है[2]। विन्ध्य वन अति प्राचीन काल से ही बहुत भयानक और दुःसंचार रहा था। वन्य हिंस्र पशुओं और जंगली जातियों के निवास के कारण इस वन में प्रवेश करना भयप्रद था। राजशेखर ने वर्णन किया है कि यहां पर्वतीय उपत्यकाओं में हाथी घूमते हैं, कन्दराओं में भालू रहते हैं, कुंजों में सिंहों का भय है, तलहटियों में चीतों तथा वृक्षों पर लंगूरों का आतंक है। पगदण्डियों पर पुलिन्दों (भीलों) के चक्कर लगा करते हैं[3]।

अनेक प्राचीन कवियों ने विन्ध्य वन की भयानकता तथा प्रकृति–सौन्दर्य का वर्णन किया है। यहां ऋषियों के भी आश्रम थे। बाण के 'हर्षचरित' और 'कादम्बरी' में इस वन का अति रोमांचक वर्णन है। इस वन की अधिष्ठात्री देवी विन्ध्यवासिनी मानी गई थी।

कालिदास के अनुसार उत्तर–दक्षिण की यात्रा करने के लिये विन्ध्य वन को पार करना होता था। यहां के मार्ग दुःसंचार थे और यहां लुटेरी जातियां रहती थीं। यात्रियों को लूटे जाने की घटनायें प्रायः होती रहती थीं। 'मालविकाग्निमित्र' नाटक के पांचवे अंक में विदिशा जाते हुए यात्रियों के दल को विन्ध्य वन में लूटे जाने का वर्णन हुआ है।

2. दक्षिणारण्य—

विन्ध्य वन को पार करके दक्षिण की ओर जाने पर दक्षिण भारत के वनों का सिलसिला प्रारम्भ होता है। इन वनों को दक्षिणारण्य कहा गया था[4]। ये वन अनेक प्रकार के हिंस्र पशुओं, भयानक पर्वतों तथा गह्वरों से भरे

---

1. ऐना पृ० 488 ॥
2. उत्त पृ० 66 ॥ 3. बारा 6.45 ॥ 4. उत्त पृ० 66 ॥

हुए थे[1]। दण्डकारण्य, पञ्चवटी और जनस्थान नामक वनप्रदेश दक्षिणारण्य के ही भाग थे।

3. दण्डकारण्य—

प्राचीन साहित्य में दण्डकारण्य, जनस्थान और पंचवटी बहुत प्रसिद्ध हैं। राम के वनवास से इनका बहुत सम्बन्ध रहा है तथा ये दक्षिणारण्य के ही भाग हैं। विन्ध्य वन से आगे दक्षिण में कृष्णा नदी तक का भूप्रदेश दण्डकारण्य कहलाता था। पूर्व में यह छोटा नागपुर और कलिंग की सीमाओं तक विस्तृत था। पश्चिम में इसका विस्तार विदर्भ तक था[2]। भवभूति के वर्णनों के अनुसार चित्रकूट से चल कर जनस्थान को पार करके दण्डकारण्य में पहुंचते हैं। उसी का एक प्रदेश मुञ्जवान् पर्वत था। यहां दनुकबन्ध नाम का राक्षस रहता था[3]।

प्राचीन साहित्य में दण्डकारण्य को पवित्र माना गया था। यहां अनेक तीर्थ थे और भक्त उपासक भगवान् की उपासना करते थे[4]। अगस्त्य का आश्रम भी इसी क्षेत्र में स्थित था। यहां अनेक गृहस्थ तपस्वी भी रहते थे[5]।

मुरारि के समय में दण्डकारण्य क्षेत्र के अधिपति रामदेव रहे होंगे[6]।

4. जनस्थान—

जनस्थान दण्डकारण्य का ही एक भाग था[7]। भारतीय साहित्य और जनमानस में जनस्थान का महत्व राम के निवास के कारण रहा। रावण ने इसी वन से सीता का अपहरण किया था। चलते समय उसने चुनौती दी थी कि यदि राम क्षत्रिय हैं तो युद्ध करें[8]। मुरारि ने जनस्थान में सीता द्वारा

---

1. महा पृ० 178 ॥ 2. जे. आर. ए. एस. (1894) पृ० 242 ॥
3. महा पृ0 179 ॥ 4. वही पृ0 49 ॥
5. अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति ।
   तेभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां बाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि ॥ उत्त 2.3 ॥
6. धर्मासनाधिकारिणि रामदेवे । अन पृ0 365 ॥
7. रघु 12.42, 13.22, उत्त पृ0 67 ॥
8. भोः भोः जनस्थाननिवासिनः शृण्वन्तु भवन्तः, बलादेव दशग्रीवः सीतामादाय गच्छति । क्षात्रधर्मे यदि स्निग्धः कुर्याद् रामः पराक्रमम् ॥
   प्रति 2.17 ॥

इसके वन-देवताओं को प्रणाम कराया है[1]। जनस्थान रावण के ही अधिकार क्षेत्र में था, क्योंकि उसने यहां सीमा के रक्षक के रूप में खर को नियुक्त किया था[2]।

प्राचीन साहित्य के अनुसार जनस्थान में अनेक ऋषियों के आश्रम थे और यह गोदावरी के तट पर पंचवटी से लगा हुआ था[3]।

जनस्थान की पहचान के सम्बन्ध में विद्वानों का मत है कि यह आधुनिक नासिक से लगा रहा होगा।

5. पञ्चवटी—

पञ्चवटी रामायणकालीन घटनाओं का प्रमुख स्थान है। जनस्थान पहुंच कर राम ने यहीं पर अपना निवास बनाया था। यह गोदावरी के तट पर स्थित था[4]। यहां पांच वट-वृक्ष रहे होंगे, अतः यह स्थान पञ्चवटी कहलाया। इस वन के सौन्दर्य से मुग्ध होकर राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि यहां कुटी बनाई जावे[5]। रावण ने सीता का अपहरण यहीं से किया था[6]।

पञ्चवटी की पहचान वर्तमान नासिक (बम्बई से 75मील पश्चिमोत्तर) के समीप ही गोदावरी के तट पर होनी चाहिये। पञ्चवटी में ही लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक–कान काटे थे। इसी कारण इस स्थान का नाम नासिक हुआ। नासिक की स्थिति नासिक रोड रेलवे स्टेशन से चार मील पश्चिमोत्तर गोदावरी के तट पर है।

: तपनवन—

'तपतीसंवरण' नाटक के अनुसार तपनवन में कुरुवंशी राजा मृगया के लिए आते थे[7]। इसकी स्थिति उत्तरकुरु में हिमालय में कही गई है। नाटक के वर्णनों के अनुसार इस वन में वामन रूप विष्णु कल्याणवामन का मन्दिर था। यहां भगवान् सूर्य (तपन) ने वामन की आराधना करके तीनों लोकों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य प्राप्त की थी।

---

1. भगवत्यो जनस्थानदेवता एषा वः परिचारिका सीता प्रणमति। अन पृ0 366 ॥
2. पश्यामि च जनस्थानं भूतपूर्वखरालयम्। उत्त 2.17 ॥
3. आ पृ0 65 ॥ 4. महा पृ0 169 ॥ 5. आ 2.1 ॥
6. अन पृ0 365 ॥ 7. तप पृ0 49 ॥

गढ़वाल के देवप्रयाग क्षेत्र में रघुनाथ जी के मन्दिर के पीछे एक छोटी सी गुहा वामनगुहा है, जिसमें वामनरूप विष्णु की मूर्ति है। प्रसिद्ध है कि देवप्रयाग में ही बलि ने यज्ञ किया था। उस यज्ञ को ध्वस्त करने के लिए विष्णु ने वामन के रूप में यहीं अवतार लिया था। अतः देवप्रयाग के चारों ओर के वन को तपनवन माना जा सकता है। प्राचीन भूगोल के अनुसार यह स्थान उत्तरकुरु में ही है।

7. नैमिषारण्य—

भारतीय साहित्य में नैमिषारण्य को अति पवित्र माना गया है। यह निर्विघ्न तपस्या का क्षेत्र था। अन्य स्थानों की अपेक्षा इसका महत्व अधिक था[1]। इस प्रदेश के वृक्ष सदा हरे-भरे रहते थे और जल कभी सूखता नहीं था। अतः यहां सदा यज्ञ होते रहते थे[2]। महान् यज्ञों का सम्पादन करने के लिए राजा नैमिषारण्य में आते थे। दिग्नाग के अनुसार राम ने अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन यहीं किया था[3]। कालिदास ने वर्णन किया है कि प्रतिष्ठानपुर का राजा पुरूरवा नैमिषारण्य में आकर यज्ञ करता था। इसी समय उसका उर्वशी से वियोग होता था, अन्य किसी भी समय वह अपनी प्रिया का साथ नहीं छोड़ता था[4]। वानप्रस्थ जीवन व्यतीत करने के लिए भी सुदूर प्रदेशों के राजा यहां आते थे[5]।

नैमिषारण्य में रहने वाले तपस्वी नैमिषीय कहलाते थे। वे अति प्रभावशाली माने जाते थे। विचार करने मात्र से उनके समक्ष सभी पदार्थ उपस्थित होते थे[6]। दिग्नाग ने नैमिषारण्य के मध्य से गोमती के बहने का वर्णन किया है[7]।

नैमिषारण्य की पहचान सन्दिग्ध नहीं है। लखनऊ जंक्शन से छोटी लाइन (उत्तर-पूर्वी रेलवे) पर 35 मील उत्तर-पश्चिम और सीतापुर से 20 मील दूर बालामऊ जाने वाले मार्ग पर नैमिषारण्य (नीमसार) स्टेशन है। इसके समीप ही नैमिषारण्य है। इस क्षेत्र को अभी भी अति पवित्र और तीर्थस्थान माना जाता है।

---

1. कुन्द पृ0 132–133 ।। 2. वही 4.6-7 ।। 3. वही पृ0 61 ।।
4. अन्यत्र नैमिषसत्रादवियुक्तोऽहमुर्वश्याः। विक्र पृ0 157 ।।
5. निःश्रेयसाय वनमेतदुपाश्रयन्ते। कुन्द 4.5 ।।
6. प्रति पृ0 137 ।। 7. कुन्द पृ0 81 ।।

8. कुमारवन—

कालिदास ने 'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में कुमारवन का उल्लेख किया है। इसकी स्थिति गन्धमादन पर्वत के क्षेत्र में मन्दाकिनी के समीप सङ्केतित की गई है। पुराणों में प्रसिद्ध है कि यह स्थान शिव के पुत्र कार्तिकेय का सिद्धिक्षेत्र था। कार्तिकेय चिर ब्रह्मचारी थे, अतः यहां स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था[1]। पुरूरवा से रूठ कर उर्वशी इसी क्षेत्र में चली गई थी और कुमार कार्तिके शाप के प्रभाव से लता के रूप में परिणत हो गई थी तदनन्तर सङ्गमनीय मणि के प्रभाव से उन दोनों का मिलन हुआ।

विजयेन्द्र कुमार माथुर ने कूर्माञ्चल (कुमायूं का एक प्राचीन नाम) को कुमारवन कहा है। परन्तु यह 'विक्रमोर्वशीयम्' में वर्णित कुमारवन से भिन्न है। इस नाटक का कुमारवन गन्धमादन पर्वत और मन्दाकिनी नदी से सम्बन्धित है, अतः इसको गढवाल में होना चाहिए। मन्दाकिनी नदी केदारनाथ से ऊपर के ग्लेशियर से निकल कर रुद्रप्रयाग में अलकनन्दा में मिल जाती है। अतः इन दोनों स्थानों के मध्य में कुमारवन होना चाहिये।

9. वेणुवन—

भास ने 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में वेणुवन का उल्लेख किया है। बालुकातीर्थ पर यमुना को पार करके वेणुवन प्रारम्भ हो जाता है[2]। वेणुवन से आगे नागवान की ओर मार्ग जाता है[3]। नागवन में नीले हाथी की उपस्थिति का समाचार पाकर उदयन ने वेणुवन होकर नागवन की ओर जाने का निश्चय किया था।

प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में वत्स देश से जो मार्ग कुण्डिनपुर की ओर जाता होगा, उस पर नर्मदा को पार करने का स्थान बालुकातीर्थ के नाम से प्रसिद्ध होगा। आगे दक्षिण में वेणुवन (बांसों का वन) था और उसके बाद नागवन था।

'महावंश' में वर्णन है कि राजगृह में वैमार पर्वत की तलहटी में नदी के दोनों ओर बांसों का वन (वेणुवन) था। इसे बिम्बसार ने भगवान् बुद्ध के लिए भेंट किया था[5]। परन्तु यह वेणुवन भास द्वारा वर्णित वेणुवन से भिन्न है, क्योंकि भास ने नर्मदा को पार करके उसके दक्षिण में वेणुवन बताया है।

---

1. स्त्रीजनपरिहरणीयं कुमारवनम्। विक्र पृ० 214 ॥
2. बालुकातीर्थेन नर्मदां तीर्त्वा वेणुवने कलत्रमावास्य......प्रतिज्ञा पृ० 15 ॥
3. वेणुवनाश्रितेषु गहनेषु नागवनं श्वः प्रयाता स्वामी। प्रतिज्ञा पृ० 7 ॥
4. ऐना पृ० 873 में महावंश 5. 115 से उद्धृत।

1 . नागवन—

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में नागवन का भी उल्लेख हुआ है। ऊपर कहा जा चुका है कि नागवन में नीले हाथी के होने का समाचार का पाकर उदयन ने बालुकातीर्थ पर नर्मदा को पार करके वेणुवन में परिवार को ठहरा कर नागवन की ओर प्रस्थान किया था। यह मार्ग काफी बड़ा रहा होगा, जिस पर सेना भी प्रयाण कर सकती थी।

नागवन की स्थिति का नर्मदा के दक्षिण में कुछ योजन की दूरी पर संकेत किया गया है[1]। अतः इसको नर्मदा के दक्षिण में 12–13 मील दूर माना जा सकता है। इतनी दूरी को उदयन द्वारा घोड़े पर पार करना कठिन नहीं है।

(ग) सरोवर

आलोच्य नाटकों में केवल दो सरोवरों का वर्णन मिलता है– मानसरोवर और पम्पासरोवर। मानसरोवर सुदूर उत्तर में तथा पम्पा दक्षिण में है।

1. मानसरोवर–

मानसरोवर की स्थिति कैलास पर्वत श्रेणी में है[2]। यह शिव-पार्वती का अति प्रिय विहार-स्थल है। मानसरोवर की दो विशेषतायें कही गई हैं– कमल और हंस। यहां स्वर्णकमल खिलते हैं और उनके मध्य हंस निवास करते हैं[3]।

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने पर हंसों के मानसरोवर की ओर जाने के रोचक कवित्वमय वर्णन किये गये हैं। शरद् का आरम्भ होने पर वे मानसरोवर से मैदानों की ओर वापिस आते हैं। कालिदास वर्णन करते हैं कि वर्षा ऋतु में हंस क्रौञ्चरन्ध्र (हंस मार्ग) से होकर उत्तर से कैलास पहुँच कर मानसरोवर जाते हैं। वे मानसरोवर के लिये अत्यधिक उत्कण्ठित रहते हैं[4]। अलकापुरी की ओर जाते हुए वे मेघ के सहायक हैं, क्योंकि उनको मानसरोवर तक जाना है[5]। कुलशेखर वर्मन ने भी यह बात कही है[6]।

---

1. प्रतिज्ञा पृ० 16 ।। 2. बारा पृ० 654 ।।
3. बारा 10. 15, ना 5. 37, हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः । पूर्वमेघ 66 ।।
4. मानसोत्काः पतत्रिणः सरसोऽस्मान्नोत्पतन्ति । पृ० 223 ।।
5. आकैलासाद् बिसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः । पूर्वमेघ 11 ।।
6. सुभ 2. 10 ।।

वर्षा ऋतु में हंसों के मानसरोवर जाने की प्रसिद्ध का मूरक्राफ्ट ने वैज्ञानिक विवेचन किया है। उनका कहना है कि इस ऋतु में नदियों का जल दूर-दूर तक फैल जाता है और हंसों के आहार को ढक लेता है। उस समय मानसरोवर की तटवर्ती चट्टानों में उनको अपना आहार प्राप्त होता है[1]।

भास ने मानसरोवर की स्थिति उत्तरकुरु में दिखाई है। यह ऊंचे हिमालय क्षेत्रों में स्थित है तथा इसी के समीप मन्दराचल है। वे वर्णन करते हैं कि एक विद्याधर प्रातः का समय उत्तरकुरु में व्यतीत करके मानसरोवर में स्नान करता है और उसके पश्चात् मन्दर पर्वत की गुफाओं में यौवन-विलास का अनुभव करता है[2]।

मानसरोवर की स्थिति वर्तमान समय में सुनिश्चित है। यह तिब्बत में समुद्र के धरातल से 15000 फीट ऊंचाई पर स्थित है। इसके एक ओर कैलास और दूसरी ओर मान्धाता पर्वत है। इसके समीप ही एक और दूसरा विशाल जलाशय राक्षसताल है। मानसरोवर का विस्तार 15 मील लम्बा तथा 11 मील चौड़ा है। यह आठ पहलों वाला है तथा इसका घेरा 65 मील का है। भारतीयों के लिये यह परम पवित्र तीर्थ है। पहले यहां भारतीय तीर्थयात्री और पर्यटक पर्याप्त संख्या में आते थे। वे इस सरोवर में स्नान करके, परिक्रमा करके तथा कैलास के दर्शन करके अपने को पुण्यशाली समझते थे। परन्तु वर्तमान समय में तिब्बत पर चीन का अधिकार हो जाने से यह तीर्थयात्रा बन्द हो गई है।

2. पम्पा सरोवर–

पम्पा सरोवर दक्षिण भारत में है। इसकी स्थिति दण्डकारण्य में कुञ्जवान् (ऋष्यमूक) पर्वत की तलहटी में है[3]। इस सरोवर में पुण्डरीक (श्वेत-कमल) और कुवलय (नील कमल) प्रचुर होते हैं। मल्लिकाक्ष (भूरे रंग के पैर तथा चोंच वाले हंस) बहुत संख्या में तैरते हैं[4]। पम्पा सरोवर के समीप ही मतङ्ग ऋषि का आश्रम है[5]।

पम्पा सरोवर वर्तमान समय में भी इसी नाम से प्रसिद्ध है। दक्षिण

---

1. दी एशियाटिक रिसर्चेज-खण्ड 12, रिसर्चेज टु मानसरोवर पृ० 466 ॥
2. प्राक्सन्ध्या कुरुषूत्तरेषु गमिता स्नातं पुनर्मानसे।
   भूयो मन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदितं यौवनम् ॥ अवि 4. 10 ॥
3. उत्त पृ० 76 ॥ 4. वही 1.31 ॥ 5. महा पृ० 188 ॥

भारत में महाराष्ट्र के वेलारी जिले में हम्पी नामक नगर के उत्तर में पम्पा नदी है। यह तुंगभद्रा की सहायक है और अनागुण्डी की पहाड़ियों से लगभग आठ मील दूर ऋष्यमूक पर्वत से निकलती है। इसके उत्तर में विशाल सरोवर है, जो पम्पा कहलाता है। वर्तमान में यह स्थान तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध है और यहां अनेक प्राचीन जीर्ण मन्दिर हैं।

वर्तमान समय में पम्पा सरोवर का विस्तार 200×25 फीट है। परन्तु प्राचीन साहित्य के वर्णनों से यह बहुत अधिक विस्तृत प्रतीत होता है।

बिज्जिका ने विन्ध्यवासिनी के चण्डिकायतन के समीप पम्पा सरोवर की स्थिति कही है[1]। विन्ध्यवासिनी देवी का मन्दिर मिर्जापुर जिले में बनारस-इलाहाबाद के मध्य है। परन्तु इस मन्दिर के समीप कोई पम्पा सरोवर नहीं है। तथापि इम्पीरियल गजेटियर में विन्ध्याचल के समीप किसी पम्पापुर के अवशेषों का उल्लेख है। यहां किसी समय भारशिव राजाओं की राजधानी रही थी। यहीं किसी समय किसी झील का नाम पम्पा सरोवर रहा होगा, कालान्तर में यह सूख गई होगी[2]।

(घ) समुद्र और द्वीप

संस्कृत नाटकों के भौगोलिक संकेतों में समुद्रों का वर्णन अधिक नहीं है। पूर्व समुद्र और पश्चिम समुद्र का उल्लेख हुआ है। समुद्र यात्राओं का भी कहीं कहीं सङ्केत है। सिंहल द्वीप से वत्स की ओर आते हुए सिंहल की राजकुमारी रत्नावली का पोत समुद्री तूफान के कारण टूट कर डूब गया था। कौशाम्बी के व्यापारियों का एक पोत उधर से जा रहा था। ये व्यापारी रत्नावली को समुद्र से निकाल कर कौशाम्बी में यौगन्धरायण के पास ले आये[3]। मुरारि ने समुद्रतटवर्ती भूमि का उल्लेख किया है[4]। अनेक नाटकों में समुद्र को पार करके लंका जाने के विशद वर्णन मिलते हैं।

कालिदास के वर्णनों से विदित होता है कि उनके युग में समुद्रों के मार्गों से दूसरे देशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। दूर-दूर के देशों से जहाज माल लेकर भारतवर्ष में आते थे और यहां का माल बाहर ले जाते थे। 'अभिज्ञान-शाकुन्तलम्' में दुष्यन्त को समाचार दिया गया कि समुद्र के मार्ग से व्यापार

1. कौ पृ० 3 ।। 2. कौमुदीमहोत्सव की इन्ट्रोडक्शन पृ० 28 ।।
3. रत्ना प्रथम अंक ।। 4. अन 7.87 ।।

करने वाला व्यापारी निःसन्तान मर गया है[1]। प्राचीन साहित्य में समुद्र यात्राओं के प्रचुर वर्णन हैं।

आलोच्य नाटकों में समुद्रों के वर्णन प्रायः पौराणिक ही हैं। इससे इनकी यथार्थ स्थिति और स्वरूप का बोध होना अशक्य ही है। तथापि इन नाटकों में जिस प्रकार से समुद्रों का वर्णन हुआ है, उसका संकेत करना उचित होगा।

पुराणों के अनुकरण में सात समुद्रों की गणना की गई है[2]– लवण, मधु, सुरा, सर्पिः, दुग्ध, दधि और जल[3]। परन्तु इन समुद्रों का क्या स्वरूप था और ये कहां स्थित थे, यह जानना इन नाटकों से सम्भव नहीं है। समुद्र में भगवान् विष्णु शयन करते हैं। पृथिवी को धारण करने वाला शेषनाग कच्छप द्वारा धारण किया जाता है और इस कच्छप को समुद्र धारण करता है। इन्द्र द्वारा पर्वतों के पंख काटे जाने पर वे समुद्र में छिप गये थे।[4]

समुद्र-मन्थन की कथा का भी नाटकों में संकेत है। भगवान् विष्णु के आदेश से देवों और दानवों ने मिल कर समुद्र का मन्थन किया। राजशेखर ने समुद्र से निकले निम्न रत्नों का उल्लेख किया है– इन्दु, लक्ष्मी, मदिरा, कौस्तुभ, पारिजात, ऐरावत, अप्सरायें और धन्वन्तरि[5]। पौराणिक कथाओं के अनुसार समुद्र से 14 रत्न निकले थे[6]।

समुद्र की कुछ अन्य विशेषताओं का भी वर्णन हुआ है। अगस्त्य ऋषि ने इसका एक चुल्लू में पान कर लिया। समुद्र वेला का उल्लंघन नहीं करता, क्योंकि वाडवाग्नि जल का भक्षण कर लेता है[7]। सागर के पुत्रों ने इसको खोद कर बढ़ाया था और भगीरथ उसके पास मन्दाकिनी को लाये थे[8]। समुद्र को नदियों का पति कहा जाता है। गंगा कौर यमुना उसकी पत्नियां हैं[9]। समुद्र 33 करोड़ देवताओं का अधिवास भी है।[10]

---

1. अभिज्ञान षष्ठ अंक ॥ 2. हनू 1.32 ॥
3. बारा पृ॰ 451 ॥ 4. वही 7. 39–41 ॥ 5. वही 7.36 ॥
6. लक्ष्लीकौस्तुभपारिजातकसुराः धन्वन्तरिश्चन्द्रमाः
   गावो कामदुधा सुरेश्वरगजो रम्भादिदेवाङ्गनाः।
   अश्वः सप्तमुखो विषं हरिधनुः शंखोऽमृतं चाम्बुधेः
   रत्नानीह चतुर्दश प्रतिदिनं कुर्युः सदा मङ्गलम् ॥ मङ्गलस्तोत्र ॥
7. बारा 7. 19 ॥ 8. वही 7. 39 ॥ 9. वही पृ॰ 422 ॥
10. त्रयस्त्रिंशतो देवकोटीनां वासः खल्वसौ। बारा पृ॰ 422 ॥

चारों ओर से समुद्र से घिरे भूभाग को द्वीप कहा जाता है। प्राचीन काल में भारतीय अनेक द्वीपों से परिचित थे। इन द्वीपों का भारत से नियमित सम्बन्ध था। द्वीपों के लिए यातायात के सङ्केत नाटकों में मिलते हैं[1]। यद्यपि द्वीपों के स्वरूप के विषय में कोई जानकारी नहीं है, तथापि कुछ नाम अवश्य दिये गये हैं। प्रायः इनकी भौगोलिक जानकारी न के तुल्य है। सिंहल अवश्य ही कुछ परिचित नाम है। 'रत्नावली' नाटिका में सिंहल की राजकुमारी रत्नावली की कथा है। इस द्वीप की पहचान वर्तमान सीलोन (लंका) से की जाती है। इसका विशेष वर्णन जनपदों के प्रसंग में किया गया है।

राजशेखर ने कर्पूर द्वीप का वर्णन किया है। इस द्वीप से आये वैज्ञानिक के प्रयोग द्वारा मालती का लतामण्डप ऋतु न होने पर भी लाल पुष्पों से भर गया था[2]। श्वेत द्वीप का उल्लेख 'कथासरित्सागर' में भी हुआ है। परन्तु वर्तमान समय में इस द्वीप की निश्चित भौगोलिक जानकारी और पहचान करना अभी तक सम्भव नहीं हो सका है।

---

1. हनू 1.10 ॥ 2. विद्ध प0 92 ॥


प्राचीन भारत
(संस्कृत नाटकों के सन्दर्भ में)
वन, नदी, पर्वत और सरोवर
चीन
पश्चिम समुद्र
(अरब सागर)
द क्षि णा प थ
पूर्व समुद्र
(बंगाल की खाड़ी)
दक्षिण समुद्र
(हिन्द महासागर)

तृतीय अध्याय

नदियां और उनके सङ्गम

संस्कृत नाटकों में कवियों ने अनेक नदियों का भी वर्णन किया है। इन नदियों को सामान्यतः दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है— उत्तर भारत की नदियां और दक्षिण भारत की नदियां। उत्तर भारत की नदियों का उद्गम सामान्य रूप से हिमालय की शृंखलाओं से हुआ है। पिघले हिम से उद्भूत होने के कारण ये सदा जल से भरी रहती हैं और केवल मानसूनी वर्षा पर ही निर्भर नहीं हैं। परन्तु वर्षा ऋतु में इनके जल में वृद्धि हो जाती है। दक्षिण भारत की नदियों का उद्गम विन्ध्य पर्वत की शृंखलाओं और दक्षिण भारत के पठारी क्षेत्र हैं। आलोच्य नाटकों में वर्णित नदियों के भौगोलिक स्वरूप का वर्णन वर्णक्रम के अनुसार किया जा रहा है।

1 कावेरी—

कावेरी दक्षिण भारत की प्रसिद्ध और पवित्र सरिता है। यह कर्नाटक प्रदेश से बहती हुई पूर्वी समुद्र में गिरती है। इसके तटों पर नारियल और सुपारी के वृक्ष तथा पान की लतायें प्रचुर होती हैं[1]। भवभूति के अनुसार यह नदी मलय पर्वत को परिवेष्टित करके बहती है[2]। प्राचीन काल में कांचो तथा कावेरीपत्तन जैसे प्रसिद्ध नगर इसी नदी के तट पर अवस्थित थे। 'वायुपुराण' में कावेरी का उद्गम सह्य पर्वत कहा गया है[3]।

कावेरी नदी मैसूर प्रदेश के कुर्ग जिले के ब्रह्मगिरि पर्वत के चन्द्रतीर्थ नामक स्रोत से निकलती है। यह 475 मील लम्बा मार्ग पार करके पूर्व समुद्र (बङ्गाल की खाड़ी) में गिर जाती है। इस नदी पर अनेक स्थानों पर

---

1. बारा 10.75 ॥ 2. महा 5.3 ॥ 3. वायुपुराण 45.104 ॥

बांध बनाकर सिंचाई के साधन प्रस्तुत किए गए हैं। किसी समय इसके समुद्र से मिलन-स्थान पर कावेरीपत्तन नामक प्रसिद्ध बन्दरगाह था।

प्राचीन साहित्य में कावेरी को बहुत पवित्र माना गया था। वर्तमान समय में भी दक्षिण भारत में इसकी पबित्रता बहुत मान्य है। इसको दक्षिण की गङ्गा कहा जाता है।

2. गोदावरी—

राम की कथा का गोदावरी नदी के साथ विशेष सम्बन्ध है। 'रामायण' में इसको अति पवित्र माना गया है। इसी के तट पर राम ने पर्णकुटी बना कर निवास किया था। यहां पञ्चवटी थी। गोदावरी को दक्षिण की गङ्गा भी कहा जाता है।

गोदावरी नदी विन्ध्य पर्वत की शृंखला के प्रस्रवण पर्वत से होकर बहती है[1]। इसका प्रवाह जनस्थान के मध्य से है। इसी के तट पर प्रसिद्ध पञ्चवटी थी[2]। राजशेखर के अनुसार गोदावरी नदी आन्ध्र प्रदेश में से बहती हुई पूर्व समुद्र में गिरती है[3]। गोदावरी की सात धाराओं और इसके तट पर स्थित शिव के विशाल मन्दिर का उल्लेख मिलता है[4]। 'वायुपुराण' के अनुसार गोदावरी का उद्गम सह्य पर्वत से है[5]।

गोदावरी का उद्गम नासिक से 20 मील दूर सह्य पर्वत की ढाल पर त्र्यम्बक ग्राम के समीप ब्रह्मगिरि से हुआ है[6]। यह नदी यहां से निकल कर 900 मील बह कर राजमहेन्द्री के समीप पूर्वी समुद्र (बङ्गाल की खाड़ी) में गिरती है। इस प्रकार यह महाराष्ट्र और आन्ध्र-प्रदेश को सींचती है। राजमहेन्द्री के समीप इस पर विशाल बांध बनाकर तीन नहरें निकाली गई हैं।

3. गोमती—

दिग्नाग ने गोमती का उल्लेख किया है। नैमिषारण्य के मध्य से बहने वाली[7] गोमती का तटवर्ती प्रदेश प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण था। यह रेतीला था और कांटेदार झाड़ियों तथा बिखरे शुक्तिपुटों से भरा रहता था[8]। नदी का जल स्वच्छ मरकत के समान हरे रंग का था। नदी में उगे कमलों की सुगन्धि से दिशायें सुगन्धित रहती थीं। यहां राजहंसों की ध्वनि गूंजती

---

1. उत्त पृ० 67 ॥ 2. महा पृ० 169 ॥ 3. बारा 6.56 ॥
4. अन पृ0 369, बारा पृ० 680 ॥ 5. वायुपुराण 45.104 ॥
6. काभा प्रथम भाग पृ० 45 ॥ 7. कुन्द पृ० 81 ॥ 8. वही पृ० 91 ॥

थी[1]। प्राचीन साहित्य में गोमती का वर्णन अनेक स्थानों पर है और इसको अति पवित्र माना जाता है।

गोमती नदी पीलीभीत जिले के बीसलपुर नगर के समीप एक झील से निकल कर सीतापुर और लखनऊ जिलों को पार करके गङ्गा में मिल जाती है। यह नैमिषारण्य में से बहती है। उत्तर-प्रदेश की राजधानी लखनऊ इसके तट पर है।

4. गौतमी—

कालिदास ने गौतमी नदी का उल्लेख किया है। इस नदी के किनारे तप करते हुए विश्वामित्र की साधना को मेनका ने भंग किया था[2]।

गौतमी नदी की स्थिति और पहचान विचारणीय है। इस नदी के तट पर ही सद्योजात शकुन्तला को छोड़ कर मेनका चली गई थी। यहां से उसको कण्व उडाकर लाये थे। अतः इस नदी को कण्व के आश्रम के समीप और मालिनी नदी के भी समीप होना चाहिए। इस कारण मालिनी में मिलने वाला कोई पर्वतीय स्रोत गौतमी नदी कहलाता होगा। 'महाभारत' में वर्णन है कि मेनका शकुन्तला को मालिनी नदी के तट पर छोड़ कर गई थी[3]। अतः यह भी अनुमान किया जा सकता है कि मालिनी का एक नाम गौतमी भी रहा होगा।

5. चन्द्रभागा—

राजशेखर ने चन्द्रभागा का उल्लेख किया है[4]। इस नदी की यथार्थ स्थिति कहना कठिन है। पंजाब की एक मुख्य नदी चन्द्रभागा (चनाब) है। राजशेखर ने उत्तरापथ की नदियों में चन्द्रभागा की गणना की है[5]। परन्तु 'बालरामायण' में जहां चन्द्रभागा नदी का वर्णन हुआ है, वहां उत्तरापथ की अन्य नदियों-सिन्धु आदि का उल्लेख न होने से यह कहना कठिन है कि इस स्थल पर राजशेखर ने पंजाब की चन्द्रभागा का वर्णन किया है। पन्ढरपुर (दक्षिण भारत) में विद्यमान भीमा नदी का एक नाम चन्द्रभागा भी है[6]।

---

1. कुन्द 3.5 ॥
2. गौतमीतीरे तस्य राजर्षेरुग्रे तपसि वर्तमानस्य......मेनका नामप्सराः प्रेषिता नियमविघ्नकारिणी। अभिज्ञा पृ० 168 ॥
3. प्रस्थे हिमवतो रम्ये मालिमीमभितो नदीम्।
   जातमुत्सृज्य तं गर्भं मेनका मालिनीमनु ॥ मभा आदि पर्व 72.80 ॥
4. बारा 5.35 ॥ 5. काव्य 94.12–13 ॥ 6. आप्टे डि भाग 3 अपेन्डिक्स पृ० 42 ॥

भारतवर्ष में अन्य भी चन्द्रभागा नाम की नदियां हैं। एक चन्द्रभागा कोणार्क के समीप बहती है। दूसरी सौराष्ट्र के उत्तर-पश्चिम में बहती है। ऋषिकेश के उत्तर में एक चन्द्रभागा गङ्गा में मिलती है। इसमें वर्षा में ही जल दृष्टिगोचर होता है।

6. तमसा—

प्राचीन साहित्य में तमसा नदी का बहुत महत्व है। इसी के तट पर बाल्मीकि का आश्रम था। यहां स्नान के लिए जाने पर व्याध द्वारा किए गए क्रौंच पक्षी का वध उन्होंने देखा था। क्रौंच के वियोग में रुदन करती हुई क्रौंची को देखकर उनको 'रामायण' की रचना करने की प्रेरणा मिली थी[1]। कालिदास ने वर्णन किया है कि अश्वमेघ यज्ञ करते समय दशरथ ने सरयू और तमसा के तटों पर यज्ञ के स्वर्णिम स्तूप गड़वाये थे[2]।

बाल्मीकि दशरथ के मित्र थे। अयोध्या से निर्वासित सीता को बाल्मीकि के आश्रम में आश्रय मिला था। अतः तमसा को अयोध्या से अधिक दूर नहीं होना चाहिए। वर्तमान समय में एक टौंस नदी फैजाबाद, सुल्तानपुर आजमगढ़ और बलिया जिलों में से बह कर गङ्गा में मिल जाती है। अयोध्या से 12 मील दूर इस नदी पर रामचौरा घाट है, जिसके लिए विश्वास किया जाता है कि वन जाते समय राम ने इस स्थान पर तमसा को पार किया था। यह टौंस नदी ही सम्भवतः प्राचीन काल की तमसा है।

भारतवर्ष में दो अन्य भी तमसा नदियां प्रसिद्ध हैं। एक तो रीवा में है और दूसरी मध्य हिमालय में। हिमालय की टौंस उत्तरकाशी और देहरादून जिलों में बह कर सिरमौर में यमुना में मिल जाती है। इन तीन टौंस नदियों में से पहली को, जो बलिया जिले में गङ्गा में मिलती है, वह तमसा माना जा सकता है, जिसके तट पर बाल्मीकि का आश्रम था।

7. तापी—

तापी नदी का उल्लेख यमुना की सहायक नदियों में हुआ है[3]। 'वायु-पुराण' के अनुसार यह नदी विन्ध्यपाद से निकलती है[4]। 'विष्णुपुराण' में इसको ऋक्ष पर्वत से निकला कहा गया है[5]।

---

1. उत्त पृ० 128 ॥
2. कनकयूपसमुच्छ्रयशोभिनो......तमसासरयूतटाः। रघु 9.20 ॥
3. बारा 10.8 ॥ 4. वायुपुराण 45. 102 ॥ 5. विष्णुपुराण 2.3. 11 ॥

वर्तमान समय में तापी नदी की ताप्ती से पहचान हो सकती है। दक्षिण भारत की यह प्रमुख नदियों में हैं। सूरत के समीप यह नदी खम्बात की खाड़ी में पश्चिम समुद्र (अरब सागर) में गिर जाती है। इसका जल कुछ गरम रहता है। परन्तु यह ताप्ती नदी 'बालरामायण' में वर्णित तापी से भिन्न है। ताप्ती नदी पश्चिम समुद्र में गिरती है, जबकि राजशेखर ने तापी को यमुना की सहायक कहा है। वर्तमान में यमुना की सहायक नदियों में किसी का नाम तापी नहीं है। अतः राजशेखर द्वारा वर्णित तापी की पहचान अभी तक सम्भव नहीं हो सकी है।

8. ताम्रपर्णी–

ताम्रपर्णी दक्षिण भारत की प्रसिद्ध नदियों में है। छोटी होने पर भी इसने साहित्य में बहुत नाम पाया है यह मलय पर्वत से निकलकर समुद्र में गिर जाती है[1]। एक अन्य वर्णन के अनुसार यह पाण्ड्य देश में से बहती है[2]। इसके उत्तर में मलय पर्वत है[3]। ताम्रपर्णी के किनारों पर घने वनों और नारियल के वृक्षों का वर्णन है[4]। इसके मुहाने पर समुद्र से मोती प्राप्त होते हैं[5]। कालिदास ने ताम्रपर्णी के मुहाने से मोतियों के निकाले जाने का मनोरंजक वर्णन किया है[6]। 'कर्पूरमञ्जरी' के सनुसार ताम्रपर्णी का जल चन्दन, कर्पूर, काली मिर्च और ताम्बूल की लताओं से सुगन्धित रहता है[7]।

वर्तमान समय में ताम्रपर्णी नदी ताम्बरवरी के नाम से प्रसिद्ध है। यह मलय पर्वत श्रेणी में अगस्त्यकुण्ड से निकल कर पूर्वी समुद्र में गिरती है। यह स्थान मनार की खाड़ी कहलाता है। इस समय भी यह स्थान मोतियों तथा मत्स्य उद्योग के लिये प्रसिद्ध है।

9. तुङ्गभद्रा–

'हनूमन्नाटक' में तुङ्गभद्रा की गणना दक्षिण की नदियों में की गई है[8] यह दक्षिण की प्रसिद्ध नदियों में है। सह्य पर्वत श्रेणी इसका उद्गम है। यह

1. बारा 10.55 ।। 2. वही 3.31 ।।
3. बारा 10.85 ।। 4. वही 10.57 ।।
5. वही 6.55, कर्पू पृ० 155, अन पृ० 364 ।।
6. ताम्रपर्णीसमेतस्य मुक्तासारं महोदधेः।
ते निपत्य ददुस्तस्मै यशः स्वमिव सञ्चितम् ॥ रघु 4.50 ।।
7. कर्पू 1.27 ।। 8. हनू पृ० 70 ॥

दो स्थानों तुङ्ग और भद्रा से दो धाराओं में निकलकर मिल जाती है। अतः इसका संयुक्त नाम तुङ्गभद्रा है। इसका मूल उद्गम गंगामूल कहलाता है[1]।

10. नर्मदा–

नर्मदा नदी का उल्लेख प्राचीन साहित्य में बहुत हुआ है। इसका नाम रेवा भी प्रसिद्ध था। इस नदी को अति पवित्र माना गया था। भास ने उदयन सम्बन्धी नाटकों में इसका वर्णन किया है। यह नदी वत्स जनपद की दक्षिणी सीमा बनाती थी। नर्मदा को पार करके वेणुवन आता था। इसके पश्चात् नागवन था और उसके बाद मदगन्धीर पर्वत था[2] उदयन नर्मदा के तट पर प्रायः घूमता रहता था। जब उज्जयिनी के सैनिक उसको पकड़कर ले गये तो नर्मदा के तट पर उसकी घोषवती वीणा कुशों की झाड़ी में पड़ी मिली थी[3]।

कालिदास ने भी नर्मदा का वर्णन किया है। अग्निमित्र के राज्य की सीमा नर्मदा के तट पर थी। सीमा की सुरक्षा के लिये यहां अन्तपाल रहता था और उसका दुर्ग था[4]। यहां से दक्षिण जाने के लिये नर्मदा को पार करना होता था। मेघ के मार्ग का निर्देश करते हुए कालिदास कहते हैं कि आम्रकूट से उज्जयिनी को जाने वाले मार्ग पर नर्मदा (रेवा) को पार करना होता है[5]।

राजशेखर ने नर्मदा का प्रचुर उल्लेख किया है। असुरों की प्रसिद्ध त्रिपुरी नगरी इसी के तट पर थी[6]। साहित्य में शृंगार रस के साथ इस नदी का विशेष सम्बन्ध कहा गया है। रति सुख को देने वाली होने के कारण ही इस नदी का नाम नर्मदा प्रसिद्ध हुआ[7]। (नर्म रतिसुखं ददाति इति नर्मदा)। एक पौराणिक गाथा के अनुसार कार्तवीर्यार्जुन ने अपनी सहस्र भुजाओं से नर्मदा के प्रवाह को अवरुद्ध करके अपनी प्रियाओं के साथ इसमें जल-क्रीड़ा की थी[8]।

राजशेखर नर्मदा का उद्गम विन्ध्य बताते हैं। यह पश्चिम समुद्र में गिरती है[9]। इसके द्वारा आर्यावर्त और दक्षिण भारत का सीमा-विभाजन

1. इण्डियनएन्टीक्वेरी पृ० 212 ।। 2. प्रतिज्ञा पृ० 15–16 ।।
3. अस्माभिः नर्मदातीरे कूर्चगुल्मलग्ना दृष्टा । स्वप्न पृ0 210 ।।
4. नर्मदातीरे अन्तपालदुर्गे । माका पृ0 9 ।।
5. रेवां प्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णनम् । पूर्वमेघ 20 ।।
6. विद्ध 4.22 ।। 7. बारा 10.77 ।। 8. वही 2.38 ।।
9. बारा 6.52 ।।

भी होता है[1]। यह नदी दशार्ण देश में से होकर बहती है[2]। वर्तमान भौगोलिक विवरणों के अनुसार नर्मदा नदी विन्ध्य शृंखला के अमरकण्टक पर्वत की मेखल शृंखला से निकल कर 800 मील तक बह कर पश्चिम समुद्र (अरब सागर) में खम्बात की खाड़ी में भृगुकच्छ (भड़ौच) के समीप गिरती है।

11. पयोष्णी

राजशेखर का कथन है कि पयोष्णी नदी कुन्तल देश में से होकर बहती है[3]। कुन्तल दक्षिणापथ का प्रसिद्ध नगर है। अतः यह नदी दक्षिण भारत की है। 'वायुपुराण' के अनुसार पयोष्णी नदी विन्ध्य पर्वत से निकल कर विदर्भ देश में से बहती है[4]। नन्दलाल डे पयोष्णी को ताप्ती की सहायक पूर्णा मानते हैं[5]। परन्तु पुराणों में पूर्णा और पयोष्णी को अलग-अलग माना गया है। डे का कथन है कि कुछ विद्वान पयोष्णी की पहचान गोदावरी की सहायक पेनगंगा से करते हैं[6]। कुछ समालोचकों ने तापी और पयोष्णी को एक ही माना है। परन्तु 'श्रीमद्भागवत' में इन दोनों नदियों का अलग-अलग वर्णन किया गया है[7]। 'विष्णुपुराण' का भी यही मत है। उसके अनुसार ये दोनों नदियां भिन्न हैं और ऋक्ष पर्वत से निकलती हैं[8]।

12. भागीरथी गंगा–

भारतवर्ष में भागीरथी नदी को अति पवित्र और पापविनाशिनी माना जाता है[9]। एक प्रकार से भारत की संस्कृति भागीरथी (गंगा) की ही संस्कृति है। यह नदी माता के समान आदरणीय है[10]। गंगा के जल का स्पर्श करने मात्र से सब पाप धुल जाते हैं[11]। पुराणकारों का तो यहां तक

---

1. वही पृ० 382 ॥ 2. वही 10.77 ॥
3. विद्ध पृ० 198 ॥ 4. वायुपुराण 45.104 ॥
5. ज्योडिएमि पृ० 156 ॥ 6. वही पृ० 50 ॥
7. कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या ।
   पयोष्णी तापी रेवा श्रीमद्भागवत 5.19. 18 ॥
8. तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या प्रमुखाः ऋक्षसम्भवाः ।
   विष्णुपुराण 2.3.11 ॥
9. पुण्यसलिता भगवती भागीरथी । उत्त पृ० 62 ॥
10. कुन्द पृ० 12, प्रति 3.16 ॥
11. गंगास्पर्शनात् धौतकल्मषांगः । पंच पृ० 18 ॥

कहना है कि सैंकड़ों योजन दूर से भी गंगा का स्मरण करके नामोच्चार करने से सभी पाप नष्ट होकर मुक्तिलोक प्राप्त होता है[1]।

भागीरथी के उत्पन्न होने के सम्बन्ध में पौराणिक कथा प्रसिद्ध है कि इसका उद्भव विष्णु के चरण से हुआ था[2]। इक्ष्वाकुवंशी राजा भगीरथ ने कठोर तप करके इसका भूतल पर अवतरण कराया था[3]। कपिल मुनि के क्रोध से सगर-पुत्रों के भस्म हो जाने पर पितरों का उद्धार करने के लिये भगीरथ ने यह तप किया था[4]। भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्माने अपने कमण्डलु से इसको पृथिवी पर उडेला था[5]। कपिल मुनि का आश्रम उस स्थान पर बताया जाता है, जहां बंगाल की खाड़ी में गंगा समुद्र में मिलती है। यह स्थान इस समय गंगासागर कहलाता है तथा हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थ है।

कवियों ने गंगा (भागीरथी) के सुन्दर वर्णन किये हैं। हिमालय के सातवें शिखर पर शिव के मस्तक से गंगा का जल नीचे गिरता है। इसका पान काञ्चनपार्श्व नाम के मृग करते हैं[6]। वर्षाऋतु में कगारों के टूट जाने पर मिट्टी मिल जाने से इस नदी का जल मलिन हो जाता है। परन्तु वह अति शीघ्र स्वच्छ भी हो जाता[7] है।

उद्गम से लेकर समुद्र में मिलन तक गंगा के तट पर तीर्थ स्थानों की बहुतायत है! इनमें से कुछ का उल्लेख नाटकों में भी आया है। वाराणसी बहुत प्रसिद्ध तीर्थ है[8]। भागीरथी और यमुना के संगम पर प्रयाग नामक पवित्र तीर्थ है। भागीरथी तथा शोण के संगम पर कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) बसा हुआ था[9]। कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर भी भागीरथी के ही तट पर बसी थी[10]।

वर्तमान भौगोलिक पर्यवीक्षणों के अनुसार भागीरथी का उद्गम गोमुख ग्लेशियर से है। यह स्थान गंगोत्तरी नामक प्रसिद्ध तीर्थ से 12 मील उत्तर में है। गोमुख से बह कर भागीरथी गंगोत्तरी पहुँचती है।

---

1. गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनाना शतैरपि।
   मुच्यते सर्वपापेभ्यो मुक्तिलोकं स गच्छति॥
2. तप पृ0 139॥ 3. वारा पृ0 367॥ 4. उत्त 1.23॥
5. बारा पृ0 7.42॥ 6. प्रति पृ0 137॥
7. गंगारोधःपतनकलुषा गच्छतीव प्रसादम्। विक्र 1.9॥
8. चण्ड पृ0 166॥ 9. मुद्रा 3.9॥ 10. तप 9.10॥

समुद्रतल से यह स्थान 10400 फीट ऊंचा है। यहां प्राचीन गंगामन्दिर है। गंगोत्तरी को केदारनाथ के चार पवित्र धामों में गिना जाता है। यहां एक प्रसिद्ध शिला है। प्रसिद्ध है कि गंगा का अवतरण कराने के लिए भागीरथ ने इसी शिला पर बैठ कर तपस्या की थी। इस शिला को भागीरथ शिला कहा जाता है।

गंगोत्तरी से आगे चल कर भागीरथी उत्तरकाशी और टिहरी जिलों में से बहती हुई प्रसिद्ध तीर्थस्थान देवप्रयाग पहुँचती है। यहां इसके साथ अलकनन्दा का संगम होता है। उद्गम से देवप्रयाग तक इस नदी को भागीरथी कहते हैं। अलकनन्दा से मिलने के बाद इसका नाम गंगा हो जाता है। पर्वतीय क्षेत्र से बह कर हरिद्वार के समीप यह मैदानों में प्रवेश करती है। यहां इसके दायें तट पर मनसा देवी और बायें तट पर चण्डी देवी के पर्वत शिखर हैं। यहां से यह उत्तरप्रदेश, बिहार और बंगाल को पार करके पूर्व समुद्र (बंगाल की खाड़ी) में मिल जाती है। मिलन का यह स्थल गंगासागर कहाता है।

गोमुख से लेकर गंगासागर तक इस नदी की लम्बाई 1550 मील है। बंगाल में यह दो भागों में बंट गई है—पद्मा और हुगली। वर्तमान समय में हुगली पश्चिमी बंगाल की और पद्मा पूर्वी बंगाल की नदियाँ हैं।

13. मन्दाकिनी—

भारतीय साहित्य में भागीरथी का एक पर्याय मन्दाकिनी भी है। पापों और दुःखों का निराकरण करने के कारण इसको मन्दाकिनी कहा गया था (मन्दयति नाशयति अकान् दुःखान् पापान् इति मन्दाकिनी)। भवभूति ने चित्रकूट के समीप बहने वाली जलधारा को मन्दाकिनी कहा है[1]। प्रसिद्ध है कि सीता को स्नान कराने के लिए भगवती गंगा की एक धारा मन्दाकिनी के रूप में यहां प्रकट हुई थी। 'रघुवंश' में चित्रकूट के समीप बहने वाली एक नदी को; जो पयस्विनी की सहायक है, मन्दाकिनी कहा गया है[2]।

भगवतशरण उपाध्याय का कथन है कि गंगा के पर्वतीय भाग को मन्दाकिनी कहा गया था। कालिदास गन्धमादन पर्वत के क्षेत्र में मन्दाकिनी का उल्लेख करते हैं[3]। मन्दाकिनी गढ़वाल की प्रसिद्ध नदी है। यह चमोली

---

1. महा पृ० 165 ।। 2 मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे। रघु 13. 48 ।।
3. विक्र पृ० 213 ।।

जिले में है, जो केदारनाथ के समीप से निकल कर रुद्रप्रयाग में अलकनन्दा में मिल जाती है।

'मालविकाग्निमित्र' नाटक में भी एक मन्दाकिनी का उल्लेख है। परन्तु यह दक्षिण भारत में है। सम्भवत: यहां नर्मदा या गोदावरी को मन्दाकिनी कहा गया है[1], क्योंकि इसको भी पापविनाशिनी माना गया है। पौराणिक साहित्य के अनुसार मन्दाकिनी स्वर्ग में बहने वाली नदी है[2]।

14. मालिनी–

कालिदास ने वर्णन किया है कि मालिनी नदी के तट पर कण्व का आश्रम था[3]। इस नदी के तट पर सुन्दर लतामण्डप थे। मालिनी के जल के स्पर्श से शीतल और सुगन्धित पवन यहां प्रवाहित होता था[4]। इसका तट रेतीला था तथा यहां हंस विश्राम करते थे। इसके दोनों ओर हिमालय की तलहटियां विद्यमान थीं[5]।

ऊपर के वर्णन से प्रतीत होता है कि मालिनी का उद्गम हिमालय की निचली पहाड़ियां हैं। हिमालय को लांघ कर जहां यह नदी मैदानों में प्रवेश करती है, वहीं कण्व का आश्रम था। महाभारत में मालिनी को हिमालय की तलहटी से निकाला गया है, जहां मेनका अपनी सद्योजात कन्या को छोड़ कर चली गई थी।

मालिनी की पहचान पौड़ी गढवाल जिले और बिजनौर जिले में प्रवाहित होने वाली मालन नदी से की गई है। यह गढ़वाल के पहाड़ों से निकल कर बिजनौर जिले में प्रवेश करती है और रावली घाट नामक स्थान पर गंगा में मिल जाती है[6]। कण्व आश्रम की स्थिति कोटद्वार से पश्चिमोत्तर दिशा में हरिद्वार की ओर जाने वाले मार्ग पर 6 मील दूर मानी गई है।

15. मुरला–

भवभूति ने मुरला नदी का उल्लेख किया है। अगस्त्य मुनि की पत्नी लोपामुद्रा ने मुरला को गोदावरी के पास भेजा था[7]। गोदावरी से मिलन के

1. काभा प्रथम भाग पृ० 39-40 ॥ 2. बारा 4. 10 ॥
3. कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो लक्ष्यते। अभिज्ञा पृ० 142 ॥
4. शक्यमरविन्दसुरभिः कणवाही मालिनीतरंगाणाम्। अभिज्ञा 3. 4 ॥
5. कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी।
पादास्तामभितो निषण्णहरिणा गौरीगुरोः पावनाः ॥ अभिज्ञा 6. 17 ॥
6. ऐना पृ० 740 ॥ 7. उरा पृ० 185 ॥

आधार पर इस नदी को उसकी सहायक माना जा सकता है।

नन्दलाल डे का कथन है कि पूना के समीप निकलने वाली भीमा की एक सहायक नदी मुलमुथा को ही मुरला समझना चाहिए[1]। भगवतशरण उपाध्याय मुरला की स्थिति केरल में मानते हैं[2]। यह सह्य पर्वत शृंखला से निकल कर पश्चिम समुद्र में अरब सागर में मिलती है। परन्तु इन दोनों हीं स्थानों पर भवभूति द्वारा वर्णित मुरला की स्थिति मानना कठिन है।

अगस्त्य का आश्रम दण्डकारण्य में था। यहाँ से लोपामुद्रा ने मुरला को भेजा था। अतः मुरला का गोदावरी की सहायक के रूप में दण्डकारण्य में बहना अधिक युक्तिसंगत है। राजशेखर ने दक्षिण भारत की नदियों का वर्णन किया है– ताम्रपर्णी, मुरला, कावेरी, नर्मदा, गोदावरी और तापी[3]। 'विद्धसालभञ्जिका' में मुरल देश का वर्णन है[4]। डा० मीराशी–इसको हैदराबाद का उतरी भाग कहते हैं[5]। अतः इस स्थान पर भी मुरला नदी की स्थिति की कल्पना की जा सकती है।

16. यमुना–

भारतीय साहित्य में यमुना नदी बहुत प्रसिद्ध है, यह गंगा की प्रमुख सहायक है[6]। कलिन्द पर्वत से निकलने के कारण इस नदी को कालिन्दी भी कहा जाता है। हिमालय की बन्दरपुच्छ पर्वत श्रेणी का एक भाग कलिन्द पर्वत कहा जाता है। पौराणिक वर्णनों के अनुसार यमुना सूर्य की पुत्री और यम की बहन है[7]।

यमुना को अति पवित्र और पुण्यशीला माना गया है। गङ्गा-यमुना का सङ्गम सभी पापों को नष्ट करने वाला तथा मन को शान्ति पहुंचाने वाला है[8]। यमुना के तट पर श्यामवट है[9]। यहां प्राचीनकाल में अनेक ऋषियों के आश्रम थे[10]। यमुना की माता के रूप में भी कल्पना की गई है[11]। इसका जल श्यामल वर्णित है[12]।

यमुना की अधिक प्रसिद्धि भगवान् कृष्ण के कारण हुई है। इस नदी के तट पर अवस्थित मथुरा (मधुरा) नगरी के एक कारागार में कृष्ण का जन्म

1. ज्योडिए मि पृ0 134 ॥
2. काभा प्रथम भाग पृ0 45 ॥ 3. बारा 5.50 ॥ 4. विद्ध 3. 18 ॥
5. कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इन्डिकेरम भाग 4 पृ0 314 ॥ 6. अन 7. 116 ॥
7. बारा 7.42 ॥ 8. उत्त 1.50 ॥ 9. वही पृ० 64 ॥
10. उत्त 1.50 ॥ 11. प्रति 3.16 ॥ 12. बारा 10.85 ॥

हुआ था । वर्षाऋतु में चढ़ी हुई यमुना को पार करके वसुदेव जब कृष्ण को लेकर गोकुल जाने लगे, तो इस नदी ने उफनकर उनका मार्ग रोक लेने का प्रयत्न किया[1] । परन्तु कृष्ण के चरण-स्पर्श को पाकर नदी ने प्रवाह को दो भागों में बांट कर मार्ग दे दिया[2] । कृष्ण की यमुना तट पर की गई बाल-लीलायें आज भी हिन्दू जन-मानस को अनुप्राणित करती हैं । 'बालचरितम्' नाटक में इनका विशद चित्रण है ।

वृन्दावन भी यमुना के तट पर है । इसके समीप गहरे यमुनादह (कालियदह) का वर्णन प्राचीन साहित्य में बहुत है । इसमें कालिय नाम का नाग रहता था । उसके भय से पशु-पक्षियों को भी वहां जाने का साहस नहीं होता था, अन्य जनों का तो कहना ही क्या है[3] । कृष्ण ने इस नाग का दमन करके यमुना को विष रहित किया था ।[4]

यमुना नदी हिमालय की शृंखलाओं से निकलकर उत्तर-प्रदेश के मैदानों को पार करती हुई प्रयाग में गङ्गा में मिल जाती है । हिमालय में इसका उद्‌गम स्थान यमुनोत्तरी कहलाता है । यह स्थान समुद्रतल से 13000 फीट ऊंचा है तथा प्रसिद्ध तीर्थ है । केदारखण्ड (गढ़वाल) के चार पवित्र धामों में इसकी गणना की जाती है ।

यमुना का विभिन्न जनपदों से सम्बन्ध रहा । चित्रकूट जाने के लिए यमुना को पार करना होता है[5] । उदयन सम्बन्धी नाटकों में यमुना का

---

1. अये इयं भगवती यमुना कालवर्षसम्पूर्णा स्थिता—
इमां नदीं ग्राहभुजङ्गसंकुला महोर्मिमालां मनसापि दुस्तराम् ।
भुजप्लवेनाशु गतार्थविक्लवो वहामि सिद्धिं यदि दैवतं स्थितम् ।।
बाच 1.18 ।।

2. हन्त द्विधा छिन्नं जलम्, इतः स्थितम् इतः प्रधावति । दत्तो मे भगवत्या मार्गः । यावदपक्रमामि (अवतीर्य) निष्क्रान्तोऽस्मि यमुनायाः ।
बाच पृ० 14 ।।

3. निष्पक्षिव्यालयूथं भयचकितकरिव्रातविप्रेक्षिताम्भो-
गम्भीरं स्निग्धनीरं ह्रदमुदधिनिभं क्षोभयन् सम्प्रविश्य ।
गोपीभिः शंकिताभिः प्रियहितवचनैः पेशलैर्वार्यमाणः
कालिन्दीवासरक्तं भुजगमतिबलं कालियं धर्षयामि ।। बाच 4.2 ।।

4. सतितेराभुग्नदुकूलकान्तिद्रुतेन्द्रनीलप्रतीमानवीचिम् ।
इमामहं कालियधूमधूम्रा शान्तविषाग्नि यमुना करोमि । बाच 4.4 ।।

5. बारा पृ० 370 ।

उल्लेख है। यह वत्स जनपद की सीमा बनाती थी। यमुना के कच्छ प्रदेशों में सालवन था, जहां हाथी वहुत होते थे[1]।

17. शिप्रा–

भारतीय इतिहास में शिप्रा नदी का नाम बहुत प्रसिद्ध रहा है। मालवा की इस विख्यात नदी के तट पर उज्जयिनी नगरी बसी है। किसी समय यह नगरी भारतवर्ष के प्रशासन, विज्ञान, कला, विद्या और संस्कृति का केन्द्र थी। उज्जयिनी के कारण शिप्रा ने भी बहुत अधिक प्रसिद्धि प्राप्त की। राजशेखर ने वर्णन किया है कि अवन्ती की राजधानी के चारों ओर शिप्रा नदी एक परिखा के रूप में विद्यमान् है[2]।

कालिदास ने शिप्रा का मनोरम वर्णन किया है। उज्जयिनी नगरी शिप्रा के तट पर है। इस नदी में सारस कूजन करते हैं और विकसित कमलों से इसका जल सुगन्धित रहता है। यहां प्रातःकाल नगर की अङ्गनायें स्नान करती हैं[3]।

शिप्रा का उद्गम ऋक्ष पर्वत के समीप की पहाड़ियों से है। यह उज्जयिनी से आगे बह कर चम्बल में मिल जाती है। इसकी उत्पत्ति के विषय में पौराणिक कथा है—

वसिष्ठ द्वारा अरुन्धती से विवाह कर लेने पर ब्रह्मा-विष्णु-महेश ने इनको शीतल जल उपहार में दिया। यह जल शिप्र सरोवर में संग्रहीत हो गया। बाद में विष्णु ने इस सरोवर को चक्र से काट कर शिप्रा नदी के रूप में प्रवाहित किया।

शिप्रा नदी को बहुत पवित्र माना गया है। इसमें स्नान करने से सभी पाप कट जाते हैं। कार्तिकी पूर्णिमा में इसमें स्नान करने का बहुत महत्व है। इसके तट पर उज्जयिनी में कुम्भ मेला लगता है।

18. शोण–

राजशेखर ने शोण नदी का उल्लेख पूर्वी भारत की नदियों में किया है[4]। विशाखदत्त के अनुसार कुसुमपुर गङ्गा–शोण सङ्गम पर बसा हुआ था।

---

1. वीणा पृ॰ 15 ॥ 2. बारा 3.4 ॥
3. दीर्घीकुर्वन् पटु मदकलं कूजितं सारसानां
   प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः।
   यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
   शिप्रावातः प्रियतमं इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ पूर्वमेघ 33 ॥
4. शोणलौहित्यौ नदौ। काव्य 93.23 ॥

इस नगर में जाने के लिए शोण को पार करना होता था[1]।

प्राचीन साहित्य में शोण का महानद के रूप में उल्लेख हुआ है। वर्षा ऋतु में इसमें इतना जल हो जाता है कि यह गङ्गा के प्रवाह से भी बढ़ जाता है। कालिदास वर्णन करते हैं कि शोण की ऊंची तरङ्गें गङ्गा के प्रवाह को भी अवरुद्ध कर लेती हैं[2]। बाढ़ के समय यह नदी विन्ध्य पर्वत की सुनहरी रेती को अपने साथ बहाकर ले आती है, जो इसके रेतीले तट पर बिछ जाती है। इस लाल सुनहरी रेती के कारण ही इस नदी को शोण नाम (लाल रङ्ग) दिया गया।

शोण की पहचान बिहार में बहने वाली सोन नदी से की जाती है। यह नदी नर्मदा के उद्गम स्थान से 5 मील पूर्व में अमरकण्टक से निकलती है। यह पहले उत्तर, फिर पूर्व और अन्त में उत्तर–पूर्व की ओर 500 मील तक बहकर पटना के समीप गङ्गा में मिल जाती है। प्राचीन समय में कुसुमपुर (पाटलिपुत्र) गङ्गा–शोण सङ्गम पर बसा हुआ था। परन्तु वर्तमान समय में इस नगर से, जो अब पटनाके नाम से प्रसिद्ध है, शोण की धारा 60 मील पूर्व की ओर हट गई है।

19. सरयू–

सरयू का उल्लेख नाटकों में अयोध्या के प्रसङ्ग में हुआ है। अयोध्या नगरी इस नदी के तट पर बसी थी। यहां इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने अनेक यज्ञ-स्तम्भ लगवाये थे[3]। कालिदास ने भी सरयू के तट पर यज्ञ के लिए यूपों के गाड़े जाने का वर्णन किया है[4]। अज ने अति पवित्र समझे जाने वाले तीर्थ गङ्गा–सरयू सङ्गम पर प्राणों का त्याग किया था[5]। यह नदी ब्रह्मसरोवर (मानसरोवर) से निकलती है[6]

---

1. मुद्रा 4.16 ॥
2. तस्याः स रक्षार्थमनल्पयोधमादिश्य पित्र्यं सचिवं कुमारः।
   प्रत्यग्रहीत् पार्थिववाहिनीं तां भागीरथीं शोण इवोत्तरंगः॥ रघु० 7 36
3. अन 7.130–132 ॥
4. जलानि या तीरनिखातयूपा वहत्ययोध्यामनुराजधानीम्। रघु 13.61 ॥
5. तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोर्देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः। रघु 8.95 ॥
6. ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति। रघु13.60 ॥

वर्तमान समय में भी अयोध्या सरयू के तट पर ही है। सरयू का मूल उद्गम मानसरोवर है। यहां इसका नाम कोडयानी है। तदनन्तर यह कुमायुं के पिथौरागढ़ जिले के पर्वतीय क्षेत्रों से होकर काली नदी के नाम से भारत और नेपाल की सीमाओं का विभाजन करती हुई टनकपुर के समीप मैदानों में प्रवेश करती है। यहां इसको शारदा कहते हैं। तदनन्तर यह नदी उत्तरी उत्तरप्रदेश में से बहती हुई छपारे के समीप गङ्गा में मिल जाती हैं। किन्हीं स्थानों पर यह घाघरा भी कहलाती है।

20. सिन्धु–

कालिदास ने सिन्धु का उल्लेख किया है। यहां पुष्यमित्र ने अपने अश्वमेघ के अश्व को भेजा था। यवनों द्वारा इसको पकड़े जाने पर युद्ध में उनकी पराजय हुई[1]। तदनन्तर पुष्यमित्र का साम्राज्य सिन्धु के पार तक विस्तृत हो गया।

सिन्धु नदी हिमालय की पर्वतश्रेणियों में मानसरोवर के समीप से निकलकर पश्चिम लद्दाख में बहकर दक्षिणवर्ती होकर सीमाप्रान्त से निकल कर सिन्ध के मध्य होती हुई कराची के पास समुद्र में मिल जाती है। इस प्रकार यह 1800 मील की यात्रा करती है। भारतवर्ष के पश्चिमी देशों से आक्रमणकारी इसी नदी को पार करके इस देश में आये थे। इनके कारण ही इस देश का नाम हिन्द (सिन्ध) प्रसिद्ध हुआ।

21. अन्य नदियां--

भवभूति ने पद्मावती नगरी के वर्णनों में कुछ नदियों का उल्लेख किया है। अनुमान किया जाता है कि यह पद्मावती केरल में रही होगी अतः इन नदियों की स्थिति भी वहीं होनी चाहिए। पद्मावती नगरी सिन्धु–वरदा के संगम पर बसी थी[2]। इस नगरी को पारा और सिन्धु से परिवेष्टित भी कहा गया है[3]। इससे प्रतीत होता है कि पारा और वरदा एक ही नदी के दो नाम रहे होंगे। केरल में आधुनिक पेरियार नदी का ही प्राचीन नाम पारा रहा होगा।

---

1. निरर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थितः। तत उभयोः सेनयोर्महानासीत् संमर्दः—

   ततः परान् पराजित्य वसुमित्रेण धीमता।
   प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः ॥ माका 5.15 ॥

2. माल पृ0 19 ॥ 3. वही 9. 1 ॥

पद्मावती नगरी को परिवेष्टित करने वाली सिन्धु नदी उस सिन्धु से सर्वथा भिन्न है, जो लद्दाख सीमाप्रान्त और सिन्ध में से बहती हुई अरब सागर में गिर जाती है। भवभूति द्वारा 'मालतीमाधव' में वर्णित सिन्धु केरल में ही होनी चाहिए। केरल में पेरियार नदी पश्चिम समुद्र में गिरती है तथा इसमें एक अन्य छोटी सी नदी मिलती है। सम्भवतः यह ही भवभूति की सिन्धु है।

भगवतशरण उपाध्याय का कथन है कि वरदा नदी विदर्भ प्रदेश में से बहती है। आधुनिक वर्धा नदी ही वरदा है[1]। कालिदास के वर्णनों से यही स्थिति प्रतीत होती है। वरदा को पार करके अग्निमित्र के सैनिकों ने विदर्भराज पर विजय प्राप्त की होगी[2]। परन्तु भवभूनि द्वारा वर्णित वरदा नदी इस वरदा से भिन्न है। इसके तट पर पद्मावती नगरी बसी थी, जो केरल में थी।

पद्मावती नगरी के समीप तीन अन्य नदियों का उल्लेख भवभूति करते हैं: लवणा, मधुमती और पाटलावती। लवणा नदी पद्मावती से कुछ दूर रही होगी और इस नदी के तटवर्ती प्रदेश चरागाहों के लिए प्रसिद्ध रहे होंगे। 'मालतीमाधव' के अनुसार इस नदी के किनारे वनों में उलप नामक विशेष घास होती थी, जो गौओं को अति प्रिय थी[3]। पद्मावती के समीप ही वनों में मधुमती नाम की नदी का उल्लेख है। इस नदी ने पर्वतमेखला को घेर रखा था[4]। पद्मावती के समीप पर्वतीय वनों में पाटलावती नदी का भी उल्लेख है[5]। इन सब नदियों की स्थिति केरल में ही होनी चाहिए।

पद्मावती की स्थिति मध्यप्रदेश में मानने वाले विद्वान् पारा–सिन्धु को मध्यप्रदेश में[6], मधुमती को गुजरात में[7] और वरदा को विदर्भ में[8] मानते हैं।

22. नदियों के संगम–

संस्कृत नाटकों में नदियों के कुछ संगमों का वर्णन हुआ है। सबसे प्रसिद्ध संगम गंगा-यमुना का है। इस संगम पर प्रयाग तीर्थ था। इसको परम पवित्र तीर्थ माना जाता था[9]। यहां गंगा-यमुना सरस्वती इन तीन

---

1 काभा प्रथम भाग पृ० 45 ।।

2. वरदारोधोवृक्षैः सहावनतो रिपुः। माका 5. 1 ।। 3. माल 9. 2 ।।

4. माल पृ० 451 ।। 5. वही पृ० 420 ।। 6. एना पृ० 552 ।।

7. वही पृ० 707 ।। 8. वही पृ0 832 ।। 9. ताप 6. 5 ।।

नदियों के संगम की कल्पना की गई थी। अतः इस संगम को त्रिवेणी भी कहा गया था। सरस्वती नदी अब विलुप्त हो चुकी है इस नदी को कुरुक्षेत्र में भी कहा जाता है[1]। सरस्वती के विलुप्त होने के स्थान को प्राचीन साहित्य में विनशन नाम दिया गया है। मुरारी ने कृष्णवर्णा कालिन्दी और श्वेत-वर्णा गंगा के मिलन का परम्परागत वर्णन किया है [2]।

कालिदास ने गंगा–यमुना संगम के अति मनोरम प्राकृतिक सौन्दर्य का सरस वर्णन 'रघुवंश' में किया है[3]। इस संगम में स्नान करने मात्र से तत्व-ज्ञान के बिना भी मोक्ष प्राप्त होता है[4]। वे अवसर मिलने पर नाटकों में भी इसका वर्णन करते हैं। गंगा-यमुना संगम उनके लिये केवल प्राकृतिक सौन्दर्य की ही प्रेरणा नहीं है, अपितु धार्मिक भी है। यह पावन जल पापों का प्रक्षालन करता है। यहां भागीरथी का जल और भी अधिक पवित्र हो गया है[5]। यमुना के बिना गंगा अच्छी नहीं लगती[6]। इस संगम पर विशेष तिथियों में स्नान करने के लिये धर्मानुरागी जन आते थे। पुरूरवा भी इसी प्रकार स्नान करता था[7]।

गंगा–शोण संगम पर कुसुमपुर बसा था। इसको पुष्पपुर या पाटलि–पुत्र भी कहा गया था। वर्तमान पटना यही है। पहले यह गंगा-शोण संगम

---

1. पूर्वमेघ 53।। 2. अन 7. 127 ।।
3. क्वचित्प्रभातेपिमिरिन्द्रनीलैर्मुक्तामयो यष्टिरिवानुबिद्धा । अन्यत्र माला सितपङ्कजानामिन्दीवरैरूत्खचितान्तरेव ।।
   क्वचित्खगानां प्रियमानसानां कादम्बसंसर्गवतीव पंक्तिः ।
   अन्यत्र कालागुरूदत्तपत्रा भक्तिर्भुवश्चन्दनचर्चितेव ।।
   क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छायाविलीनैः शबलीकृतेव ।
   अन्यत्र शुभ्रा शदभ्रलेखा रन्ध्रेष्विवालक्ष्यनभः प्रदेशा ।।
   क्वचिच्च कृष्णोरगभूषणेव भस्माङ्गरागा तनुरीश्वरस्य ।
   पश्यानवद्याङ्गि विभाति गंगा भिन्नप्रवाहा यमुनातरंगैः ॥ रघु 13.54-57 ।।
4. समुद्रपत्न्योर्जलसन्निपाते पूतात्मनां यत्रकिलाभिषेकात् ।
   तत्वावबोधेन विनापि भूयस्तनुत्यजां नास्ति शरीरबन्धः ॥ रघु 13.58 ॥
5. भागीरथ्याः यमुनासंगविशेषपावनेषुसलिलेषु । विक्र पृ0 177 ।।
6. संगमे दृष्टपूर्वेव यमुना गंगया विना । विक्र 2. 14 ।।
7. तिथिविशेष इति भगवत्यो गंगायमुनयोः संगमे देवीभिः सह कृताभिषेकः । विक्र पृ0 239 ।।

पर था, परन्तु वर्तमान में यह संगम पूर्व में 60 मील हट चुका है। कालिदास ने गंगा-शोण संगम का उल्लेख उपमान के रूप में किया है। दमयन्ती स्वयंवर के बाद अज ने बढ़ती हुई शत्रु सेनाओं को उसी प्रकार रोक दिया था जैसे वर्षा में उत्तरंगित शोण गंगा के प्रवाह को रोक देता है[1]।

'मालतीमाधव' में पारा-सिन्धु संगम का चित्रण है[2]। इसमें मधुमती-सिन्धु संगम का भी वर्णन है। यह स्थान स्वर्ण बिन्दु कहलाता था। यहां भवानीपति शिव का विशाल मन्दिर था[3]।

1. रघु 7. 36 ।। 2. माल 9. 1 ।। 3. वहीप0 381 ।।

चतुर्थ अध्याय

प्राचीन भारतीय जनपद

सांस्कृतिक और भौगोलिक दृष्टि से उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक और पूर्व में कामरूप से लेकर पश्चिम में गान्धार-काम्बोज तक सारे भूभाग को एक भारतवर्ष महादेश माना गया था। परन्तु राजनीतिक दृष्टि से यह भूखण्ड अनेक प्रदेशों, राज्यों और जनपदों में विभक्त रहा था। परन्तु विभिन्न युगों में विभिन्न प्रदेशों के सार्वभौम स्वतन्त्र राज्य बने रहने पर भी इनकी सांस्कृतिक एकता बनी रही। भारतीय कवियों की सदा से यह अभिलाषा रही कि सारा भारतवर्ष राजनीतिक दृष्टि से भी एक बना रहे। अनेक सम्राटों-चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, समुद्रगुप्त विक्रमादित्य, हर्ष आदि ने सारे भारतवर्ष की राजनीतिक एकता को स्थापित करने के महान प्रयास किये थे। परन्तु उनके उत्तराधिकारी इसको बनाये नहीं रख सके।

जैसे कि पहले लिखा जा चुका है, भारतवर्ष का विभाजन पांच भागों में माना गया था–पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और मध्य। इनके जनपदों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। संस्कृत नाटकों में प्रसंगवश अनेक जनपदों का उल्लेख आया है। सुविधा के लिये वर्णक्रम के अनुसार उनको यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. अङ्ग–

अङ्ग जनपद की गणना बौद्ध काल के 16 महाजनपदों में की गई थी[1] भारतवर्ष के पूर्वी भाग में स्थित इस जनपद की राजधानी चम्पा थी[2]। यह जनपद मगध और बङ्ग जनपदों का मध्यवर्ती था। दुर्योधन ने कर्ण को अङ्ग

1. दिग्घनिकाय 14.36 के अन्तर्गत गोरिन्दसुत्त ॥ 2. बाभा 1.39 ॥

का राजा बनाया था[1] । अतः कर्ण का एक नाम अङ्गराज या अङ्गेश्वर भी प्रसिद्ध हुआ[2] । गंगा नदी अङ्ग के मध्य से बहती थी, जिसके जल का पान करने से कर्ण पवित्र हो गया था[3] ।

अङ्ग राज्य की स्थापना बलि और सुदेष्णा के पुत्र अङ्ग ने की थी[4] । 'महाभारत' में इस राज्य की गणना पूर्वी प्रदेशों में की गई है और इसको भीम ने जीता था[5] । 'रामायण' में भी इसको पूर्व में कहा गया गया है । यहां के राजा रोमपाद से दशरथ की मित्रता थी[6] और दशरथ ने अपनी कन्या शान्ता को उसे गोद दे दिया था[7] ।

मुरारि के समय गौड और अङ्ग जनपद एक ही शासन के अन्तर्गत रहे होंगे, क्योंकि उसने गौड जनपद की राजधानी चम्पा कही है[8] । शक्तिभद्र ने अङ्ग के राजा जवरथ का उल्लेख किया है[9] । प्रियदर्शिका अङ्गराज की पुत्री थी । कालिदास ने अङ्ग जनपद का उल्लेख किया है । इन्दुमती के स्वयंवर में मगध और अङ्ग के राजा साथ साथ बैठे थे[10] ।

अङ्ग जनपद वर्तमान बिहार के वैद्यनाथधाम से उड़ीसा के भुवनेश्वर तक विस्तृत रहा होगा । वर्तमान भागलपुर और मुंगेर जिले इसके अन्तर्गत रहे होंगे[11] । 'कथासरित्सागर' के अनुसार अङ्ग जनपद की सीमायें समुद्र तक विस्तृत थीं[12] ।

2. अपरान्त–

'पादताडितक' के अनुसार मगध के राजाओं के एक सेनापति भद्रायुद्ध ने अपरान्त को जीता था[13] । रघु ने भी अपरान्त को जीतने का सफल प्रयास किया था[14] । वे सह्य पर्वत श्रृंखला को पार करके अपरान्त को जीतने के लिये आगे बढ़े थे ।

अपरान्त की स्थिति विचारणीय है । कुछ विद्वान् आधुनिक कोंकण को अपरान्त मानते हैं और कुछ के अनुसार भारत का सारा पश्चिमी समुद्र तट अपरान्त है[15] । सामान्यतः सह्याद्रि और पश्चिम समुद्र की मध्यवर्ती भूमि

---

1. वेणी पृ0 116 ।। 2. निवेद्यतां महाराजाय अगेश्वराय । कर्ण पृ0 2 ।।
3. पंच पृ0 18 ।। 4 मत्स्यपुराण 48. 25–26 ।।
5. मभा उद्योग पर्व 50.19 ।। 6. रामायण बालकाण्ड 11.2–5 ।।
7. उत्त 1.4 ।।
8. अन पृ० 380 ।। 9. अङ्गेश्वरो जवरथः । वीणा पृ० 6 ।।
10. रघु 6.27.31।। 11. ज्योडिएमि पृ0 83।। 12. कथासरित्सागर 44.9।।
13. पाद श्लोक 7 ।। 14. रघु 4. 52–58 ।। 15. पोहिए पृ0 259 ।।

को अपरान्त कहा जा सकता है। नन्दलाल डे का मत है कि भीमा की सहायक मुरला नदी के दक्षिण की भूमि को अपरान्त माना जाना चाहिये[1]। भगवतशरण उपाध्याय के अनुसार सह्य पर्वत और समुद्र के मध्यवर्ती भूमि अपरान्त है तथा इसके दक्षिण में केरल है[2] 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया के अनुसार उत्तरी कोंकण, जिसकी राजधानी शूपरिक(आधुनिक नालसोपारा) थी, अपरान्त कहलाता था[3]। 'ब्रह्मपुराण' में अपरान्त के साथ शूपरिक का वर्णन है[4] 'महाभारत' में शूपरिक को अपरान्त का ही एक भाग कहा गया है। समुद्र ने इसको परशुराम के लिये दिया था[5]।

3. अवन्ती–

अवन्ती की गणना बौद्ध काल के 16 महाजनपदों में है। भारतीय इतिहास में तथा संस्कृत साहित्य में इसका बहुत महत्व रहा है। यह भारतीय साम्राज्य की राजधानी रही थी। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में अवन्ती जनपद का राजा चण्डप्रद्योत था। उसकी वत्स के राजा से प्रवल प्रतिद्वन्द्विता थी परन्तु उदयन के साथ वासवदत्ता का विवाह हो जाने पर यह समाप्त हो गई। 'कथासरित्सागर' में यह वर्णन मिलता है कि उदयन के पश्चात् चण्डप्रद्योत के पुत्र पालक ने वत्स को जीत कर कोशाम्बी पर अधिकार कर लिया था।

उत्तरवर्ती युग में अवन्ती तथा उज्जयिनी का अधिक महत्व रहा। मौर्य युग से लेकर गुप्त युग तक भारतीय साम्राज्य के मध्य में स्थित अवन्ती की राजधानी उज्जयिनी साम्राज्य का दूसरा केन्द्र रही, परन्तु शुंग राजाओं (200ई0 पू0) ने विदिशा को भी शासन का केन्द्र बनाया था। यह नगरी भी अवन्ती में ही थी।

कवियों ने अवन्ती के रोचक वर्णन किये हैं। शूद्रक के अनुसार अवन्तिपुरी में चारूदत्त नाम का ब्राह्मण सार्थवाह और वसन्तसेना नाम की वेश्या रहते थे[6]। यहां शूद्रक का अभिप्राय अवन्ती जनपद से न होकर

1. ज्योडिएमि पृ० 134 ॥ 2. काभा प्रथम भाग पृ०95 ॥
3. केहिइ वो० 1 पृ० 60 ॥ 4. ब्रह्मपुराण अध्याय 7 ॥
5. ततः शूर्पारिकं देशं सागरस्तस्य निर्ममे।
सहसा जामदग्न्यस्य सोपरान्तमहीतलम् ॥ मभा सभापर्व 51.28 ॥
6. अवन्तिपुर्यां द्विजसार्थवाहो युवा दरिद्रः किल चारूदत्तः।
गुणानुरक्ता गणिका च यस्य वसन्तशोभेव वसन्तसेना ॥ मृच्छ 1.6 ॥

उसकी राजधानी उज्जयिनी से ही है, जो इस जनपद की राजधानी होने के कारण अवन्तिपुरी भी कहाती होगी। मुरारि ने वर्णन किया है कि राम का पुष्पक विमान् द्रविड देश उत्तर की ओर जाते हुये अवन्ती के ऊपर से होकर चेदिमण्डल तक पहुँचा था[1]। इसका अर्थ है कि अवन्ती जनपद की स्थिति चेदि के दक्षिण में तथा द्रविड देश के उत्तर में थी। नर्मदा की धारा अवन्ती के मध्य में से बहती थी[2]।

कुछ समालोचकों का विचार है कि अवन्ती जनपद का दूसरा नाम मालव था। रीज डेविड के अनुसार ईसा की दूसरी शताब्दी तक इस जनपद का नाम अवन्ती रहा और उसके बाद मालव हुआ[3]। आप्टे के अनुसार 6–7 वीं शताब्दी में इसको मालव कहा जाने लगा था[4]। राजशेखर ने अवन्ती, अवन्तिविषय और मालव को प्रायः एक ही माना है, जिस पर परमारों का शासन था।[5] कालिदास इसको अवन्ती नाम से ही लिखते हैं, जो कि वत्सराज उदयन द्वारा प्रद्योत की कन्या का अपहरण करने के कारण बहुत प्रसिद्ध हो गया था[6]। वर्तमान मालवा, निमाड़ और उसका समीपवर्ती क्षेत्र अवन्ती जनपद के अन्तर्गत रहा होगा।

राजशेखर ने वर्णन किया है कि मालव जनपद में वर्षा ऋतु में शस्य होते हैं[7] और प्रेमीजन प्रेमिकाओं के साथ विलास करते हैं[8]। राजशेखर का यह मालव जनपद अवन्ती ही है। इसका मालव नाम होने का अपना ही इतिहास है। प्राचीन समय में एक अन्य मालव प्रदेश का उल्लेख मिलता है, जो वर्तमान पंजाब के मध्य भाग में था। यहां मालवगण के लाग रहते थे। इनका सिकन्दर के साथ भयानक युद्ध हुआ था। अब भी पंजाब में मालवा प्रदेश है, जो पाकिस्तान में चला गया है। इसमें चनाब-रावी दोआबा था, जो सिन्धु-संगम तक चला गया था। मुलतान और मोंटगुमरी जिले इसके अन्तर्गत थे। सिकन्दर के बाद मालव गण के लोग दक्षिण की ओर बढ़े थे। वे राजपूताना होकर अवन्ती तक पहुँचे। सम्भवतः इसी कारण यह प्रदेश मालवा कहलाया।

---

1. अन पृ० 371 ।। 2. मभा वनपर्व 3,89 ।।
3. बुद्धिस्ट इण्डिया पृ० 28 ।। 4. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ0 39 ।।
5. काव्य 9, 11, 12, 45 ।। 6. पूर्वमेघ 32, 35 ।।
7. प्रावृषेण्यं हि शस्यानां किं समुत्पत्तिकारणम् ? मालवः । बारा 10.83 ।।
8. बारा पृ० 688 ।।

कुछ ग्रन्थों में मालव के दो भाग कहे गये हैं —पूर्वी और पश्चिमी। पूर्वी भाग को आकर या वैदिश तथा पश्चिमी भाग को अवन्ती कहा गया है। 'शक्तिसङ्गमतन्त्र' के अनुसार मालव और अवन्ती पृथक् जनपद थे। अवन्ती पश्चिम में था और मालव पूर्व में[1]। 'पादताडितक' में अवन्ती के पूर्वी भाग का उल्लेख है[2]। इसका अर्थ यह है कि अवन्ती का पश्चिमी भाग पृथक् प्रदेश रहा होगा। सम्भवतः पूर्वावन्ती को ही मालव कहा गया है। डी० आर० भण्डारकर के अनुसार अवन्ती के दो भाग थे–उत्तर और दक्षिण। उत्तरी भाग की राजधानी उज्जयिनी और दक्षिण भाग की माहिष्मती थी[3]।

सामान्यतः प्राचीन अवन्ती जनपद मालव का वह भाग समझा जा सकता है, जो उत्तर में ग्वालियर से लेकर दक्षिण में नर्मदा तक विस्तृत है। इसका मुख्य भाग वेत्रवती (बेतवा) और चर्मण्वती (चम्बल) नदियों का मध्यवर्ती है। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में अवन्ती पर सिन्धिया का अधिकार हुआ था। 1810 ई0 तक उसकी राजधानी उज्जयिनी रही। परन्तु इसके पश्चात् सिन्धिया ने राजनीतिक कारणों से अधिक उत्तर में ग्वालियर को राजधानी बनाया।

अश्मक–

अश्मक जनपद का उल्लेख 'वीणावासवदत्तम्' में हुआ है। यहां के राजकुमार सञ्जय के साथ अवन्तिनरेश प्रद्योत ने अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह करना निश्चित किया था[4]।

पुराणों में अश्मक की गणना दक्षिण भारत के जनपदों में की गई है[5]। बौद्ध साहित्य में अश्मक का उल्लेख हुआ है। यह गोदावरी के तट पर था और इसकी राजधानी पेठान (प्रतिष्ठान) थी। 'वायुपुराण' में भी अश्मक जनपद का वर्णन आया है[6] महाभारत' के अनुसार राजा कल्माषपाद के पुत्र अश्मक के नाम पर इस जनपद का नामकरण हुआ[7]। गोदावरी के तट पर स्थिक अश्मक जनपद की गणना बौद्धकालीन 16 महाजनपदों में है।[8]

---

1. अवन्तीतः पूर्वभागे गोदावर्यास्तथोत्तरे।
   मालवाख्यो महादेशो धनधान्यपरायणः ॥ शक्तिसङ्गमतन्त्र 3.7.21 ॥
2. पाद श्लोक 20 ॥ 3. कहिवा पृ० 249 ॥ 4. वीणा पृ० 6 ॥
5. वामनपुराण 13.49 मार्कण्डेयपुराण57.48 विष्णुधर्मोत्तरपुराण 1.9.5॥
6. वायुपुराण 88.177-178 ॥ 7. मभा आदिपर्व 176. 77 ॥
8. ऐना पृ0 49 ॥

5. आन्ध्र–

आन्ध्र जनपद का भी उल्लेख दक्षिण भारत में हैं। आन्ध्र जाति का उल्लेख 'ऐतरेय ब्राह्मण' में हुआ है। इसी जाति के नाम पर इस जनपद को आन्ध्र कहा गया। 'महाभारत में आन्ध्र का उल्लेख अनेक बार हुआ है। अशोक के शिलालेख के अनुसार आन्ध्र जनपद मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित था।

मुरारी के अनुसार आन्ध्र जनपद गोदावरी की सात धाराओं द्वारा परिवेष्टित था और यहां भीमेश्वर शिव का विशाल मन्दिर था[1]। राजशेखर ने आन्ध्र प्रदेश के मध्य में गोदावरी के बहने का संकेत दिया है[2]। उसने आन्ध्र की तरुणियों की भी प्रशंसा की है। इन तरुणियों की दृष्टि मानो भस्मीभूत कामदेव के लिए संञ्जीवन ओषधि है[3]। वे बालों को चमकीला रखने के लिए प्रचुर तेल लगाती हैं[4]। वात्सायन ने आन्ध्र प्रदेश में प्रचलित इस रिवाज का उल्लेख किया है कि वहां के नवविवाहित युगल विवाह के दसवें दिन कुछ उपहार लेकर राजा के अन्तःपुरो में जाते थे[5]।

इतिहास में आन्ध्र राजाओं में गौतमीपुत्र शातकर्णि बहुत प्रसिद्ध हुआ था। इसका राज्य ईसा की दूसरी शताब्दी में पूर्वार्द्ध में रहा। आन्ध्र के समुद्र तट पर अच्छे बन्दरगाह थे, जिनके द्वारा विदेशों से समुद्री मार्ग से व्यापार होता था।

आधुनिक तेलंगाना, जिसको अब आन्ध्र प्रदेश नाम दिया गया है, प्राचीन काल का आन्ध्र जनपद था। इसकी समान्यतः सीमायें थी–गोदावरी कृष्णा और समुद्र। आन्ध्र के उत्तर में कलिंग और दक्षिण में द्रविड जनपद थे।

6. उत्कल–

राजशेखर ने औड्र जनपद का उल्लेख किया है[6]। यह प्रदेश वर्तमान उड़ीसा ही है। उड़ीसा नाम औड्र का अपभ्रंश है। उड़ीसा को उत्कल भी कहा गया था। भगवतशरण उपाध्याय कथन है कि उत्कल जनपद कलिंग का उत्तरी भाग था तथा यह शब्द उत्कलिंग का अपभ्रंश है। 'वायुपुराण' के अनुसार सुद्युम्न के पुत्र उत्कल के नाम से यह जनपद प्रसिद्ध हुआ[7]। 'स्कन्दपुराण' में इसकी सीमायें स्वर्णरेखा और महानदी के मध्य बताई गई है[8]।

---

1. अन पृ0 369 ।। 2. बारा 10. 70 ।। 3. वही 10. 71 ।।
4. वही 9. 33 ।। 5. कामसूत्र 5.5. 32 ।। 6. बारा 3.63 ।।
7. वायुपुराण 27. 266 ।। 8. स्कन्दपुराण 2. 2. 6. 27 ।।

कालिदास ने उत्कल और कलिंग को अलग माना है[1] ।

7. उत्तरकुरू—

प्राचीन साहित्य में कुरू और उत्तरकुरू का विस्तृत वर्णन है । कुरु जनपद इन्द्रप्रस्थ के दक्षिण से प्रारम्भ होकर उत्तर में हिमालय तक विस्तृत था । इसके दो भाग थे—कुरु और उत्तरकुरु । कुरु मैदानी भाग था और यहां कुरूवंशी राजा राज्य करते । उत्तरकुरु पर्वतीय भाग था । भास के अनुसार उस युग में यह लोकविश्वास था कि उत्तरकुरू में अप्सरायें रहती हैं और यहां सब प्रकार की विलास—सामग्रियां प्राप्त होती हैं । उसने वर्णन किया है कि विद्याधर जाति उत्तरकुरू में निवास करती है । एक विद्याधर ने प्रातः उत्तर-कुरू में व्यतीत करके मानसरोवर में स्नान किया । तदनन्तर मन्दर पर्वत की कन्दराओं में विलास-क्रीडा करके वह हिमालय की गुफाओं में विचरण करता रहा[2] । इस वर्णन से प्रतीत होता है कि भास के मत से हिमालय के ऊंचे प्रदेश उत्तरकुरू जनपद के अन्तर्गत थे ।

'ऐतरेय ब्राह्मण' में उत्तरकुरू जनपद का उल्लेख है तथा उसको वैराज्य कहा गया है[3] । 'रामायण' और 'महाभारत' में उत्तरकुरू जनपद के विस्तृत विवरण मिलते हैं । इसको अति दुर्गम कहा गया है । सुग्रीव ने सीता की खोज के लिए वानरों को उत्तरकुरू भी भेजा था और कहा कि उससे आगे तुम नहीं जा सकते । दिग्विजय यात्रा में उत्तरकुरू को जीतने की इच्छा वाले अर्जुन से वहां के द्वारपालों ने कहा था कि यहां तुम्हारे जीतने योग्य कुछ नहीं है । यह दिव्य देश है और मानव शरीर से तुम यहां कुछ नहीं देख सकते यहां युद्ध नहीं होता ।

अनेक विद्वान् समालोचक ध्रुव प्रदेश को उत्तरकुरू मानते हैं । लोक-मान्य तिलक ने अपने 'ओरियन' ग्रन्थ में नार्वे तथा उत्तरी ध्रुव को ही उत्तर-कुरू सिद्ध करने का प्रयास किया है । उसको उन्होंने आर्यों का आदि देश माना है । परन्तु इस मत में विशेष प्रमाण नहीं हैं ।

इन सब वर्णनों से भी उत्तरकुरू के सम्बन्ध में निश्चित धारणा नहीं

---

1. काभा प्रथम भाग पृ० 90 ।।
2. प्राक्सन्ध्या कुरूषूत्तरेषु गमिता स्नातं पुनर्मानसे
   भूयो मन्दरकन्दरान्तरतटेष्वामोदित यौवनम् ।
   क्रीडार्थं हिमवद्गुहासु चरिता दृष्टिश्च संलोभिता ॥ अवि 4. 10 ॥
3. ऐतरेय ब्राह्मण 8. 14 ।।

बनती। तथापि यह कहा जा सकता है कि उत्तरकुरू जनपद में ऊंचे पर्वत थे, जिनसे यह अगम्य था। सम्भवतः पर्वतों का निचला भाग, जो मैदानी क्षेत्रों से जुड़ा था, कुरूजांगल कहलाता था और ऊपर का दुर्गम भाग उत्तर-कुरू के नाम से प्रसिद्ध था।

8. कर्णाट–

राजशेखर कर्णाट जनपद से सुपरिचित थे। यह दक्षिणापथ में था[1]। इसके मध्य में से कावेरी नदी बहती है[2]। कर्णाट देश की नारियों की कुछ विशेषतायें कही गई हैं। इनकी दृष्टियां कामवर्धक हैं[3] और वे ताण्डव नृत्य में कुशल होती हैं[4]।

क्षेमीश्वर के समय में कर्णाट जनपद का राजा महीपालदेव था[5]। राजशेखर ने कर्णाट का प्राकृतिक रूप कण्णाद नाम भी दिया है[6]। मुरारि इस जनपद को कर्णाटिक कहते हैं[7]।

आधुनिक कर्णाटक ही प्राचीन समय का कर्णाट है। इसमें मैसूर और कुर्ग सम्मिलित हैं।

9. कलिंग–

प्राचीन साहित्य में कलिंग का उल्लेख एक अति समृद्ध जनपद के रूप में हुआ[8] है। मौर्य इतिहास में भी यह बहुत प्रसिद्ध है। कलिंग-युद्ध के नर-संहार से विरक्त होकर अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया था।

कलिंग जनपद की सीमायें उत्तर में उत्कल से प्रारम्भ होकर दक्षिण में गोदावरी तक विस्तृत थी। पूर्व में इसकी सीमा को पूर्व समुद्र (बंगाल की-खाड़ी) बनाता था। इस प्रकार यह जनपद भारतवर्ष के पूर्व-दक्षिण में विद्यमान था। 'वायुपुराण'[9] और 'मत्स्यपुराण'[10] में कलिंग की गणना दक्षिण के देशों में की गई है। परन्तु 'गरुड़पुराण'[11] और 'बृहत्संहिता'[12] इसको पूर्व-दक्षिण में बताते हैं।

---

1. बाग पृ० 5 ।। 2. अन पृ० 369 ।।
3. बारा 10.70 ।। 4 वही 9.35 ।। 5. वही पृ0 5 ।। 6. वही 10.72 ।।
7. अन पृ0 70 ।। 8. रामायण किष्किन्धा काण्ड 41. 11, मभा वनपर्व अध्याय 14 ।।
9. वायुपुराण 45. 125 ।। 10. मत्स्यपुराण 114.45 ।।
11. गरूडपुराण 45.10 ।। 12. बृहत्संहिता 14.8 ।।

कलिंग की राजधानी कलिंगनगर रही होगी, जो राजमहेन्द्री पर्वत-मालाओं के मध्य स्थित था। समुद्र इससे कुछ दूर था। खारवेल्ल (ईसा की प्रथम शताब्दी) के अभिलेख में कलिंगनगर का उल्लेख है। 'महाभारत' में कलिंग की राजधानी दन्तपुर कही गई है[1]। 'महावस्तु' में इसका नाम दन्तपुर है[2]। नन्दलाल डे के अनुसार आधुनिक पुरी ही दन्तपुर है[3]।

'पादताडितक' में कलिंग के लोगों के उज्जयिनी में रहने का उल्लेख है[4]। हर्ष ने कलिंग के राजा द्वारा अङ्ग पर आक्रमण करने का वर्णन किया किया है[5]। इस जनपद की प्रतिष्ठा बलि के पुत्र कलिंग के नाम पर मानी जाती है[6]।

कालिदास ने कलिंग के समुद्रतटीय प्राकृतिक सौन्दर्य का मनोरम वर्णन किया है। यहां ताली, नारियल, पान, सुपारी आदि के वृक्ष होते हैं[7]।

10. काम्बोज–

काम्बोज की गणना बौद्ध साहित्य के 16 महाजनपदों में की गई है। इस जनपद का नामबहुत प्राचीन है। वैदिक साहित्य की रचना के समय काम्बोज जनपद वैदिक सभ्यता का केन्द्र था। 'वंश ब्राह्मण' में काम्बोज के औपमन्यव नाम के आचार्य का उल्लेख है। परन्तु आर्यों के पूर्व की ओर बढ़ जाने पर यहां आर्य सभ्यता क्षीण हो गई। अत: यास्क आदि आचार्यों ने काम्बोज जनपद के प्रति तिरस्कार अभिव्यक्त किया है। महाभारत में वर्णन है कि कर्ण ने काम्बोज के राजपुर में जाकर जनपद को जीता था। कनिंघम के अनुसार वर्तमान राजौरी (काश्मीर) नगर ही राजपुर था[9]। इस राजपुर का ह्वेनसांग ने भी उल्लेख किया है।

प्राचीन वर्णनों के अनुसार काम्बोज वर्तमान काश्मीर के उत्तर-पश्चिम में रहा होगा। 'महाभारत'[10] के अर्जुन-दिग्विजय, 'रघुवंश'[11] के रघु की दिग्विजय और 'राजतरंगिणी'[12] सभी के अनुसार काम्बोज की यही स्थिति है। इस प्रकार इस जनपद को सिन्धु के पार हिन्दूकुश पर्वत के क्षेत्र में होना चाहिए।

---

1. मभा उद्योगपर्व 48.76 ।। 2. महावस्तु 3.361.12 ।।
3. ज्योडिएमि पृ० 53 ।। 4. पाद श्लोक 24 ।। 5. प्रिय पृ० 7 ।।
6. भागवतपुराण 9.23.5 ।। 7. बारा 3.63 ।। 8. मभा द्रोण पर्व 4.5 ।।
9. ज्योए पृ० 148 ।। 10. मभा सभापर्व 27.33 ।। 11. रघु 4.69 ।।
12. राजतरंगिणी 4.163–165 ।।

वस्तुतः प्राचीन समय के काम्बोज, कपिश, गान्धार और बाह्लीक जनपद एक दूसरे से मिले हुए थे। ये हिन्दूकुश पर्वत के समीपस्थ थे तथा वर्तमान अफगानिस्तान के नक्शे से इनकी स्थिति स्पष्ट होती है। हिन्दूकुश के पूर्व में काम्बोज, उत्तर-पश्चिम में बाह्लीक, दक्षिण-पूर्व में गान्धार और दक्षिण-पश्चिम में कपिश जनपद थे। आधुनिक बदखशां तथा पामीर का क्षेत्र काम्बोज कहलाता था। जयचन्द्र विद्यालङ्कार ने गान्धार-काश्मीर के उत्तर में आधुनिक पामीर के पठार तथा इसके पश्चिम में बदखशां को काम्बोज महाजनपद माना है[1]। बुद्ध के समय यह महाजनपद गणराज्य था, परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य ने इसको जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

वासुदेवशरण अग्रवाल पामीर के क्षेत्र को काम्बोज मानते हैं[2]। परन्तु सरकार महोदय का मत है कि काम्बोज के अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित किए जाने से आधुनिक कन्दहार को काम्बोज मानना चाहिए[3]। कालिदास ने रघु द्वारा काम्बोज की विजय का वर्णन किया है[4]। 'बृहत्संहिता' में काश्मीर और काम्बोज की स्थिति साथ-साथ दिखाई गई है[5]। इस कारण पामीर को काम्बोज मानना अधिक उचित है। परन्तु कनिंघम ने काश्मीर के दक्षिण में राजौरी को काम्बोज माना है[6]।

संस्कृत कवियों ने काम्बोज के हाथियों और घोड़ों को अच्छा माना है। 'पादताडितक' के अनुसार काम्बोज के हाथी उज्जयिनी लाये जाते थे[7]। भास ने यहां के घोड़ों की प्रशंसा की है[8]।

11. कारूष–

'पादताडितक' में मलद और कारूष जनपदों के अधिपति को उज्जयिनी में घूमते हुए दिखलाया गया है[9]। दोनों ही जनपदों का एक ही अधिपति होने से अनुमान किया जा सकता है कि वे साथ-साथ स्थित होंगे। वर्तमान बिहार के शाहाबाद जिले को कारूष कहा जाता था। यदि मलद को वर्तमान माल्दा मान लिया जावे, तो इसके पूर्व में शाहाबाद को कारूष माना जा सकता है।

---

1. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० 366 ।। 2. पा पृ० 62 ।।
3. पोहिइ पृ० 148–149 ।। 4. रघु 4.69 ।। 5. बृहत्संहिता 10.57 ।।
6. ज्योए पृ० 643 ।। 7. पाद श्लोक 24 ।।
8. हयाः सुपर्णेन समानवेगाः श्रीमत्सु काम्बोजकुलेषु जाताः । कर्ण 1.13 ।।
9. पाद पृ० 193 ।।

'रामायण' में कारूष, मलद और अंग जनपदों का एक साथ उल्लेख किया गया है। अतः कारूष को बिहार में ही होना चाहिये।

साहित्य में एक और कारूष का उल्लेख मिलता है। पर्जीटर महोदय कारूष की ही पहचान काशी और वत्स के दक्षिण में चेदि और मगध के मध्यवर्ती पर्वतीय क्षेत्र से करते हैं। इसका केन्द्र रीवां हैं। इसका विस्तार पश्चिम में केन नदी से लेकर पूर्व में बिहार को सीमा तक पहुँचता है[1]।

'महाभारत' में कारूष और चेदि जनपदों का[2] और इन जनपदों के राजाओं का एक[3] साथ वर्णन है। इस आधार पर इनके, साथ लगे होने का अनुमान किया जा सकता है। जयेन्द्र कुमार माथुर का कथन है कि कारूष जनपद चेदि के दक्षिण में होना चाहिए। वर्तमान जबलपुर क्षेत्र चेदि जनपद था और इसके दक्षिण में बघेलखण्ड को कारूष माना जा सकता हैं। विष्णु-पुराण' में कारूष, मालव और पारियात्र साथ-साथ कहे गये हैं[4], अतः उनके अनुमान का प्रबल आधार है।

12. काशी–

काशी की गणना भी बौद्धकाल के 16 महाजनपदों में हुई है। यह पूर्वी जनपदों और में कोशल के दक्षिण में था। इसकी राजधानी भी काशी थी, जो वाराणसी के नाम से भी प्रसिद्ध थी। किसी समय यह भारत के अति शक्तिशाली जनपदों में गिना जाता था।

काशी जनपद का नाम प्राचीन साहित्य में अति गौरव के साथ लिया गया है। 'अथर्ववेद' की 'पैप्पलाद संहिता' में इसका नाम कोशल और विदेह के साथ है। 'रामायण' 'महाभारत' पुराण आदि में इसके विस्तृत वर्णन हैं। भीष्म ने अपने भाइयों के लिए यहीं के राजा की तीन कन्याओं का अप-हरण किया था कहा जाता है कि मनु के वंश के सातवें राजा काश के नाम पर इस जनपद का नाम काशी हुआ।

प्राचीन विवरणों के अनुसार काशी शिव की नगरी है और अमर है। भारत का यह प्रमुख तीर्थ है और अति समृद्धिशाली भी है। अपने मन्दिरों और वैभव के कारण यह अन्य राजाओं के लिए लोभनीय रहा। हर्ष के समय

1. जे. ए. बी. एस. 1895 भाग-1 पृ० 249 ।।
2. सभा उद्योगपर्व 22.25 ।। 3. वही 22.27 ।।
4. कारूषाः मालवाश्चैव पारियात्रनिवासिनः । विष्णुपुराण 2.3.17 ।।

ह्वेनसांग ने यहां की यात्रा की थी। परन्तु मुसलमानों के बर्बर आक्रमणों ने इसकी दुर्दशा की। मन्दिरों को तोड़ कर ध्वस्त किया गया और उनके स्थान पर मसजिदें बनाई गईं। उनके अवशेष अब भी देखे जा सकते हैं।

काशी की स्थिति कोशल के दक्षिण में रही थी। इन दोनों जनपदों की राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता प्राचीन साहित्य में प्रसिद्ध है। इसी कारण पतञ्जलि ने काशिकोसलीय पद का निर्वचन किया[1]। काशी को लेकर मगधराज अजातशत्रु और कोशल नरेश प्रसेनजित में भयानक युद्ध हुआ था। इसमें कोशल नरेश की हार हुई।

काशी जनपद का उल्लेख नाटकों में अनेक स्थानों पर हुआ है भास ने काशिराज को कुन्तिभोज का बहनोई कहा है। उसने अपने पुत्र के लिए कुन्तिभोज की कन्या कुरंगी को मांगा था[2]। वासवदत्ता के विवाह के प्रसंग में पांच शक्तिशाली राजाओं का उल्लेख हुआ है। इनमें काशी भी था[3]। काशिराज ने स्वयं भी वासवदत्ता के साथ विवाह का प्रस्ताव भेजा था[4]। 'पादताडितक' में वर्णन है कि काशी की वेश्यायें उज्जयिनी में देखी जा सकती थीं। काशी के नागरिक भी वहां रहते थे[5]। शक्तिभद्र ने काशी के राजा विष्णुसेन का उल्लेख किया है[6]।

वर्तमान समय की काशी ही प्राचीन काशी है। यह गंगा के तट पर एक विशाल नगरी है तथा जनपद भी है।

13. काश्मीर–

विशाखदत्त ने काश्मीर जनपद का उल्लेख किया है। यहां का राजा पुष्कराक्ष मलयकेतु के प्रधान सहायकों में था[7]।

काश्मीर अति प्राचीन और प्रसिद्ध जनपद है। इसको कश्यप ऋषि से सम्बन्धित कहा जाता है। पुराणों में प्रसिद्ध है कि काश्मीर की घाटी एक बड़ी झील के रूप में थी। कश्यप ने इसके पानी को निकालकर मनुष्यों को बसाया था। इससे इस जनपद का नाम कश्यपमेरू या कश्यपमीर हुआ, जो उत्तरवर्ती समय में काश्मीर कहलाया श्रीनगर से तीन मील दूर हरिपर्वत को कश्यप का निवास माना जाता है।

---

1. अष्टाध्यायी 4,1,54 पर महाभाष्य ।। 2. अवि पृ0 21 ।।
3. प्रतिज्ञा 2.8 ।। 4. वही पृ0 43 ।। 5. पाद पृ0 187 ।।
6. काशीपतिर्विष्णुसेनः। वीणा पृ॰ 6 ।। 7. मुद्रा 1. 20

काश्मीर की गणना उत्तर के जनपदों में की गई है। प्राचीन समय में यह एक अति शक्तिशाली जनपद था, और शिक्षा का केन्द्र था। 'राजतरङ्गिणी में यहाँ के राजाओं के पराक्रमों का वर्णन किया गया है। हिन्दू धर्म के उत्कर्ष में यहां के कवियों, लेखकों, दार्शनिकों और धर्मप्रचारकों का बहुत योग है। श्रीनगर के समीप शङ्कराचार्य की पहाड़ी बहुत प्रसिद्ध है। सरस्वती की कृपा से काश्मीर के निवासी सुकवि माने जाते थे[1]। महाकवि बिल्हण ने काश्मीर की दो विशेषतायें कही हैं—कविता और केसर[2]। राजशेखर ने काश्मीर की नारियों के सौन्दर्य की बहुत प्रशंसा की है[3]। परन्तु 13 वीं शताब्दी में काश्मीर पर मुसलमानों का अधिकार हुआ तथा यहां की अधिकांश जनता मुसलमान हो गई।

वर्तमान समय में काश्मीर इसी नाम से प्रसिद्ध है। यह पंजाब के उत्तरपश्चिम में ऊंचे पर्वतों से परिवेष्टित है। वर्तमान काश्मीर राज्य प्राचीन काश्मीर जनपद की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत है।

14. कुन्तल—

राजशेखर ने कुन्तल जनपद की गणना दक्षिण में करके इसको चोल के उत्तर में बताया है। इसको महाराष्ट्र के अन्तर्गत भी कहा गया है[4]। वे कुन्तल की रमणियों की विशेष प्रशंसा करते हैं। ये हेमन्त ऋतु में विशेष प्रसन्न रहती हैं और अनेक प्रकार की विलास-क्रीडायें करती हैं[5]। कामदेव उनका सेवक है[6]। राजशेखर के नाटकों में कुन्तल की नायिकायें अधिक समादृत हैं। कर्पूरमञ्जरी कुन्तल की राजकुमारी थी[7]। 'विद्धसालभञ्जिका' की एक नायिका भी राज्य से च्युत कुन्तल नरेश की कन्या थी[8]। राजशेखर ने एक स्थान पर कुन्तल की राजधानी विदर्भ कही है[9] परन्तु यह ठीक प्रतीत नहीं होता। विदर्भ एक अलग जनपद था, जिसकी राजधानी कुण्डिननगर थी।

भारतवर्ष के राजनीतिक और साहित्यिक इतिहास में कुन्तल जनपद का बहुधा वर्णन है। प्रसिद्ध है कि गुप्तवंशी राजा चन्द्रगुप्त ने महाकवि

---

1. काव्य 34. 11 ।।
2. सहोदराः कुंकुमकेसराणां भवन्ति नूनं कविताविलासाः।
   न शारदादेशमपास्य दृष्टस्तेषां यदन्यत्र मया प्ररोहः।। विक्रमांकदेवचरित ।।
3. काव्य 93.20-22 ।। 4. बारा 10.75 ।। 5. वही 5.35 ।।
6. वही 10.75 ।। 7. कर्पू 1.12 ।। 8. विद्ध पृ० 35 ।। 9. कर्पू०पृ०65।।

कालिदास को अपना राजदूत बना कर कुन्तल भेजा था। इस आधार पर कवि ने 'कुन्तलेश्वरदौत्य' नाटक की रचना की थी। इस अनुपलब्ध नाटक का संकेत भोज के 'शृंगारप्रकाश' और क्षेमेन्द्र की 'औचित्यविचारचर्चा' में मिलता है। यह जनपद चालुक्य राजा पुलकेशिन् द्वितीय के साम्राज्य के अन्तर्गत भी रहा था।

कुन्तल जनपद की पहचान चोल के उत्तर में की जाती है। वर्तमान कल्याण नगर किसी समय इसकी राजधानी रहा होगा। भूतपूर्व हैदराबाद राज्य का उत्तरपश्चिमी प्रदेश कुन्तल कहलाता होगा[1]। इसका विस्तार उत्तर में नर्मदा से लेकर दक्षिण में तुंगभद्रा[2] तक और पूर्व में गोदावरी से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक रहा। डा० मीराशी के अनुसार कुन्तल जनपद में दक्षिण मराठी भाषी प्रदेश और समीप के कन्नड़ी प्रदेश सम्मिलित थे[3]। विन्सेन्ट स्मिथ ने कुन्तल को वेदवती और भीमा नदियों का मध्यवर्ती माना है[4]।

15. कुरू–

भारतीय इतिहास में कुरू जनपद बहुत प्रसिद्ध है। 'ऋग्वेद', 'अथर्ववेद' ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद् आदि वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख है। 'रामायण' 'महाभारत' और पुराणों में इसके विस्तृत वर्णन मिलते हैं। बौद्ध काल के 16 महाजनपदों में इसको सम्मिलित किया गया है। परन्तु इस युग के बाद इस जनपद का मौर्य साम्राज्य में विलीनीकरण होकर स्वतंत्र रूप समाप्त हो गया था। बहुत पहले ही कुरूवंशी राजा हस्तिनापुर को छोड़कर वत्स जनपद में बस गये थे।

कुरू जनपद की गणना मध्य के जनपदों में की गई है[5]। महाभारत युद्ध के समय यहां का राजा दुर्योधन था[6]। कुरूक्षेत्र भी इसी के अन्तर्गत था, जहां कौरव-पाण्डवों का युद्ध हुआ था।

कुरु जनपद की पहचान वर्तमान दिल्ली के समीपस्थ क्षेत्रों से लेकर उत्तर में हिमालय तक की जाती है। पश्चिम में कुरुक्षेत्र, सोनीपत, करनाल अम्बाला आदि इसके अन्तर्गत थे। कालिदास ने कुरूक्षेत्र को कौरव-पाण्डवों

---

1. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 41 ।। 2. ऐना पृ० 196 ।।
3. कार्पस ईन्स्क्रिप्शनम इन्डिकेरम भाग 4 पृ० 226 ।।
4. अहिड पृ० 156 ।। 5. गरूडपुराण 55.1०, वायुपुराण 45.109 ।।
6. वेणी 3.13 ।।

का युद्धस्थल कहा है। यहां सरस्वती नदी बहती है और यहां से हिमालय की ओर कनखल है। अवन्ती से कुरुक्षेत्र की ओर जाने पर दशपुर और ब्रह्मावर्त जनपद आते हैं[1]।

कुरु जनपद के दो मुख्य विभाग थे–दक्षिणकुरु और उत्तरवर्ती पर्वतीय भाग उत्तरकुरु था। इसका वर्णन किया जा चुका है। दक्षिण मैदानी भाग दक्षिणकुरु या कुरु था। वह मुख्य भाग था और कुरुवंशियों का इस पर शासन था।

प्रभुदयाल अग्निहोत्री का कथन है कि कुरु जनपद के तीन भाग थे-कुरुदेश, कुरु-जांगल और कुरुक्षेत्र। यमुना के पश्चिम का प्रदेश कुरुक्षेत्र था, जिसमें सरस्वती नदी बहती थी। कुरुजांगल उत्तरी जंगल प्रदेश था गंगा यमुना की मध्यवर्ती भूमि कुरुदेश कहलाती थी।[2]

कुरु जनपद की राजधानी हस्तिनापुर गंगा के दाहिने तट पर अवस्थित थी।

16. कुरुजांगल–

भास ने वर्णन किया है युधिष्ठिर वनवास की अवधि में किसी समय कुरुजांगल में रहे थे[3]। डा० विजयेन्द्रकुमार माथुर ने कुरु जनपद के तीन विभाग बताये हैं–कुरु जांगल, कुरु जनपद और कुरुक्षेत्र। उन्होंने कुरु जनपद के जंगली भाग को कुरुजांगल माना है। यह सरस्वती के तट पर स्थित काम्यक वन तक विस्तृत था और खाण्डव वन भी इसी के अन्तर्गत था।[4] परन्तु प्रभुदयाल अग्निहोत्री कुरु के उत्तरवर्ती जंगली प्रदेश को ही कुरुजांगल मानते हैं। उनका यह कथन समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि युधिष्ठिर वनवास की अवधि में अधिकतर उत्तरी क्षेत्रों में रहे थे।

17. कुलूत–

कुलूत जनपद का प्रथम उल्लेख 'महाभारत' में है। कुलूत के राजा उपहारों को लेकर युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में आये थे[5]। अर्जुन ने दिग्विजय यात्रा में इसको जीता था। विशाखदत्त ने कुलूत का उल्लेख किया है। यहां का राजा चित्रवर्मा मलयकेतु के पांच प्रधान सहायकों में था।[6] राजशेखर ने

1. पूर्वमेघ 51–54 ।। 2. पकाभा पृ० 105 ।।
3. युधिष्ठिरेणाधिष्ठितपूर्वे कुरुजांगले । मध्य पृ० 27-28 ।।
4. ऐना पृ० 206 ।। 5. मभा सभापर्व 27.5,11 ।। 6. मुद्रा 1.20 ।।

महीपाल (9 वीं शताब्दी) के विजित राज्यों में कुलूत का भी उल्लेख किया है। वह कूलूत की बर्फीली हवाओं का भी वर्णन करता है[1]।

कुलूत की पहचान आधुनिक कुल्लू घाटी से की जाती है। यह हिमाचल प्रदेश का एक जिला है। व्यास नदी का उद्‌गम इसके उत्तरी भाग में होता है। यहां के फल बहुत प्रसिद्ध हैं।

18. कुशस्थली–

राजशेखर ने कुशस्थली को मध्य के जनपदों में बताया है[2]। वर्णनों से प्रतीत होता है कि यह जनपद घने वनों से भरा होगा। यहां के राजा को मध्यदेश नरेन्द्र कहा गया है। वह जामुन के पत्तों के वस्त्रों, रत्तियों के अलङ्कारों, मयूरपिच्छ के शिरोभूषण और गेरू के लेप का प्रयोग करता था। उसने यह सब शबरियों के साथ रह कर सीखा था[3]। आप्टे ने कुशस्थली को कुशावती मानकर इसको दक्षिण कोसल की राजधानी बताया है। यह नर्मदा और विन्ध्य के मध्यवर्ती प्रदेश में थी। इसकी पहचान बुन्देलखण्ड के आधुनिक रामनगर से की गई[4]।

कुछ विद्वान् द्वारका को कुशस्थली मानते हैं[5]। इसप्रकार का उल्लेख 'महाभारत' में मिलता है। जरासन्ध के आक्रमणों से बचने के लिए कृष्ण ने रैवतक पर्वत की घाटी में कुशस्थली (द्वारिका) की रचना करके वहां अभेद्य दुर्ग बनवाया था[6]।

19. केरल–

दक्षिण भारत का केरल जनपद अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिये बहुत प्रसिद्ध था। यह अति प्राचीन जनपद है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में केरल के राजा भेंटे लेकर आये थे[7]। सहदेव ने इसको जीता था। कालिदास ने रघु की दिग्विजय में केरल का उल्लेख किया है। रघु के आक्रमणों के कारण

---

1. काव्य 99.27 ॥ 2. बारा पृ० 153 ॥
3. वही 3.61 ॥ 4. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ0 41 ॥
5. ऐना पृ0 212 ॥
6. कुशस्थली पुरी रम्या रैवतेनोपशोभितम् ।
तथैव दुर्गसंस्कारं देवैरपि दुरासदम् ॥
स्त्रियोऽपि यस्यां युध्येयुः किमु वृष्णिमहारथाः ॥ मभा सभापव 14.51 ॥
7. मभा सभापर्व अध्याय 51 ॥

भयभीत केरली युवतियों ने आभूषणों और शृंगार का परित्याग कर दिया था[1]। अशोक के शिलालेखों में केरल का उल्लेख है।

संस्कृत कवि केरल की प्रकृति और सौन्दर्य पर मुग्ध थे। यहां की युवतियों के मुख श्यामल कान्तिमान् होते हैं[2]। इनकी हँसी मोतियों के हार के समान शुभ्र[3] और निर्मल होती है[4]। परन्तु भवभूति राजशेखर के कथन से पूरी तौर से सहमत नहीं हैं। सभी केरली युवतियां श्यामल नहीं होतीं। केरल की वधुओं के कपोल पान के पत्तों के समान पाण्डुर भी होते हैं[5]। 'सुभद्राधनञ्जय' और 'तपतीसंवरण' नाटकों की रचना केरल के राजा कुलशेखर वर्मन् ने की थी। उनका कथन है कि केरल के खेत पके धानों की राशि से सुन्दर थे[6]। यह जनपद दक्षिण में बताया गया है[7]।

वर्तमान केरल प्रदेश ही मुख्य रूप से प्राचीन केरल जनपद था। मलाबार तट, जो कन्याकुमारी से गोआ तक विस्तृत है, केरल था। कोचीन इसी के अन्तर्गत है। कर्नल स्मिथ ने चन्द्रगिरि के दक्षिण में पश्चिमी घाट को केरल बताया है[8]। केरल की वर्तमान सीमायें अति संकुचित हैं, परन्तु प्राचीन समय में यह बहुत विस्तृत था। उत्तर में गोकर्ण से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक तथा पूर्व में मलय से लेकर पश्चिम में अरब सागर तक केरल जनपद फैला हुआ था।

20. कोंकण–

कोंकण की गणना अति प्राचीन काल से दक्षिण के जनपदों में की जाती रही है। अनेक समालोचक कोंकण और अपरान्त को एक ही मानते हैं, परन्तु कुछ के अनुसार कोंकण का उत्तरी भाग अपरान्त है। 'स्कन्दपुराण' में कोंकण के दो भाग कहे गये हैं–कोंकण और लघुकोंकण। कोंकण में 36000 ग्राम और लघुकोंकण में 1422 ग्राम[9] हैं।

पुराणों के अनुसार कोंकण वह भूमि है, जिसको परशुराम ने अपने रहने के लिए समुद्र से छीना था[10]। परशुराम के रहने का स्थान महेन्द्र द्वीप कहा जाता है[11]। अतः कोंकण प्रदेश को महेन्द्रद्वीप भी कहते होंगे। राजशेखर के

1. भयोत्सृष्टं विभूषाणां तेन केरलयोषिताम्।
   अलकेषु चमूरेणुश्चूर्णप्रतिनिधिकृतः॥ रघु 4.45॥
2. बारा पृ0 444॥ 3. विद्ध 1.17॥ 4. बारा 2.104॥
5. माल 6.19॥ 6. सुभ पृ० 5, तप पृ0 6॥ 7. सुभ पृ0 168॥
8. अहिइ पृ0 466॥
9. स्कन्दपुराण 1.2. 39. 143॥ 10. बारा 2. 15॥ 11. महा पृ० 48॥

अनुसार कोंकण में इलायची, सुपारी, नारियल, पान और राजरम्भा प्रचुर होते हैं[1]।

चतुर्थ–पंचम शताब्दी ईसवीं में कोंकण गुप्त साम्राज्य के आधीन था। इसके अधिपति का उज्जयिनी में रहने का वर्णन किया गया है[2]। वर्तमान समय में बम्बई से दक्षिण में और पूना के समीप से समुद्र तक का क्षेत्र कोंकण कहा जा सकता है।

21. कोशल–

भगवान् राम की जन्मभूमि होने से कोशल जनपद बहुत प्रसिद्ध हुआ था। उस युग में यह अति विस्तृत था। उत्तर में नेपाल, पूर्व में विदेह और मगध, पश्चिम में शूरसेन जनपद तथा दक्षिण में विन्ध्य भूमि इसकी सीमायें रहीं होंगी। परन्तु उत्तरवर्ती काल में इसकी सीमायें सिकुड़ती गईं। बौद्ध काल में यह शक्तिशाली जनपद था और इसकी गणना 16 महाजनपदों में थी। प्राचीन विद्वानों ने इसको पूर्वी जनपदों में माना है[3]। पुराणों के अनुसार कोशल के पूर्व में विदेह और पश्चिम में कुरू– पांचाल जनपद थे। कोशल और विदेह जनपद की विभाजक रेखा गण्डक (सदानीरा) नदी थी[4]। गुप्त युग में इस जनपद पर गुप्तवंशी राजाओं का अधिकार हो गया था। यहां के नागरिक उज्जयिनी में देखे जा सकते थे[5]। प्राचीन साहित्य में कोशल के दो भागों का स्पष्ट उल्लेख है— उत्तरकोशल और दक्षिणकोशल।

पहले कभी सारा कोशल एक ही जनपद रहा होगा। परन्तु दशरथ के समय में इसके दो भाग स्पष्ट रूप से थे। दशरथ का राज्य उत्तरकोशल में था और अयोध्या इसकी राजधानी थी। दशरथ ने दक्षिणकोशल की राजकुमारी कौशल्या से विवाह किया था। कौशल्या को दक्षिण कोशल का बताया गया है[6]। राजशेखर[7] और मुरारी[8] ने इक्ष्वाकुवंशी राजाओं को उत्तर–कोशल का कहा है। उत्तरकोशल की स्थिति वर्तमान उत्तरप्रदेश का उत्तरपूर्वी भाग कहा जा सकता है, जो नेपाल से लेकर गंगा की धार तक विस्तृत था।

'वायुपुराण' के अनुसार कोशल के दो भाग राम के पश्चात् हुये थे।

---

1. बारा 2. 23 ॥ 2. पाद श्लोक 53. ॥ 3. कैहिइ भाग 1 पृ० 308 ॥
4. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 1. 12. 2–4, गरूडपुराण 55. 11 ॥
5. पाद श्लोक 134 ॥ 6. दक्षिणकोसलाधिपतिपुत्री। बारा पृ० 360 ॥
7. उत्तरकौशलेन्द्र... । बारा पृ० 397 ॥
8. राजन्वन्तः प्रतन्वन्तु मुदमुत्तरकोशलाः। अन 7. 147 ॥

लव उत्तरकोशल के राजा हुए और उन्होंने श्रावस्ती को अपनी राजधानी बनाया। कुश दक्षिणकोशल के राजा हुए। उन्होंने विन्ध्यमाला में कुशस्थली बसा कर राजधानी बनाई[1]। ई0 पू0 छठी शताब्दी में वत्स और कोशल जनपदों में गहरी राजनीतिक प्रतिद्वन्द्विता और शत्रुता थी।

वत्सराज उदयन ने सेनापति रूमण्वान् को कोशल पर आक्रमण करने के लिये भेजा था[2]। मौर्य साम्राज्य की स्थापना के बाद चन्द्रगुप्त से जीता जाने पर इस जनपद का स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया।

भौगोलिक दृष्टि से उत्तरकोशल, कोशल का अवध कहा जा सकता है। आधुनिक गोंडा, फैजाबाद, बहराइच, बलिया और आजमगढ़ जिले इसमें सम्मिलित हैं। इसकी राजधानी साकेत (अयोध्या) थी। श्रावस्ती भी कुछ समय राजधानी रही। दक्षिण कोशल की स्थिति गंगा के दक्षिण में थी।

22. क्रथकैशिक–

राजशेखर ने क्रथकैशिक जनपद का उल्लेख किया है। इसकी राजधानी कुन्डिननगर थी[3]। उन्होंने विदर्भ और क्रथकैशिक जनपदों को दक्षिण के पृथक् जनपद माना है[4]। परन्तु कुछ प्राचीन विवरणों के अनुसार क्रथकैशिक जनपद विदर्भ का ही एक भाग था। शैव्या के गर्भ से विदर्भ का जन्म हुआ था[5]। उसके तीन पुत्र हुए—क्रथ, कैशिक और रोमपाद[6]। विदर्भ का शासन क्योंकि क्रथ और कैशिक में बांट दिया गया, अतः इसके दो भाग क्रथ और कैशिक हो गये[7]।

कालिदास ने क्रथकैशिक को विदर्भ ही माना है[8]। वह 'मालविकाग्निमित्र' में भी क्रथकैशिक का प्रयोग विदर्भ के अर्थ में ही करता है[9]। अग्निमित्र की सेनाओं ने विदर्भ (क्रथकैशिक) को जीत कर उसके दो भाग कर दिये थे। वरदा के उत्तरी भाग का शासक यज्ञसेन को और दक्षिणी भाग का शासक माधवसेन को बनाया गया[10]।

23. गान्धार–

गान्धार जनपद अति प्राचीन है तथा यह अति गौरवशाली था। 'ऋग्वेद' और 'अथर्ववेद' में इस जनपद की स्थिति के संकेत हैं। 'अथर्ववेद' में इसकी हीनता

1. वायुपुराण 88. 198 ॥
2. कोसलोच्छित्तये गतवता रूमण्वता। ताप पृ0 10 ॥
3. बारा पृ0 145 ॥ 4. काव्य पृ0 226 ॥ 5 भागवतपुराण 9.23.39 ॥
6. वही 9.24.1 ॥ 7. मभा सभापर्व 14.21 ॥ 8. रघु 5.39-40 ॥
9. माका 5.2 ॥ 10. वही 5.13 ॥

प्रदर्शित होने पर भी उत्तरवर्ती काल में इसका उत्कर्ष और गौरव बढा। इस राज्य के अन्तर्गत तक्षशिला में महान् विद्वान् एकत्रित हुये। उन्होंने यहां विश्व के सबसे महान् विश्वविद्यालय की स्थापना की। पाणिनि, कौटिल्य, चन्द्रगुप्त, जीवक आदि महान् पुरूष इसी विश्वविद्यालय के स्नातक थे। गान्धार जनपद की राजकुमारी गान्धारी का विवाह कुरु सम्राट् धृतराष्ट्र से हुआ था। इसके पुत्र दुर्योधन के मामा गान्धार के राजा थे[1]। गान्धार की गणना प्राचीन 16 महाजनपदों में की गई है। अशोक के पंचम शिलालेख में गान्धार का उल्लेख है, जिसकी राजधानी तक्षशिला थी[2]। गुप्त काल में यह जनपद गुप्त साम्राज्य का अंग रहा। गान्धार के एक विट का निवास उज्जयिनी में दिखाया गया है[3]।

भारतवर्ष की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर स्थित गान्धार को भारतीय राजाओं के निर्बल हो जाने पर मुस्लिम आक्रमणों का पहला शिकार होना पड़ा। 8–9 वीं शताब्दी में इस पर मुस्लिम आक्रमण प्रारम्भ हो गये थे। दशवीं शताब्दी में गान्धार पर पूर्ण रुप से मुस्लिम आधिपत्य हो गया। यहां की अधिकांश आबादी को बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया।

गान्धार जनपद वर्तमान अफगानिस्तान से पूर्व में सिन्धु नदी और उसके पार तक विस्तृत था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी। वासुदेवशरण अग्रवाल लिखते हैं कि यह जनपद काशगर से लेकर तक्षशिला तक फैला हुआ था[4]। आधुनिक पेशावर और रावलपिण्डी जिले इस जनपद के ही अन्तर्गत थे। पाणिनि गान्धार के निवासी थे और 'अष्टाध्यायी' में उन्होंने तक्षशिला का उल्लेख किया है[5]। तक्षशिला पूर्वी गान्धार (सिन्धु के पूर्व) की राजधानी थी, परन्तु दक्षिणी गान्धार (सिन्धु के पश्चिम) की राजधानी पुष्कलावती थी। इसको भरत के पुत्र पुष्कल ने बसाया था। इसकी पहचान चारसड्डा से की जाती हैं। यह काबुल (कुभा) और स्वात नदियों के सङ्गम पर है।

आप्टे का कथन है कि गान्धार जनपद काबुल नदी के साथ कुन्नर और सिन्धु नदियों का मध्यवर्ती क्षेत्र था। गान्धार शब्द गन्धर्व का अपभ्रंश है और इसका अपभ्रंश कन्दहार है[6]। परन्तु गान्धार जनपद की पहचान में वासुदेवशरण अग्रवाल का मत ही अधिक समीचीन है। राजशेखर ने गान्धार को अधिक ऊन देने वाली भेड़ों के लिए प्रसिद्ध कहा है[7]।

1. वेणी पृ0 226 ।। 2. पोहिइ पृ0 93 ।। 3. पाद पृ0 254 ।।
4. पाभा पृ० 62 ।। 5. अष्टाध्यायी 4.3.93 ।।
6. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 42 ।। 7. काव्य 28.25 ।।

24. गौड़–

मुरारि ने मिथिला के पूर्व की ओर गौड़ जनपद का उल्लेख किया है। इसने इसकी राजधानी चम्पा कही है[1]। परन्तु मुरारि का कथन कुछ भ्रामक है। चम्पा अंग जनपद की राजधानी थी और गौड़ की राजधानी लक्ष्मणावती थी। यह सम्भव है कि कुछ समय के लिए गौडाधिप का अंग पर अधिकार हो गया हो और उसने इस समय चम्पा को अपना निवास बनाया हो। इस भ्रान्तिवश मुरारि ने चम्पा को गौड की राजधानी कहा होगा।

गौड जनपद के लिये पुण्ड्रक नाम भी आता है। यह बंगाल का उत्तरी भाग था। कहा जाता है कि इस जनपद से गुड़ का बहुत मात्रा में निर्यात होता था, अतः गौड़ नाम प्रसिद्ध हुआ[2]। संस्कृत काव्यशास्त्र में वर्णित रीतियों में एक गौड़ी रीति भी है। इसके कठोर तथा दीर्घसमासा होने से अनुमान किया जा सकता है कि गौड के सैनिक वीर और कठोर होते होंगे। गौडी रीति इसी जनपद के नाम से प्रसिद्ध है[3]।

गौड जनपद के बहुत प्रसिद्ध होने पर भी यह आश्चर्य का विषय है कि पूर्वी जनपदों में राजशेखर ने इसकी गणना नहीं की[4]। उत्तरवर्ती काल में सभी पूर्वी जनपद गौड के नाम से कहे जाने लगे थे[5], अतः राजशेखर ने इसका नाम नहीं लिया होगा।

कुछ विद्वानों ने उत्तर-प्रदेश के गोंडा जिले को और अन्य विद्वानों ने मध्यप्रदेश के गौंडवाना को गौड माना है[6]। परन्तु ये मत युक्तिसङ्गत नहीं है। गौड को उत्तरपूर्वी बंगाल ही माना जा सकता है। सातवीं शताब्दी में गौड का राजा शशांक था, जिसने राज्यवर्धन की हत्या की थी[9]। ह्वेनसांग के अनुसार शशांक बंगाल में कर्णसुवर्ण का राजा था[8]।

गौड को विद्या का केन्द्र माना जाता था। यहां का विक्रमशील विश्व-विद्यालय विश्व में प्रसिद्ध था। जब तक यहां हिन्दू राज्य रहा, विद्या की निरन्तर उन्नति होती गई। इस समय धर्म की भी उन्नति हुई और विशाल मन्दिर बनाये गये। परन्तु 12वीं शताब्दी के अन्त तक यहां मुस्लिम आधिपत्य हो गया। इस समय मन्दिरों को तोड़कर मसजिदें बनाई गईं तथा हिन्दू

---

1. अन पृ० 380 ।। 2. ऐना पृ० 309 ।। 3. काव्य 31.6 ।।
4. वही 93.20–22 ।। 5. ज्योडिएमि पृ० 117 ।।
6. ज्योडिएमि पृ० 27 ।। 7. हर्षचरित षष्ठ उच्छ्वास ।।
8. आम युवानच्यांग वो. 1 पृ० 343 ।।

जनता को बलपूर्वक मुसलमान बनाया गया। लखनौती (लक्ष्मणावती) की सोना मसजिद प्राचीन मन्दिरों की सामग्री से बनी है।

25. चेदि–

चेदि जनपद का उल्लेख अति प्राचीन है। 'ऋग्वेद' में इसका संकेत है। 'महाभारत' में चेदि के निवासियों की प्रशंसा की गई है[1]। कृष्ण का प्रतिद्वन्दी शिशुपाल चेदि का ही राजा था। पुराणों में इस जनपद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा गया है कि शिव द्वारा त्रिपुरी को जला देने पर उस का एक खण्ड पृथिवी पर गिर गया। उसी से चेदि जनपद की उत्पत्ति हुई[2]।

प्राचीन कथाओं के अनुसार हैहयवंशी कार्तवीर्यार्जुन का शासन चेदि जनपद में था। इसकी राजधानी माहिष्मती नर्मदा के तट पर थी। कालिदास ने चेदि को अनूप कहा है तथा माहिष्मति को राजधानी बताया है[3]। मुरारि के वर्णनों के अनुसार राम का विमान चेदि जनपद के ऊपर होकर गया था। उस समय भी इसकी राजधानी माहिष्मती थी। यहां कलचुरि वंश के राजा शासन करते थे[4]। यमुना नदी इस जनपद के पूर्व में बहती है[5]। राजशेखर का कथन है कि नर्मदा (मेकलसुता) इस जनपद को विभूषित करती है[6]।

कुछ विद्वानों ने चन्देल को चेदि जनपद माना है। परन्तु अधिकांश समालोचकों का मत है कि आधुनिक बुन्देलखण्ड और उसके समीपस्थ प्रदेश ही प्राचीन चेदि जनपद में थे।

26. चोल–

श्यामिलक ने चोल जनपद का उल्लेख किया है[7]। 'महाभारत' के अनुसार सहदेव ने इसको जीता था[8]। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में चोल जनपद का राजा उपहार लेकर आया था। अशोक के शिलालेखों में भी इस जनपद का उल्लेख है[9]। 'स्कन्दपुराण' के अनुसार चोल नाम के सम्राट के नाम पर इस जनपद का नाम प्रसिद्ध हुआ। काञ्ची इसकी राजधानी थी[10]।

चोल जनपद की स्थिति कोरोमण्डल के तट पर पूर्वी घाट में मानी

---

1 मभा कर्णपर्व 45.14-16 ।। 2. वारा 3 38 ॥ 3. रघु 6.43 ।।
4. अन पृ॰ 375 ।। 5. वही 7.116 ।।
6. नदीनां मेकलसुता नृपाणां रणविग्रहः ।
कवीनां च सुरानन्दश्चेदिमण्डलमण्डनम् ।। कर्पू ॥
7. पाद श्लोक 24 ।। 8. मभा सभापर्व 31.37 ।।
9. शिलालेख संख्या 13 ।। 01. स्कन्दपुराण 2.2.26.5 ।।

जाती है। डी. सी. सरकार ने आधुनिक तंजौर और त्रिचनापल्ली जिलों को तंजौर माना है[1]। आप्टे के अनुसार चोल जनपद कावेरी के तट पर स्थित था। वर्तमान मैसूर का दक्षिणी भाग, जो अब कर्नाटक कहलाता है, इसके अन्तर्गत था[2]।

27. दशार्ण–

राजशेखर ने दशार्ण जनपद का उल्लेख किया है। इसके मध्य से नर्मदा बहती है[3]। कलिदास ने वर्णन किया है कि रामगिरि से उज्जयिनी की ओर जाते हुये मेघ को दशार्ण जनपद को लांघना होगा[4]। इन वर्णनों से दशार्ण जनपद की स्थिति मध्य भारत में विदित होती है।

महाभारत में दो दशार्णों का उल्लेख है–पूर्व और पश्चिम। पूर्व दशार्ण को भीम ने और पश्चिम को नकुल ने जीता था। दशार्ण देश की राजकुमारी का विवाह द्रुपद के पुत्र शिखण्डी से हुआ था। उस समय यहां का राजा सुधर्मा था। पुराणों में दशार्ण की गणना मालव, कारूष, उत्कल, मेकल आदि देशों के साथ की गई है। इससे भी इसकी स्थिति मध्य भारत में प्रतीत होती है[5]।

विल्सन महोदय का कथन है कि दशार्ण पद का अर्थ है- दशार्णा नदी से सिंचित प्रदेश। यह नदी वर्तमान भूपाल के पास के पर्वतीय क्षेत्र से निकल कर सागर जिले में बहती हुई झांसी के निकट बेतवा में मिल जाती है। के. बी. पाठक ने इस मत को स्वीकार करके भी वर्तमान छत्तीसगढ को दशार्ण माना है। उन्होंने कात्यायन का अनुकरण करके इसकी व्युत्पत्ति मानी है- दशन्+ऋण=दशार्ण। दस दुर्गों वाला प्रदेश[6]। परन्तु इस मत को अन्य किसी ने स्वीकार नहीं किया है।

डी. सी. सरकार का मत है कि पूर्वी मालव और इसके समीपवर्ती प्रदेश प्राचीनकाल में दशार्ण कहलाते थे। दशार्णा (धसान) और वेत्रवती (बेतवा) नदियां इस प्रदेश में से बहती है[7]। आप्टे के मत में पूर्वी मालव की

---

1. ज्योडिएमि पृ० 29 ।। 2. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 42 ।।
3. बारा पृ० 138–139 ।।
4. त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
   सम्पत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः। पूर्वमेघ 25 ।।
5. कहिवा पृ० 254–255 ।। 6. काभोप्र पृ० 170 ।।
7. ज्योडिएमि पृ० 150-151 ।।

पहचान दशार्ण से की जानी चाहिए। इसकी राजधानी विदिशा (भिलसा) थी और यह वेत्रवती के तट पर बसी थी[1]।

28 दशार्ह–

'सुभद्राधनञ्जय' में उल्लेख है कि अर्जुन ने दशार्ह को जीता था[2]। इस जनपद की भौगोलिक सीमाओं का निर्धारण कठिन है। यह सम्भव है कि कवि का अभिप्राय यहां दशार्ण जनपद से हो। गढ़वाल में दशौली नामक एक स्थान है, जहां रावण ने शिव को प्रसन्न करने के लिये अपने दस सिर काट कर दे दिये थे। सम्भवतः उत्तराखण्ड की विजय यात्रा में अर्जुन ने इसको जीता था। नाम साम्य से दशौली को दशार्ह समझा जा सकता है।

29. दाशेरक–

'पादताडितक' में दाशेरक निवासी रुद्रवर्मा का उल्लेख है। वह उज्जयिनी में रहता था और विट के रूप में प्रसिद्ध था[3]।

पुराणों में दाशेरक जनपद का वर्णन मिलता है। 'वामनपुराण'[4] और 'बृहत्संहिता'[5] में इसको उत्तरापथ का जनपद कहा गया है। परन्तु 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में दाशेरक का परिचय भयानक मरुप्रदेश के रूप में है[6]। 'शृंगारहाट' की भूमिका में सम्पादक ने लिखा है कि सदानन्द दीक्षित मरुभूमि (मारवाड़) को दाशेरक कहते हैं, परन्तु 'पद्मपुराण' के उत्तराखण्ड (70-15) में मरुभूमि को दाशेरक के पश्चिम में बताया गया है। अतः दाशेरक को मारवाड़ के पूर्व में होना चाहिए। आधुनिक मन्दसौर को दाशेरक मानना उचित होगा[7]। प्राचीन समय में यह गणराज्य रहा होगा।

परन्तु अवधविहारी लाल ने मन्दसौर को दशपुर माना है, जो दाशेरक से भिन्न है। 'काव्यमीमांसा' (51.7) के अनुसार दशपुर की स्थिति अवन्ती और पारियात्र के समीप है। यहां भूतभाषा बोली जाती है। कुमारगुप्त और बन्धुवर्मन् के मन्दसौर के अभिलेख में दशपुर का सुन्दर वर्णन

---

1. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 41॥
2. सुभ 1.4॥ 3. पाद पृ० 159॥ 4. वामनपुराण 13.41॥
5. बृहत्संहिता 5.67॥
6. अस्ति दाशेरक नाम तेषां भागे तु पश्चिमे।
   अस्ति राजन् मरुर्देशः सर्वसत्वभयङ्करः॥ विष्णुधर्मोत्तरपुराण 1.162.2
7. शृंगारहाट भूमिका पृ० 30॥ 8. प्राभास्व पृ० 83-84॥

है । अतः दशपुर की पहचान मन्दसौर से की जानी चाहिए[1] । बी. सी. ला भी मन्दसौर को दशपुर मानते हैं[2] । अतः मन्दसौर को दाशेरक माना उचित नहीं ।

'महाभारत' के अनुसार दाशेरक गणों ने पाण्डवों के पक्ष में युद्ध किया था[3] । 'त्रिकाण्डशेष' (शब्दकोष) में दाशेरक को मरुदेश कहा गया है[11] । डा0 सरकार भी दाशेरक को मरुदेश कहते हैं[4] । आप्टे के अनुसार आधुनिक धौलपुर ही दाशेरक था[5] । डा0 विजयेन्द्रकुमार माथुर 'महाभारत' के आधार पर दाशेरक को मध्यक्षेत्र में कहते हैं[6] ।

30. द्रविड–

भारतीय साहित्य में द्रविड जनपद का उल्लेख बहुत प्राचीन है । 'महाभारत' में इसको दक्षिण के जनपदों में गिनाया गया है । पाण्ड्य, द्रविड चोल, केरल, आन्ध्र आदि दक्षिण-जनपदों को सहदेव ने जीता था[7] ।

राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में द्रविड जनपद की गणना दक्षिण के जनपदों में तो नहीं की, परन्तु अपने नाटकों में यहां की विशेषतायें कहीं हैं । द्रविड युवतियों के कपोल श्यामल होते हैं[8] । भ्रूविक्षेप कामदेव का दूसरा बाण है[9] और वे लास्य नृत्य में अति कुशल होती हैं[10] । द्रविड भूमि में पान, सौंठ, इलायची और कपूर प्रचुर होते हैं । यहां पान के प्रयोग का प्रचार भी बहुत है[11] । मुरारि ने कांची को द्रविड का प्रमुख नगर कहा है[12] ।

प्राचीनकाल में द्रविड भूमि सम्पूर्ण कोरोमण्डल को सम्मिलित करती थी । आधुनिक तामिलनाड ही प्राचीन समय का द्रविड है । भाषा-विज्ञानियों के अनुसार द्रविड और तामिल शब्द मूलतः एक है, उच्चारण के भेद से वे अलग हो गये हैं ।

---

1. हिज्योएइ पृ॰ 280–281 ॥
2. कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्भ्यां तौ जनेश्वरौ ।
   दाशार्णकाः प्रमद्राश्च दाशेरकगणैः सह ।। मभा भीष्मपर्व 50.47 ।।
3. त्रिकाण्डशेष 2.1.9 ।। 4. ज्योडिएमि पृ 26 ।।
5. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ॰ 26 ।। 6. ऐना पृ॰ 433 ।।
7. पाण्ड्यांश्च द्रविडांश्चैव सहिताश्चोलकेरलैः ।
   आन्ध्रांस्तालवनांश्चैव कलिङ्गानुष्ट्रकर्णिकान् ।। मभा सभापर्व 31.71 ।।
8. बारा 5.34 ।। 9. वही 10.68 ।। 10. विद्ध 1.29 ।।
11. बारा 3.63 ॥ 12. अन पृ॰ 370–371 ।।

31. नेपाल–

राजशेखर ने नेपाल का उल्लेख किया है[1]। यह पूर्वी जनपदों में है[2]। 'महाभारत' में नेपाल को उत्तर-पूर्वी माना गया था। इसको कर्ण ने जीता था[3]। 'स्कन्दपुराण' के अनुसार नेपाल में एक लाख ग्राम थे[4]।

इतिहास में प्रसिद्ध है कि प्राचीनकाल में नेपाल में आर्येतर जातियों का शासन रहा। परन्तु मध्य युग में मुस्लिम आक्रमणों से त्रस्त मेवाड़ के राजपूतों की एक शाखा यहां आई और उसने इस पर अधिकार कर लिया। वर्तमान समय में भी नेपाल में इन्हीं का शासन है।

नेपाल की पहचान वर्तमान नेपाल राज्य से की जाती है। यह भारत-वर्ष के उत्तर में हिमालय का मध्यवर्ती है। यह राज्य भारत वर्ष से पृथक् और स्वतन्त्र है। पशुपतिनाथ और लुम्बिनी यहां के प्रसिद्ध तीर्थ हैं।

32. पंचाल–

प्राचीन साहित्य में पञ्चाल जनपद बहुत प्रसिद्ध रहा। महाभारतकाल में यहां के राजा द्रुपद की पुत्री द्रौपदी का पाण्डवों से विवाह हुआ था। राजशेखर इस जनपद को अन्तर्वेदी में मानते हैं[5]। इसकी राजधानी उस समय कन्नौज थी[6]। पञ्चाल की गणना उत्तरापथ के जनपदों में भी हुई है और इस प्रदेश के नाम से पाञ्चाली रीति प्रसिद्ध हुई[7]। राजशेखर ने इस रीति की बहुत प्रशंसा की है। पञ्चाल के विद्वान् और कवि शास्त्रीय और लौकिक-काव्य में कुशल थे[8]। इस देश की नारियां 64 कलाओं में प्रवीण होती थीं[9]।

प्राचीन साहित्य में पञ्चाल जनपद के दो विभागो में विभक्त होने का उल्लेख है— उत्तर और दक्षिण। 'महाभारत' के अनुसार पञ्चाल के राजा द्रुपद से द्रोण ने पञ्चाल का आधा भाग उत्तरपञ्चाल छीन लिया था और दक्षिण पञ्चाल उसी के पास रहने दिया[10]। उत्तरपञ्चाल की राजधानी

1. बारा 3.63 ॥
2. काव्य 93.22–23 ॥ 3. मभा वनपर्व 254.7 ॥
4. स्कन्दपुराण 1.2.39.139 ॥ 5. बारा पृ० 689 ॥
6. कर्पू पृ० 159 ॥ 7. वही 1.1 ॥
8. बारा 10.86 ॥ 9. वही 10.87 ॥
10. अथ प्रयतितं राज्ये यज्ञसेन त्वया सह।
राजासि दक्षिणे कूले भागीरथ्याहमुत्तरे ॥ मभा आदिपर्व 165. 24 ॥

अहिच्छत्र थी और दक्षिण की कम्पिल्ल। बौद्ध युग में पञ्चाल जनपद की गणना 16 महाजनपदों में की गई थी।[1]

प्राचीन वर्णनों से प्रतीत होता है कि पञ्चाल जनपद की स्थिति कुरु जनपद के पूर्व में थी। यह एक विशाल जनपद था, जो बरेली, पीलीभीत, बदायूं, फरूखाबाद और फतेहगढ को सम्मिलित करता हुआ कन्नौज तक विस्तृत था। 'तापसवत्सराज' के वर्णनों से प्रतीत होता है कि पञ्चाल के दक्षिण में वत्स जनपद था, जो गंगा के पार रहा होगा। कनिंघम के अनुसार वर्तमान रूहेलखण्ड कमिश्नरी में गंगा के उत्तर में पञ्चाल जनपद था। अहिच्छत्र की पहचान बदायूं जिले के आंवला नामक स्थान के समीप की जाती है, जहां प्राचीन राजधानी के खण्डहर मिले हैं। दक्षिण पञ्चाल की स्थिति गंगा के दक्षिण में होनी चाहिये। इसकी राजधानी कम्पिल्ल के भी अवशेष मिले हैं। गंगा के दक्षिण में कम्पिला नाम का कस्बा है। यहां एक ऊंचा टीला द्रुपद का कोट कहलाता है।

33. पाण्ड्य–

पाण्ड्य जनपद का उल्लेख श्यामिलक ने चोल, महिषक और केरल के साथ किया है[2]। पाण्ड्यों के उज्जयिनी में देखे जाने से अनुमान किया जा सकता है कि यह जनपद भो गुप्त साम्राज्य में सम्मिलित रहा होगा। कालिदास ने इन्दुमती के स्वयंवर में पाण्ड्य राजा और पाण्ड्य देश का मनोरम वर्णन किया है[3]। इससे पहले वे रघु द्वारा पाण्ड्यों को जीतने का वर्णन करते हैं और इस जनपद की राजधानी उरगपुर बताते हैं[4]। सम्भवतः यह स्थान वर्तमान मद्रास नगर से 160 मील दक्षिण में त्रिचनापल्ली जिले में है तथा नेगापट्टन कहलाता है। इसको उरइयूर भी कहते हैं। कुछ समालोचक उरगपुर की पहचान मदुरा से करते हैं[5]।

---

1. अंगुत्तरनिकाय 6. 10 ॥ 2. पाद श्लोक 24 ॥

3. पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभातिबालातपरक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥
ताम्बूलवल्लीपरिणद्धपूगास्वेलालतालिङ्गितचन्दनासु।
तमालपत्रास्तरणासु रन्तुं प्रसीद शश्वन्मलयस्थलीषु॥ रघु 6.60, ॥

4. रघु 6. 59॥ 5. के. एस. सांकलिया : दी एनलस आफ भण्डारकर इन्स्टीट्यूट भाग 2 पृ0 181-191

राजशेखर ने पाण्ड्य जनपद का उल्लेख अनेक स्थानों में किया है[1]। वे सम्भवतः पाण्ड्य और द्रविड जनपद को एक मानते हैं। उन्होंने पाण्ड्यों के राजा को द्रविडपति कहा है[2]। उनके अनुसार पाण्ड्य की स्थिति समुद्रतट पर है तथा ताम्रपर्णी इसके मध्य से बहती है[3]। 'कर्पूरमञ्जरी' के अनुसार पाण्ड्य जनपद की दो वस्तुयें प्रसिद्ध थीं– रमणियां और मलयज पवन[4]। कुलशेखर वर्मन् ने पाण्ड्य जनपद का वर्णन दक्षिण में किया है[5]। यह चोल के भी दक्षिण में था।

आधुनिक भूगोल के अनुसार मदुरा और तिनेवेल्ली जिले पाण्ड्य जनपद में थे। सम्भवतः त्रावणकोर-कोचीन राज्य का दक्षिणी भाग इसमें सम्मिलित रहा होगा। इस जनपद की सीमा उत्तर में कावेरी, पश्चिम में मलय पर्वत और केरल, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और मनार की खाड़ी तथा दक्षिण में हिन्द महासागर माने जा सकते हैं।

34. बङ्ग –

'पादताडितक' में वर्णन है कि उज्जयिनी में बङ्ग के लोग भी दिखाई देते हैं[6]। भास ने भी बङ्ग जनपद का उल्लेख किया है तथा इसको पूर्व के जनपदों में बताया है बङ्ग के राजा की अभिलाषा थी कि वह चण्डप्रद्योत की कन्या वासवदत्ता से विवाह करे। उसके प्रस्ताव पर चण्डप्रद्योत ने विचार किया था[7]।

बङ्ग का उल्लेख प्राचीन साहित्य में प्रचुर है। प्राचीन साहित्य के अनुसार बलि के पुत्र बङ्ग के नाम पर इस जनपद को कहा गया[8]। इसकी अधिष्ठात्री कालिका देवी थी। इस जनपद की गणना पूर्व के जनपदों में की गई थी[9]। 'वायुपुराण',[10] 'मत्स्यपुराण'[11], 'गरुडपुराण'[12] और 'बृहत्संहिता'[13] में इस जनपद का उल्लेख पूर्व में किया गया है। 'कामसूत्र' की 'जयमंगला टीका' के अनुसार बङ्ग के मध्य में से लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नदी प्रवाहित होती है।

---

1. बाभा 1. 7, 2. 122 ॥
2. बारा पृ० 134 ॥ 3. वही 3.31 ॥ 4. कर्पू 1.15 ॥ 5. सुभ पृ० 168 ॥
6. पाद श्लोक 24 ॥ 7. प्रतिज्ञा 2.8 ॥
8. भागवतपुराण 9.32.5, मत्स्यपुराण 48.25 ॥ 9. काव्य 14.12 ॥
10. वायुपुराण 45.122 ॥ 11. मत्स्यपुराण 114.44 ॥
12. गरूडपुराण 55.12 ॥ 13. बृहत्संहिता 14.8 ॥

सामान्यत: पूर्वी बंगाल को, जो अब बंगला देश कहलाता है, बङ्ग माना जा सकता है। इसमें मुख्य रूप से चटगांव, मैमनसिंह और ढाका जिलों का अन्तर्भाव रहा होगा। डी. सी. सरकार का कथन है कि वर्तमान दक्षिण-पूर्वी बंगाल ही बङ्ग था[1]। परन्तु बी. सी. ला सारे बंगाल को बङ्ग मानते हैं[2]। भगवतशरण उपाध्याय का कथन है कि यह जनपद वर्तमान त्रिपुरा के पश्चिम में गौड (उत्तरी बंगाल) से भिन्न था[3]।

35. बाह्लव–

राजशेखर ने बाह्लव जनपद का उल्लेख किया है। यहां की रमणियां वसन्त में अधिक प्रसन्न रहती है[4]। काव्य मीमांसा में बाह्लव को उत्तरी जनपदों में गिना गया है[5]। 'राजतरंगिणी' में बाह्लव का उल्लेख है, जो काश्मीर के दक्षिण-पूर्व में था। वर्तमान समय में बाह्लव की पहचान बल्लपुर (बल्लवर) से की जाती है, जो एक पर्वतीय राज्य रहा और अब हिमाचल प्रदेश में है।

36. बाह्लीक–

श्यामिलक ने बाह्लीक का उल्लेख किया[6] है। यह प्राचीन भारत में महत्वपूर्ण जनपद था। 'स्कन्दपुराण' में भारतवर्ष के 72 जनपदों में बाह्लीक को भी गिनाया गया है[7]। इसमें चार लाख ग्राम थे। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर उत्तरी जनपदों में बाह्लीक को भी जीतने का वर्णन है[8]। यहां के राजा और नागरिक यज्ञ के समय उपहार लेकर उपस्थित हुए थे। कालिदास ने वर्णन किया है कि रघु की सेनायें दिग्विजय करती हुई बाह्लीक जनपद मे वंक्षु के तट पर पहुंची थी[9]। उस समय यहां के हूणों को रघु ने पराजित किया[10]।

महरौली के एक अभिलेख से विदित होता है कि बाह्लीक को चन्द्र नाम के राजा ने जीता था। सम्भवत: यह राजा गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ही था। 'कामसूत्र' में बाह्लीक को स्त्रीराज्य बताया गया है। यहाँ एक स्त्री अनेक पुरुषों से विवाह करती थी, स्त्रियों के अन्त:पुर होते थे। इनमें अनेक पुरुष इसी प्रकार रहते थे, जैसे एक पुरुष के अन्त:पुर में अनेक

---

1. ज्योडिएमि पृ० 27 ॥ 2. हिज्योएइ पृ० 267 ॥
३. इन्डिया इन कालिदास पृ० 51 ॥ 4. बारा 5.35 ॥
5. काव्य 94.9–11 ॥
6. पाद पृ० 168 ॥ 7. स्कन्दपुराण 1.2.39.155 ॥
8. मभा सभापर्व 52. 13 ॥ 9. रघु 4. 67 ॥ 10. वही 4.68 ॥

स्त्रियां रहती हैं[1]। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस जनपद का नाम फो-हो-लो लिखा है। उसके वर्णन के अनुसार इस प्रदेश में भारतीय सभ्यता का प्रसार था और यहां लगभग 100 बौद्ध मठ थे[2]।

बाह्लीक की पहचान आधुनिक बल्ख, (बैक्ट्रिया) से की गई है। यह अफगानिस्तान के उत्तर-पश्चिम में है। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार वाह्लीक की स्थिति काम्बोज के पश्चिम में थी और वंक्षु के दक्षिण में यह था। यह क्षेत्र हिन्दूकुश पर्वत के उत्तर-पश्चिम में है[3]।

37. भर्ग–

श्यामिलक ने काशी और कोशल के साथ भर्ग जनपद का उल्लेख किया है[4]। इससे विदित होता है कि यह जनपद पूर्वी भारत में था। पाली साहित्य में इसको पूर्वी जनपदों में कहा गया है। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर भीम ने वत्स को जीत कर भर्ग और निषाद जनपदों के राजाओं को जीता था[5]। 'ऐतरेय ब्राह्मण[6], और 'अष्टाध्यायी' में भर्ग क्षत्रियों का उल्लेख हुआ है[7]। इन वर्णनों से भी इसकी स्थिति पूर्व में प्रतीत होती है। बौद्ध साहित्य में इसको भाग कहा गया है। इसकी राजधानी सिसुमारगिरि थी[8]।

भर्ग जनपद की पहचान वर्तमान समय के चुनार से की जाती है[9]।

38. मगध–

प्राचीन समय में मगध एक अति शक्तिशाली महान् जनपद था। यहां के राजाओं ने किसी समय सारे भारत को जीत कर महान् साम्राज्य की स्थापना की थी। संस्कृत नाटकों में इस जनपद का प्रायः उल्लेख है

भास के समय यहां का राजा दर्शक था। उसकी बहन पद्मावती का विवाह उदयन से हुआ था[10]। मगध के राजा ने किसी समय चण्ड प्रद्योत की कन्या वासवदत्ता से विवाह करने का प्रस्ताव भेजा था और इस प्रस्ताव पर विचार किया गया था[11]। 'मुद्राराक्षस' की घटनाओं का सम्बन्ध मुख्य रूप से मगध की राजधानी कुसुमपुर से है। 'वेणीसंहार'[12] और 'तापसवत्सराज'[13]

1. कामसूत्र 2.6.43 ।। 2. आन ह्वेनसांग पृ० 109 ।। 3. पाभा पृ०62 ।।
4. पाद श्लोक 134 ।। 5. मभा सभापर्व 30.10-11 ।।
6. ऐतरेय ब्राह्मण 3.84.31 ।। 7. अष्टाध्यायी 4.1.111 ।।
8. शृंगारहाट पृ० 251 ।। 9. ऐना पृ० 653 ।।
10. स्वप्न पृ0 15-16 ।। 11. प्रतिज्ञा 2.8 ।। 12. वेणी 6. 18
13. ताप पृ0163

नाटकों में भी मगध का उल्लेख हुआ है। राजशेखर के रूपकों में मगध का अनेक बार उल्लेख हुआ है[1]। 'पादताडितक' में वर्णन है कि मगध के नागरिक उज्जयिनी में देखे जा सकते थे[2]। 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक की घटनाओं का सम्बन्ध मगध से ही है।

मगध का उल्लेख वैदिक साहित्य, 'महाभारत', पुराण और बौद्ध साहित्य में हुआ है। 'अथर्ववेद' के अनुसार मगध आर्य सभ्यता से बाह्य क्षेत्रों में था[3]। महाभारत युग में यहां का राजा जरासन्ध था। उसकी राजधानी राजगृह थी। उसने कृष्ण पर अनेक बार आक्रमण किया था। कृष्ण, भीम और अर्जुन उसको जीतने के लिये गये थे। इन वर्णनों के अनुसार मगध की सीमायें पश्चिम में शोण नदी और उत्तर में गंगा रही होंगी[4]। मगध की राजधानी गिरिव्रज भी कही गई है। यह नगरी पांच पर्वतों से घिरी हुई थी और इसका प्राकृतिक सौन्दर्य अद्भुत था[5]। 'विष्णुपुराण' के अनुसार मगध में सबसे पहले विश्वस्फटिक नाम के राजा ने वर्णों की परम्परा को प्रारम्भ करके आर्य सभ्यता को प्रवर्तित किया था[6]।

बौद्ध काल में मगध जनपद बहुत प्रसिद्ध रहा। छठी शताब्दी ई0 पू0 में यहां का राजा बिम्बसार था। गंगा के दक्षिण में मगध राजतन्त्र था और उत्तर में लिच्छवि गणराज्य। इस समय मगध की राजधानी राजगृह थी। परन्तु नन्दों के समय तक, जबकि उत्तरी बिहार (लिच्छवि गणराज्य) को भी मगध राजाओं ने अपने अधिकार में कर लिया, मगध की राजधानी पाटलिपुत्र (कुसुमपुर) हो गई। मगध का नाम साहित्य जगत् में भी बहुत प्रसिद्ध हुआ। यहां की काव्य-रीति मागधी कहलाई।

---

1. बाभा 1.67, बारा 3.63, विद्ध पृ० 94 ॥ 2. पाद श्लोक 24 ॥
3. अथर्ववेद 5.22.14 ॥ 4. प्राभास्व पृ० 38 ॥
5. एष पार्थ महान् भाति पशुमान् नित्यमम्बुमान् ।
निरामयः सुवेश्माढ्यः निवेशो मागधः शुभः ॥
वैभारो विपुलः शैलो वराहो वृषभस्तथा ।
तथा ऋषिगिरिस्तालशुभाचैत्यै कपञ्चषाः ॥
ऐते पंच महाशृंगाः पर्वताः शीतलद्रुमाः ।
रक्षन्तीवाभिसंहत्य संहताङ्गा गिरिव्रजम् ॥
मभा सभापर्व 21.1-3 ॥

विष्णुपराण 4. 24 61 ॥

कालिदास के समय मगध एक प्रतापी राज्य था। इसका वर्णन इन्दुमती के स्वयंवर में हुआ है[1]। मगध की राजधानी को पुष्पपुर कहा गया है[2]। गुप्त काल में यह अति प्रभावशाली था। परन्तु गुप्तों के पतन के साथ ही इसका गौरव निरन्तर क्षीण होता गया। तदन्तर इसका विलीनीकरण बिहार नामक प्रान्त में हो गया।

मगध की पहचान गंगा के दक्षिण में दक्षिणी बिहार से की जाती है। इसमें मुख्य रूप से पटना और गया जिले सम्मिलित हैं। आप्टे का कथन है कि मगध जनपद वाराणसी से मुंगेर तक तथा गंगा से सिंहभूमि तक विस्तृत था[3]। इस जनपद की सीमायें पूर्व में अङ्ग–बङ्ग, पश्चिम में काशी–कोशल, उत्तर में गंगा और दक्षिण में उत्कल रही होंगी।

39. मत्स्य–

मत्स्य महाभारत काल का प्रसिद्ध जनपद रहा। उस समय यहां का राजा विराट् था[4]। मत्स्य जनपद की प्रसिद्धि अति प्राचीन है। 'ऋग्वेद[5]', 'शतपथ ब्राह्मण[6]', 'गोपथ ब्राह्मण[7]' और 'कौषीतकी ब्राह्मण[8]' में इसका उल्लेख हुआ है। 'मनुस्मृति' में इसको अति पवित्र तथा ब्रह्मर्षि देशों में गिना गया है[9]।

'महाभारत' में मत्स्य जनपद का विशद वर्णन है। पाण्डवों ने अज्ञातवास का वर्ष यहीं बिताया था। उन्होंने रोहितक और शौरसेन देश में होकर इसमें प्रवेश किया था। उस समय इस जनपद का नाम विराट भी प्रसिद्ध था तथा राजधानी विराटनगर कहलाती थी।

वर्तमान समय में धौलपुर (राजस्थान) के पश्चिमी क्षेत्र की पहचान मत्स्य जनपद से की जाती है[10]। आधुनिक बैरतनगर ही विराटनगर था, जो जयपुर से 40 मील उत्तर में है।

40. मद्र–

मद्र जनपद का वर्णन अति प्राचीन है। 'वेणीसंहार' नाटक में इसका वर्णन हुआ है[11]। 'महाभारत' की कथा में मद्र का प्रचुर वर्णन है। उस समय

---

1. रघु 6. 21 ॥
2. प्रासादवातायनसंश्रितानां नेत्रोत्सवं पुष्पपुराङ्गनानाम्। रघु 6. 24 ॥
3. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 47 ॥ 4. वेणी पृ० 218 ॥ 5. ऋग्वेद 7.18·6॥
6. शतपथ ब्राह्मण 13. 5. 4. 9 ॥ 7. गोपथ ब्राह्मण 1. 2. 9 ॥
8. कौषीतकि उपनिषत् 14. 1 ॥ 9. मनु 2. 19 ॥
10. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 47 ॥ 11. वेणी पृ० 218 ॥

यहां का राजा शल्य था। उसने कौरवों के पक्ष में युद्ध किया था। शल्य की बहन माद्री का विवाह पाण्डु से हुआ था, जिससे नकुल और सहदेव दो पुत्र थे। पुराणों में प्रसिद्ध सती सावित्री मद्रनरेश अश्वपति की पुत्री थी[1]।

सम्भवतः मद्र जनपद को बाहीक के अन्तर्गत माना गया था। इसके दो भाग थे— पूर्व और अपर। पूर्वमद्र रावी और चनाब (चन्द्रभागा) नदियों तक और अपरमद्र चनाब से जेहलम नदी तक विस्तृत था। इस जनपद की राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी। गुरु गोविन्द सिंह के समय तक स्याल-कोट का क्षेत्र मद्र के नाम से प्रसिद्ध रहा।

41. मलद–

श्यामिलक ने मलद जनपद के एक सामन्त का उल्लेख किया है। वह उज्जयिनी नगरी में घूमता हुआ दृष्टिगोचर होता है[2]।

मलद जनपद का उल्लेख प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों में आया है। 'नाट्यशास्त्र' इसका संकेत करता है[3]। 'महाभारत' के अनुसार भीम ने इस जनपद को जीता था[4]। 'रामायण' में इसका उल्लेख पूर्वी भारत के जन-पदों में किया गया है। मलद और कारुष जनपदों में ताडका राक्षसी विचरण किया करती थी[5]।

मलद की पहचान सामान्य रूप से पूर्वी भारत के माल्दा प्रदेश से की जाती है। परन्तु पर्जीटर महोदय का विचार है कि मलद को मलज मानना चाहिए। ये लोग वर्तमान बिहार के शाहाबाद के निवासी थे[6]। यहां के बक्कसर स्थान को मलद कहना चाहिये[7]।

42. मलय–

'मुद्राराक्षस' में मलय जनपद का उल्लेख आया है। यहां का राजा सिंहनाद मलयकेतु के प्रधान सहायक राजाओं में था[8]। ये राजा थे– कुलूत का चित्रवर्मा, काश्मीर का पुष्कराक्ष, मलय का सिंहनाद, सिन्धु का सिन्धुषेण और पारसीक का मेघ। इन सभी जनपदों की स्थिति प्रायः भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र में है, अतः मलय जनपद को भी इसी क्षेत्र में होना चाहिये।

---

1. मभा वनपर्व 293. 5 ।।
2. पाद पृ० 193 ।। 3. नाट्यशात्र 14. 14 ।। 4. मभा सभापर्व 30. 8 ।।
5. मलदांश्च ताटका दुष्टचारिणी। रामायण बालकाण्ड 24. 32 ।।
6. पर्जीटरः मार्कण्डेय पुराण पृ०308।। 7. ऐना पृ० 715।। 8. मुद्रा 1.20 ।।

मलय जनपद की पहचान काफी विवादास्पद है। सामान्यतः मलय जनपद को मलय पर्वत के क्षेत्र में माना जाना चाहिये। विलसन और तैलंग ने मलय जनपद की स्थिति पचिश्मी घाट में केरल में मानी है। परन्तु 'मुद्राराक्षस' में वर्णित मलय को दक्षिण भारत में मानना कठिन है। प्रो० ध्रुव के अनुसार मलय जनपद कुल्लू के पूर्व में था। नेपाल में राप्ती और गण्डक नदियों का मध्यवर्ती क्षेत्र भी मलय कहा गया है।

43. महाराष्ट्र–

महाराष्ट्र जनपद प्राचीन काल से प्रसिद्ध रहा है। राजशेखर ने इसकी बहुत प्रशंसा की है। यह बहुत विस्तृत था तथा विदर्भ और कुन्तल के क्षेत्र इसी के अन्तर्गत थे[1]। महाराष्ट्र की रमणियां अति सुन्दर और आकर्षक होती हैं। वे गौर वर्ण की हैं। उनके कपोल चम्पा के समान मनोहारी हैं[2]। वे काम–विलास में निपुण होती हैं तथा शीघ्र उन्मत्त हो जाती हैं[3]।

महाराष्ट्र का पुराणों में प्रचुर वर्णन है। 'स्कन्दपुराण' के अनुसार यह दक्षिण में है[4]। मार्कण्डेय पुराण का कथन है कि महाराष्ट्र कूर्म की दक्षिण कुक्षि में स्थित है[5]।

आर. जी. भण्डारकर का मत है कि प्राचीन समय में दक्षिण में राष्ट्र-कूटों का शासन था। इनका पूर्व पुरुष रट्ट था। यह रट्ट राज्य ही महा–रट्ट और महाराष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ[6]। यशोधर के अनुसार महाराष्ट्र जनपद नर्मदा से लेकर कर्नाटक तक विस्तृत था[7]। महाराष्ट्र की पहचान वर्तमान महाराष्ट्र से की जाती है।

44. महिषक–

श्यामिलक ने चोल, पाण्ड्य और केरल के नागरिकों के साथ ही महि-षक के नागरिकों का भी उज्जयिनी में रहने का वर्णन किया है[8]। इस वर्णन से प्रतीत होता है कि महिषक जनपद भी इन्हीं जनपदों के समीप में दक्षिण भारत में होगा।

मीराशी महोदय का कथन है कि प्राचीन काल में दक्षिण हैदराबाद प्रदेश को महिषक कहा जाता था[9]। सरकार महोदय का अभिमत है कि

---

1. बारा 10. 74–75 ॥ 2. कर्पू 1. 16 ॥ 3. विद्ध 1. 29 ॥
4. स्कन्दपुराण 2. 1. 14. 5 ॥ 5. मार्कण्डेय पुराण 58. 53 ॥
6. अर्हिड पृ029,314,322,326॥ 7. कामसूत्र की जयमंगला टीका 2.5.29॥
8. पाद श्लोक 24 ॥ 9. जे. ए. एस. आई. भाग 12 जून 1949 पृ० 1-4 ॥

प्राचीन महिषक जनपद या तो वर्तमान मैसूर है अथवा नर्मदा के तट पर अवस्थित माहिष्मती[1]। 'पादताडितक' में महिषक का उल्लेख चोल, पाण्ड्य और केरल के साथ होने से वर्तमान मैसूर क्षेत्र को ही प्राचीन समय का महिषक मानना अधिक युक्तिसंगत होगा।

45. मुरल–

राजशेखर ने मुरल जनपद का उल्लेख किया है[2]। मुरला नदी का तटवर्ती होने से इसको मुरल कहा गया होगा। कुछ विद्वानों ने मुरला नदी को केरल में मान कर मुरल जनपद को दक्षिण में माना है। परन्तु यह मत विवादास्पद है।

मुरला नदी का वर्णन पहले किया जा चुका है। भवभूति ने इसको गोदावरी की सहायक वर्णित किया है। मुरला को अगस्त्य की पत्नी ने गोदावरी के पास भेजा था[3]। कालिदास ने मुरला का उल्लेख सह्य और अपरान्त में किया है। अतः यह सम्भव है कि मुरल जनपद केरल और अपरान्त के मध्य में रहा हो। मीराशी के अनुसार हैदराबाद का उत्तरी भाग प्राचीनकाल में मुरल कहलाता था[4]। कुछ समालोचक केरल को ही मुरल मानते हैं[5]।

46. रमठ–

'बालरामायण' में रमठ का उल्लेख हुआ है। यह उत्तरवर्ती जनपद है[6]। 'महाभारत' में रमठ को भारतवर्ष की पश्चिमोत्तर सीमाओं पर बताया गया है[7]। सरकार महोदय का मत है कि यह जनपद गजनी और बरवान का मध्यवर्ती है[8]।

47. रोहितक–

'पादताडितक' में रोहितक के मृदंगियों का उल्लेख है। वे उज्जयिनी के पानगृहों में मृदंग बजाते हुए लोकगीत गा रहे थे[9]। 'महाभारत' के अनुसार रोहितक प्रदेश इन्द्रप्रस्थ के समीप पश्चिम में स्थित था और सहदेव ने इसको जीता था[10]।

---

1. ज्योएमि पृ० 30 ।। 2. विद्ध 3. 18 ।। 3. उत्त पृ० 185 ।।
4. कार्पस इन्स्क्रिप्शनम भाग 4 पृ०314 ।। 5. ऐना पृ० 753 ।।
6. काव्य 94. 9 ।। 7. सभा सभापर्व 32. 12, भीष्म पर्व 9. 16 ।।
8. ज्योएमि पृ० 26 ।। 9. पाद पृ0 168 ।। 10. सभा सभापर्व 32.4–5 ।।

ऐतिहासिकों का विचार है कि रोहितक यौधेयों का निवास था। 'गरुडपुराण' में यौधेय गण का उल्लेख आया है। उसको मध्यप्रदेश में अवस्थित कहा गया है[1]। रोहितक की पहचान आधुनिक रोहतक जिले से की जा सकती है। यह हरियाणा में है।

48. लङ्का–

भारतीय परम्पराओं के अनुसार लङ्का और सिंहल को एक ही माना जाकर इसकी स्थिति दक्षिण में रामेश्वरम् से समुद्र को पार करके एक द्वीप के रूप में स्वीकार की जाती है। आधुनिक सीलोन को ही लङ्का माना जाता है।

प्राचीन साहित्य में लङ्का और सिंहल का प्रचुर वर्णन है। संस्कृत नाटकों में भी इसका पर्याप्त वर्णन हुआ है। राम सम्बन्धी नाटकों में इस द्वीप का वर्णन रावण के देश के रूप में हुआ है। वह सीता को हर ले गया था। समुद्र पर पुल बांध कर लङ्का में प्रवेश करके राम ने रावण का वध किया और वे सीता को वापिस लाये।

हर्षवर्धन के समय लङ्का एक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र रहा होगा। यहां नियमित रूप से जहाजों का आवागमन होता था। इस द्वीप का भारतीय राजाओं के साथ घनिष्ठ संबन्ध था। सिंहलनरेश ने अपनी कन्या रत्नावली को एक व्यापारिक जहाज द्वारा कौशाम्बी भेजा था। समुद्र में जहाज के टूट जाने पर रत्नावली को कौशाम्बी के व्यापारियों ने बचाकर कौशाम्बी में यौगन्धरायण के पास पहुँचा दिया[2]।

प्राचीन साहित्य के अनुसार सिंहल पर भारतीयों ने अधिकार किया था। दक्षिण के राजाओं ने इसको अनेक बार जीता। सम्भवतः गुप्तवंशी राजाओं ने भी इस पर अधिकार किया हो। सिंहल की वेश्यायें उज्जयिनी में देखी जा सकती थीं[3]। राजशेखर ने वर्णन किया है कि सिंहल की नारियां शीघ्र रूठती हैं। उसके अनुसार सिंहल द्वीप की राजधानी लङ्का थी, जहां तोरणों पर मालायें लटकी रहती थीं[4]।

लङ्का या सिंहल की स्थिति के सम्बन्ध में काफी विवाद है। अनेक समालोचकों जैकोबी, रायबहादुर हीरालाल आदि लङ्का को समुद्रपारीय द्वीप नहीं मानते। उनके अनुसार लङ्का की स्थिति मध्य भारत में कहीं थी। मायाप्रसाद त्रिपाठी का कथन है कि लङ्का को मध्यभारत या विन्ध्यप्रदेश के

---

1. गरुडपुराण 55.10 ।। 2. रत्ना पृ० 10 ।। 3. पाद पृ० 223 ।।
4. विद्ध 1.29 ।।

समीप मानना कठिन है, जैसाकि जैकोबी महोदय प्रतिपादित करते हैं। 'रामायण' (3.47.29 और 3.55.19) के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि लङ्का चारों ओर से समुद्र से घिरा हुआ एक विशाल द्वीप था। सम्पाति ने 'रामायण' में (4.58.20) में लङ्का की स्थिति विन्ध्य से 100 योजन दूर लगभग 800 मील बताई है, जो आधुनिक माप के अनुसार ठीक है[1]। भगवतशरण उपाध्याय ने लङ्का की स्थिति का मध्य भारत में खण्डन करके इसको समुद्रपारीय द्वीप प्रतिपादित किया है[2]।

प्राचीन वर्णन स्पष्ट रूप से प्रतिपादित करते हैं कि रामेश्वरम् से समुद्र को पार करके लङ्का एक द्वीप है। कालिदास ने स्पष्ट रूप से लङ्का को सिंहल बता कर द्वीप कहा है[3]। मुरारि वर्णन करते हैं कि पुष्पक विमान पर बैठकर लङ्का से प्रस्थान करते हुये राम ने सुवेल पर्वत से यात्रा प्रारम्भ की थी। समुद्र पार करने पर सेतुबन्ध दृष्टिगोचर हुआ और उसके बाद समुद्रतट आया। यह सेतुबन्ध लङ्का और भारत को जोड़ता है[4]।

प्राचीन साहित्य में लङ्का की गणना दक्षिण के जनपदों में की गई है। लङ्का, ताम्रपर्णी और मलयाचल दक्षिण के प्रसिद्ध भौगोलिक अञ्चल थे[5]। लङ्का की स्थापना के सम्बन्ध में राजशेखर ने कहा है कि गरुड ने मेरु पर्वत से जम्बू वृक्ष की एक शाखा लाकर लङ्का बसाई थी[6]।

लङ्का और सिंहल को सामान्यतः एक मानने पर भी किन्हीं वर्णनों में इनकी पृथक् सत्ता भी अभिव्यक्त होती है। राजशेखर एक वर्णन में लङ्का को सिंहल के उत्तर में बताते हैं[7]। 'बालरामायण' में रावण के समक्ष सीता-स्वयंवर नाटक का अभिनय होने पर सिंहल का राजा भी वहां उपस्थित होता है। उसको धनुष उठाने में संकोच करते देख कर रावण कहता है—

'हे सिंहलपते ! तुम संकोच क्यों करते हो। संकोच करने में वीरव्रत का निर्वाह नहीं होता[8]।

यदि राजशेखर रावण को सिंहलपति मानते तो वे इस प्रसङ्ग का इस प्रकार वर्णन नहीं करते। यहां उन्होंने रावण को लङ्कापति कहा है।

---

1. डेज्योएइ पृ० 164–165 ॥ 2. काभा भाग–1 पृ० 121 ॥
3. रघु 12.42, 13.22, 6.62 ॥ 4. अन पृ० 320–325 ॥
5. कर्पू 1.17 ॥ 6. बारा पृ० 641 ॥ 7. सिंहलानुत्तरेण लङ्काम्।
बारा पृ० 72 ॥
8. सिंहलपते ! किमिदं सन्दिह्यते। न च सन्देहदेहो वीरव्रतनिर्वाहकः
बारा पृ० 141 ॥

'बालरामायण' में जहां राम का लङ्का से लौटने का वर्णन है, वहां कवि ने समुद्र पार करके सिंहल द्वीप दिखाया है। इसमें रोहिण पर्वत है, जहां मणियां मिलती हैं[1]। रोहिणगिरि की तलहटी में अगस्त्य का आश्रम है[2]। यहां उत्तम मोती प्राप्त होते हैं[3]। इस प्रकार का वर्णन मुरारि ने किया है। अयोध्या की ओर जाता हुआ राम का विमान चन्द्रलोक से लौट कर समुद्रतटवर्ती मरुभूमि पर आता है। यहां रोहिणगिरी पर अगस्त्य का दूसरा आश्रम है। उसके समीप ही सिंहल द्वीप है[4]।

वस्तुतः सिंहलद्वीप के वर्णन में इतनी अस्पष्टता है कि उसका ठीक-2 स्थितिकरण सम्भव नहीं है। प्राचीन परम्पराओं में लङ्का और सिंहल दोनों को एक ही स्वीकार किया गया था। वर्तमान समय में भी उनकी पहचान आधुनिक सीलोन से की जाती है।

बौद्ध साहित्य में सिंहल द्वीप का प्रचुर वर्णन है। यह भी आधुनिक सीलोन ही प्रतिपादित होता है। 'महावंश' और 'दीपवंश के अनुसार यहां अशोक के पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री संघमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये आये थे। उस युग के अवशेष अब भी लङ्का में हैं। लङ्का का विस्तार उत्तर-दक्षिण में 6°–10° अक्षांश और पूर्व–पश्चिम में 79°45–82° देशान्तर है। प्राचीन समय में इसकी राजधानी अनुराधापुर थी, जो उत्तर में मध्यवर्ती मैदानी भाग में है।

वर्तमान समय में अनेक समालोचक, जिनमें डा० सांकलिया प्रमुख हैं, लङ्का को मध्य भारत, उड़ीसा आदि स्थानों में सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु वे कोई सबल प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके हैं।

49. लम्पाक–

'बालरामायण' में लम्पाक जनपद का उल्लेख हुआ है। इस प्रदेश की नारियाँ हेमन्त ऋतु में केशों का विशेष संस्कार करती थीं[5]। 'काव्यमीमांसा' में इस जनपद को उत्तरवर्ती कहा गया है[6]।

लम्पाक की पहचान काबुल नदी के उत्तर में लमगान से की गई है। यह जलालाबाद से 20 मील उत्तरपश्चिम में है। डे महोदय के अनुसार लम्पाक को भुरुण्ड भी कहते थे[7]।

---

1. बारा 10.48 ॥ 2. वही पृ० 667 ॥ 3. वही 10.59 ॥
4. अन पृ० 363 ॥ 5. बारा 5.35 ॥ 6. काव्य 93.20-22 ॥
7. ज्योडिएमि पृ0 113 ॥

50. लाट–

प्राचीन भारत में पश्चिमी समुद्र तट पर अवस्थित लाट जनपद ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। 'पादताडितक' के अनुसार उस युग में लाट के गुण्डे विख्यात थे, जो डिण्डिम कहलाते थे। वे पिशाचों से किसी भी प्रकार कम नहीं थे[1]। ये सबके बीच नंगे नहाते थे, स्वयं वस्त्र पछारते थे, बाल विखेरे रहते थे, बिना पैर धोये शय्या पर चढ़ जाते थे, जैसा-तैसा अभक्ष्य खाते थे, फटे वस्त्र पहनते थे, दूसरों पर मुसीबत में चोट करते थे और शेखी बघारा करते थे[2]।

सम्भवत: लाट जनपद में शिष्टता का बोध कम ही था। यहां की बोली में अक्खड़ता थी और ज् ज् ज् ज का उच्चारण अधिक था[3]। यहां के लोग अक्खड़ और वीर कहे गये हैं। वे दोनों भुजाओं को उत्तरीय में लपेट कर नीचे वस्त्र को कमर में रस्सी से बांध लेते थे[4]। यहां की स्त्रियां कानों में तालपत्र पहनती थीं और वेणी के छोर में मोतियों, मणियों तथा स्वर्ण के गुच्छे लटकाती थीं। इनके स्तन, बाहुमूल तथा वक्ष कार्पासिक नाम के वस्त्र से ढके रहते थे। नीवी के किनारे नितम्बों पर पड़े रहते थे[5]। श्यामिलक ने लाट जनपद पर गुप्त राजाओं की विजय का संकेत दिया है। उन्होंने लाट को जीत कर सब गुण्डों को पकड़ लिया था[6]।

राजशेखर ने भी लाट जनपद का विस्तृत विवरण दिया है। इस जनपद की उत्पत्ति का सम्बन्ध ब्रह्मा से है। सन्ध्या के लिये आचमन करते हुए ब्रह्मा के चुलुक से एक मुनि की उत्पत्ति हुई, जिसका वंशज लाट का राजा हुआ[7]।

राजशेखर के समय लाट जनपद में शिक्षा और सभ्यता का प्रसार हो गया होगा। कवि ने इसकी प्रशंसा विद्या केन्द्र के रूप में की है। यह देश संस्कृत और प्राकृत भाषाओं का केन्द्र था। साहित्य-रचना में इसने लाटी रीति को जन्म दिया[8]। कवि ने यहां के विलासों का उज्ज्वल वर्णन

---

1. लाटडिण्डिमा नामैते नातिभिन्नाः पिशाचेभ्यः। पाद पृ० 184॥
2. पाद श्लोक 43॥ 3. वही श्लोक 57॥ 4. वही श्लोक 58॥
5. पाद श्लोक 113॥ 6. पाद पृ० 182॥ 7. बारा पृ० 628॥
8. यद् योनिः किल संस्कृतस्य सदशां जिह्वासु यन्मोदते
यत्र श्रोत्रपथावतारिणि कटुर्भाषाक्षराणां रसः।
गद्यं चूर्णपदं पदं रतिपतेस्तत्प्राकृतं यद्वच–
स्तांल्लाटांल्ललिताङ्गि पश्य नुदती दृष्टेर्निमेषव्रतम्॥ बारा 10.78॥

किया है। इस देश में से बहती हुई नर्मदा में सुन्दरियां स्नान करती हैं[1]। सुन्दरियों के अधर मञ्जिष्ठा के समान लाल हैं और वे कटाक्षों से कामदेव को भी पीडित कर सकती हैं[2]। उनके ये विलास अति आकर्षक हैं[3]।

कनिंघम का कथन है कि नवीं शताब्दी ई० के आरम्भ में लाट जनपद का राजा कर्क था, जो लाटेश्वर कहलाता था। कनिंघम लाट और वलभी को एक ही मानते हैं[4]।

लाट जनपद की पहचान गुजरात के दक्षिणी भाग से की गई है। यह माही और ताप्ती नदियों का मध्यवर्ती है। इसमें सूरत, भड़ौंच और बड़ौदा जिले सम्मिलित हैं[5]।

51. वत्स–

प्राचीन साहित्य के लोकनायक उदयन के कारण वत्स जनपद ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण', 'स्वप्नवासवदत्तम्'. 'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली', 'तापसवत्सराज', वीणावासवदत्तम्' आदि नाटकों के नायक उदयन ही हैं। 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक में भी वत्सेश्वर का उल्लेख हुआ है[6]। अन्य काव्य साहित्य में भी वत्सराज का बहुधा उल्लेख है[7]।

'रामायण' और 'महाभारत' वत्स जनपद का संकेत देते हैं। वन जाते हुए राम गंगा पार करके धन-धान्य से समृद्ध वत्स जनपद में पहुँचे थे[8]। वत्स जनपद की राजधानी कौशाम्बी को पाण्डववंशी राजा निचक्षु ने बसाया था। 'महाभारत' में भीम द्वारा वत्स जनपद को जीतने का वर्णन है[9]।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी में 16 महाजनपदों में चार जनपद-कोशल, मगध, अवन्ती और वत्स विशेष शक्तिशाली थे। वत्स जनपद की स्थिति गंगा के दक्षिण में यमुना को भी पार करके अवन्ती तक विस्तृत थी। पूर्व में इसका विस्तार कौशल और काशी तक तथा पश्चिम में शूरसेन (मथुरा का समीपवर्ती क्षेत्र) तक था। वत्स जनपद की राजधानी कौशाम्बी प्रयाग से 32 मील पश्चिम में यमुना के तट पर थी। प्रयाग का क्षेत्र वत्स जनपद के अन्तर्गत था।

---

1. काव्य 68.11 ॥ 2. बारा 3.57 ॥ 3. विद्ध 1.29 ॥
4. ज्योए पृ० 267 ॥ 5. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 47 ॥ 6. को 1.11 ॥
7. प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे। पूर्वमेघ 42 ॥
8. रामायण अयोध्याकाण्ड 52.101 ॥ 9. मभा सभापर्व 30. 10 ॥

52. विदर्भ–

राजशेखर ने विदर्भ जनपद को महाराष्ट्रमण्डल का एक भाग कहा है[1]। मुरारि इसको महाराष्ट्रमण्डल का आभूषण कहते हैं तथा इसकी राजधानी कुण्डिनपुर बताते हैं[2]। राजशेखर एक अन्य स्थान पर कुन्तल में विदर्भनगर का उल्लेख करते हैं, परन्तु यह असंगत सा है। 'काव्यमीमांसा' में ही वे विदर्भ को स्वतन्त्र जनपद कह कर उसके वत्सगुल्म नगर का उल्लेख करते हैं[3]। सम्भवतः कुन्तल जनपद में अन्य कोई विदर्भनगर होगा, विदर्भ जनपद से जो भिन्न रहा होगा।

प्राचीन साहित्य में विदर्भ जनपद बहुत प्रसिद्ध है। इसके नामकरण के सम्बन्ध में कथा प्रसिद्ध है कि कभी किसी समय एक ऋषि के शाप से यहां दर्भ घास का उगना बन्द हो गया था, अतः इसको विदर्भ कहा गया[4]। विदर्भ जनपद का प्रणय-कथाओं और स्वयंवरों से भी बहुत सम्बन्ध रहा। नल-दमयन्ती-कथा की नायिका दमयन्ती विदर्भ की राजकुमारी थी। वह राजा भीम की पुत्री थी, जिसकी राजधानी कुण्डिनपुर थी।

कृष्ण की कथा में विदर्भ का महत्व है। कृष्ण की पटरानी रुक्मिणी का पिता भीष्मक विदर्भ का राजा था। कृष्ण ने रुक्मिणी का अपहरण किया था। कालिदास ने इन्दुमती-स्वयंवर द्वारा भी विदर्भ को प्रसिद्ध किया है। 'मालविकाग्निमित्र' नाटक में भी विदर्भ का उल्लेख हुआ है। यहां के राजा को अग्निमित्र के सैनिकों ने जीत कर[5] विदर्भ जनपद के दो भाग कर दिये थे। इनमें वरदा नदी के उत्तर भाग का शासक यज्ञसेन को और दक्षिण भाग का शासक माधवसेन को बनाया गया था[6]।

वैदर्भी रीति के कारण भी विदर्भ जनपद साहित्य में प्रसिद्ध हुआ। मुरारि का कथन है कि विदर्भ के कवि कैशिकी वृत्ति सम्पन्न वैदर्भी रीति में काव्य की रचना करते हैं[7]।

---

1. बारा 10.74 ॥ 2. अन पृ० 362 ॥ 3. काव्य 10.3 ॥
4. ऐना पृ० 854–855 ॥
5. वशीकृतः किल वीरसेन प्रमुखैः भर्तुः विजयदण्डैः विदर्भनाथः ।
   माका पृ० 121 ॥
6. तौ पृथग्वरदाकूले शिष्टामुत्तरदक्षिणे ।
   नक्तं दिवं विभज्योभौ शीतोष्णकिरणाविव ॥ माका 5.13 ॥
7. अन 7.102 ॥

विदर्भ की पहचान आधुनिक बरार से की जाती है। यह कुन्तल जनपद के उत्तर में कृष्णा नदी तक विस्तृत था। इसकी राजधानी कुण्डिनपुर थी। इस नगर को विदर्भ भी कह दिया जाता था। आधुनिक बिदर सम्भवतः यही विदर्भ था। नन्दलाल डे ने कुण्डिननगर की पहचान कौण्डवीर नगर से की है[1]। अवधविहारीलाल अवस्थी इसकी पहचान अमरावती जिले के चन्दौर ताल्लुके के कौण्डिन्यपुर से करते हैं, जो वर्धा के तट पर है[2]। डासन महोदय के अनुसार वर्तमान कुण्डनपुर ही कुण्डिननगर है, जो बरार में अमरावती से 40 मील है[3]। आप्टे का कथन है वर्धा नदी द्वारा दो भागों में विभक्त विदर्भ में उत्तरी विदर्भ की राजधानी अमरावती और दक्षिण विदर्भ की प्रतिष्ठान थी[4]।

53. विदेह–

भगवती सीता की जन्मभूमि के रूप में विदेह जनपद ने भारतीय साहित्य में और लोक में बहुत प्रसिद्धि पाई है। इस जनपद की राजधानी मिथिला थी[5]। पूरे विदेह जनपद को मिथिला भी कहा है[6]। ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में विदेह जनपद का बहुत वर्णन है। जनक को विदेहराज कहा गया है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण,[7] वायुपुराण,[8] और 'मत्स्यपुराण'[9] में विदेह को प्राच्य कहा गया है। राजशेखर ने विदेह को निमिवंशियों का निवास कहा है[10]। बुद्ध के समय यहां बज्जि गणराज्य था।

विदेह जनपद मगध के उत्तर-पूर्व में था। प्राचीन समय में इस जनपद में नैपाल के कुछ भाग, सीतामढी, सीताकुण्ड, तिरहुत का उत्तरी भाग और चम्पारन का उत्तरपश्चिमी भाग सम्मिलित रहे होंगे[11]।

54. शिवि–

श्यामिलक ने शिवि जनपद का उल्लेख किया है। शिवि कुल का एक विट उज्जयिनी में रहता था[12]।

---

1. ज्योडिएमि पृ० 106 ।। 2. प्राभास्व पृ०61 ।।
3. क्लासिकल डिक्शनरी पृ0 171 ।। 4. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 47 ।।
5. बारा 10.93 ।। 6. स्कन्दपुराण 2.7.6. 15 ।।
7. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 1.9.3. ।। 8. वायुपुराण 45.123 ।।
9. मत्स्यपुराण 114.45 ।। 10. बारा 1.23।।
11. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 47 ।। 12. पाद श्लोक 133 ।।

शिवि जनपद बहुत प्राचीन है । 'ऋग्वेद' में इसका उल्लेख है । यहां के राजा का सुदास से युद्ध हुआ था[1] । 'महाभारत' में शिवि-नरेश उशीनर की कथा है, जिसने कपोत के प्राणों की रक्षा के लिये अपने शरीर का मांस काट कर श्येन को दिया था । पतञ्जलि ने शिवियों की राजधानी शिविपुर बताई है[2] । सिकन्दर के आक्रमण के समय शिवि एक शक्तिशाली जनपद था, जिसके पास 40000 पैदल सेना थी ।

वर्तमान समय में शिवि जनपद की पहचान पश्चिमी पाकिस्तान के शेरकोट से की गई है । पंजाब का झंग क्षेत्र, जो इरावती (रावी) और चन्द्रभागा (चनाव) नदियों का मध्यवर्ती है, शिवि जनपद रहा होगा ।

55. शूरसेन--

बिज्जिका ने शूरसेन जनपद का उल्लेख किया है[3]। यहां की राजकुमारी विन्ध्य-वासिनी देवी की उपासना के लिये आई थी और उसका प्रणय मगध के राजकुमार कल्याणवर्मन से हुआ था । इससे पूर्व भास भी शूरसेन जनपद का उल्लेख करते हैं । अवन्तिराज चण्डप्रद्योत की कन्या वासवदत्ता से विवाह करने के इच्छुकों में शूरसेन जनपद का राजा भी था[4] । शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा थी[5] ।

शूरसेन जनपद का उल्लेख साहित्य में बहुत प्राचीन है । कहा जाता है कि शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर यह जनपद प्रसिद्ध हुआ । वसुदेव और कुन्ती के पिता का नाम शूरसेन था । इस आधार पर कुछ समालोचक इस जनपद के नामकरण को प्रतिपादित करते हैं । परन्तु यह असंगत है, क्योंकि शूरसेन जनपद का उल्लेख 'रामायण' में पहले हुआ है[6], जबकि वसुदेव और कुन्ती उत्तरवर्ती महाभारतकालीन पात्र हैं । कालिदास ने इन्दुमती-स्वयंवर के प्रसंग में शूरसेन के राजा का वर्णन किया है[7] । 'महाभारत' के अनुसार सहदेव ने इस जनपद को जीता था[8] ।

शूरसेन जनपद बहुत विस्तृत था । पूर्व में पञ्चाल तक, दक्षिण में चम्बल नदी तक, पश्चिम में मत्स्य तक और उत्तर में कुरु तक इसकी सीमायें विस्तीर्ण थीं । आधुनिक मथुरा नगरी ही इस जनपद की प्राचीन राजधानी

---

1. ऋग्वेद 7.10.7 ।। 2. अष्टाध्यायी 4. 2.104 पर महाभाष्य ।।
3. कौ पृ० 8 ॥ .4 प्रतिज्ञा 2.8 ।। 5. कौ पृ० 15 ।।
6. रामायण किष्किन्धाकाण्ड 43.11।। 7 रघु 6. 45 ।।
8. मभा सभापर्व 31. 2 ।।

मथुरा (मधुरा) थी। इसी देश के नाम से प्रसिद्ध शौरसेनी प्राकृत यहां की लोकसभा रही, जो प्राकृतों में सबसे प्रमुख है।

56. शूर्पारक—

'पादलाडितक' में शूर्पारक जनपद का उल्लेख है। यहां की स्त्रियों को शौर्पारिका कहा गया है। इस जनपद की एक वेश्या उज्जयिनी में रहती थी[1]। शूर्पारक जनपद का मुख्य नगर भी शूर्पारक कहलाता था

शूर्पारक का उल्लेख प्राचीन साहित्य में अनेक स्थानों पर है। महाभारत की एक कथा के अनुसार पहले यह प्रदेश समुद्र के अन्तर्गत था, परन्तु समुद्र ने इसको परशुराम के निवास के लिये खाली कर दिया और यह अपरान्त के अन्तर्गत रहा[2]।

बौद्ध काल में शूर्पारक का महत्व रहा। 'दिव्यावदान' में इसका उल्लेख है। श्रावस्ती के व्यापारी यहां अपना माल लेकर आते थे[3]। अशोक के समय में भी इसको महत्व प्राप्त था। उसके 14 शिलालेखों में से एक यहां प्राप्त हुआ है। अश्वघोष के अनुसार भगवान् बुद्ध ने शूर्पारक की यात्रा की थी[4]। 'वायुपुराण' में अपरान्त में स्थित शूर्पारक नगर का उल्लेख है[5]। सम्भवतः यह शूर्पारक नगर और 'पादताडितक' का शूर्पारक जनपद एक हो सकते हैं।

शूर्पारक की पहचान वर्तमान नालसोपारा से की गई है यह बम्बई के समीप थाना जिले के अन्तर्गत है।

57. समन्तपंचक—

'भट्टनारायण' ने समन्तपंचक क्षेत्र का उल्लेख किया है। युधिष्ठिर ने आदेश दिया कि गुप्तचर सारे समन्तपंचक में दुर्योधन की खोज करें[6]।

समन्तपंचक को पवित्र तीर्थस्थल माना गया था और यह सरस्वती के तट पर था। बलराम और कृष्ण ने इसकी यात्रा की थी। कुरुक्षेत्र तथा इसके चारों ओर का प्रदेश समन्तपंचक था। 'महाभारत' में एक स्थान पर कुरुक्षेत्र को ही समन्तपंचक कहा गया है[7]।

---

1. पादपृ० 193॥ 2. ततः शूर्पारकं देशं सागरस्तस्य निर्ममे। सहसा जामदग्न्यस्य सोऽपरान्तमहीतलम् ॥ मभा शान्तिपर्व 49. 66–67 ॥
3. दिव्यावदान 21.3–4 ॥ 4. बुद्धचरित 21.22 ॥ 5. वायुपुराण 45.128॥
6. वेणी पृ० 222 ॥ 7. मभा शल्यपर्व 53. 1–2 ॥

आप्टे के अनुसार वर्तमान कुरुक्षेत्र जिला और इसका समीपवर्ती प्रदेश ही समन्तपंचक था[1]।

58. सिन्धु–सौवीर–

सिन्धु–सौवीर जनपदों का उल्लेख एक साथ भी हुआ है और अलग अलग भी। सम्भवतः ये दोनों जनपद विभिन्न कालों में एक ही शासन के अन्तर्गत रहे होंगे[2]। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में सिन्धु देश के घोड़े और सौवीर के हाथी उपहार के रूप में दिये गये थे[3]। 'विष्णुपुराण' में भी इन दोनों जनपदों की एक साथ स्थिति का उल्लेख है[4]। रुद्रदामन् के शिलालेख में सिन्धु–सौवीर को एक साथ जीतने का वर्णन किया गया है[5]। सिन्धु जनपद की स्थिति सिन्धु नदी के दोनों ओर दक्षिण में समुद्र की सीमा तक थी तथा सौवीर इसके पूर्व में था।

संस्कृत नाटकों में सिन्धु जनपद का उल्लेख अनेक स्थानों में हुआ है। महाभारत काल में यहां का राजा जयद्रथ था। वह दुर्योधन का भाई था[6]। 'मुद्राराक्षस' में सिन्धु देश के राजा सिन्धुषेण का वर्णन है। वह मलयकेतु के प्रधान सहायक राजाओं में था[7]। इस स्थान के घोड़े प्राचीन समय में बहुत प्रसिद्ध थे[8]। इसी कारण अश्व का एक पर्याय सैन्धव भी प्रसिद्ध हुआ। यहां उपलब्ध नमक को भी सैन्धव कहा गया है, जो लवणों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

सिन्धु जनपद की पहचान वर्तमान सिन्ध प्रदेश से की जाती है। प्राचीन समय में इस जनपद का विस्तार बहुत था। यह सिन्धु नदी के दोनों तटों पर दक्षिण समुद्र से लेकर उत्तर में नमक की पहाड़ियों तक विस्तृत था। कालिदास ने वर्णन किया है कि सिन्धु प्रदेश के चट्टानी भागों में अज के अश्वों ने सैन्धव शिलाओं को चाटा था[9]।

---

1. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 1629 ॥ 2. भागवतपुराण 5. 10.1 ॥
3. सैन्धवानां सहस्राणि हयानां पञ्चविंशतिम्।
   अददात् सैन्धवो राजा हेममाल्यैरलङ्कृतान ॥
   सौवीरो हस्तिभिर्युक्तान् रथांश्च त्रिशतान् वरान्।
   जातरूपपरिष्कारान् मणिरत्नविभूषितान् ॥ सभा सभापर्व अध्याय 51 ॥
4. सौविराः सैन्धवाः हूणाः शाल्वाः कोशलवासिनः। विष्णुपुराण ॥
5. आनर्तसुराष्ट्रश्वभ्रभरूकच्छसिन्धुसौवीरकुकुरापरान्तनिषादीनां समग्राणाम्। रुद्रदामन् का शिलालेख ॥
6. वेणी 4.2, पंच 1.42 ॥ 7. मुद्रा 1.20 ॥ 8. बारा 1.14 ॥ 9. रघु 5.73 ॥

सौवीर जनपद का पृथक् उल्लेख भी अनेक स्थानों में हुआ है। भास के अनुसार सौवीर जनपद का राजा वैरन्त्यनगर के राजा का बहनोई था। सौवीरराज के पुत्र अविमारक और वैरन्त्यनगर के राजा कुन्तिभोज की पुत्री कुरङ्गी की प्रणयगाथा अविमारक नाटक में है। सौवीरराज ने अपने पुत्र के लिये कुरङ्गी को मांगा था[1]। शापवश अविमारक विरूप हो गया, किन्तु कुरङ्गी के प्रति प्रणय के कारण वैरन्त्यनगर आ गया। यहां संयोगवश उसकी भेंट कुरङ्गी से हो गई और दोनों ने गुप्त रूप से विवाह कर लिया[2]। भास ने इस नाटक में सौवीर का वर्णन सिन्धु से पृथक् किया है, इससे अनुमान होता है कि सिन्धु-सौवीर कभी तो एक शासन के अन्तर्गत रहते होंगे और कभी अलग-अलग राजाओं के शासन में हो जाते होंगे।

सौवीर जनपद सिन्धु जनपद के पूर्व में था। इसके अन्तर्गत मुल्तान और झालावाड़ के क्षेत्र रहे होंगे। बी. सी. ला. के अनुसार सौवीर जनपद सिन्धु और वितस्ता के मध्य में था[3]। कनिंघम इसको खम्बात की खाड़ी के ऊपर मानते हैं[4]। विजयेन्द्रकुमार माथुर ने पश्चिमी समुद्र के पूर्व में गुजरात से मुल्तान तक के प्रदेश को सौवीर के अन्तर्गत माना है। ग्रीक लेखकों ने इस जनपद को सोफीर और ओफीर नाम से लिखा है। 'अग्निपुराण' में वर्णन है कि सौवीर राजा के मैत्रेय नाम के पुरोहित ने देविका के तट पर विष्णु का मन्दिर बनवाया था[5]। सम्भवतः मुलतान का प्रसिद्ध सूर्य मन्दिर वही है। इसमें विष्णु के साथ सूर्य की मूर्ति भी प्रतिष्ठित हुई।

59. सिंहल–

लङ्का द्वीप ही बौद्ध काल में सिंहल के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। 'महावंश' की एक कथा के अनुसार सिंहल के प्रथम भारतीय राजा की उत्पत्ति सिंह से हुई थी, अतः इस द्वीप का नाम सिंहल हुआ। सिंहल का वर्णन लंका के प्रसङ्ग में हो चुका है।

60. सुराष्ट्र–

राजशेखर ने सुराष्ट्र जनपद का उल्लेख किया है[6]। 'काव्यमीमांसा' में इसका विस्तृत वर्णन है। द्वारावती (द्वारकापुरी) इसी जनपद में है[7]।

---

1. अवि पृ० 21 ।। 2. वही पृ० 161 ।।
3. हिज्योएइ पृ० 296 ।। 4. ज्योए पृ० 569 ।।
5. सौवीरराजस्य पुरा मैत्रेयोऽभूत् पुरोहितः ।
   तेन चायतनं विष्णोः कारितं देविकातटे ।। अग्निपुराण 200.6 ।।
6. बारा 3.63 ।। 7. काव्य 88 19–24 ।।

सुराष्ट्र का उल्लेख प्राचीन साहित्य में प्रचुर है। यह मौर्यों के शासन में रहा था। यहां का प्रमुख नगर गिरिनार (जूनागढ़) है। 'पद्मपुराण' में सुराष्ट्र को गुजरात के अन्तर्गत कहा गया है[1]। परन्तु 'भागवतपुराण' इन दोनों को अलग बताता है[2]। 'महाभारत' में सहदेव द्वारा सुराष्ट्र को जीतने का वर्णन किया गया है[3]। गुप्तों के शासन में सुराष्ट्र उनके साम्राज्य के अन्तर्गत रहा था। यहां के निवासी उज्जयिनी में देखे जा सकते थे[4]। जूनागढ़ में स्कन्दगुप्त (455–467 ई0) के एक शिलालेख में सुराष्ट्र की सुदर्शन झील की मरम्मत का उल्लेख है[5]। रुद्रदामन् के गिरिनार के शिलालेख में सुराष्ट्र की विजय का वर्णन किया गया है[6]। सुराष्ट्र की पहचान वर्तमान काठियावाड़ से, जिसको अब सौराष्ट्र नाम दिया गया है, की जाती है।

---

1. पद्मपुराण 192.2 ॥ 2. भागवतपुराण 1.10.34, 1.15.39 ॥
3. महा सभापर्व 31.62 ॥ 4. पाद पृ॰ 152, 160 ॥
5. प्राभास्व पृ॰ 76 ॥
6. स्ववीर्यार्जितानामनुरक्तप्रकृतीनाम्... आनर्तसुराष्ट्रश्वभ्रभृगुकच्छ सिन्धुसौवीरकुकुरापरान्तनिषादीनाम् ।(गिरिनार के शिलालेख से)॥

पञ्चम अध्याय

भारतीय राज्य एवं विदेशी जनपद

संस्कृत नाटकों में कुछ ऐसे राज्यों के वर्णन हैं; जिनका सम्बन्ध कुछ विशिष्ट जातियों से है। ये जातियां अधिकांशतः वन्य हैं। इनमें कुछ अर्धदेवों के अन्तर्गत भी गिनी जा सकती हैं। इनका संक्षेप में वर्णन करना ज्ञानवर्धक होने के साथ ही रोचक भी होगा।

1. आभीर–

आभीर जनपद की गणना पश्चिमी भारत के जनपदों में कही गई है। आभीर जाति का निवास होने से यह जनपद आभीर कहलाया। यह गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत रहा था। यहां का राजकुमार मयूरदत्त उज्जयिनी में रहता था[1]।

'महाभारत' के अनुसार आभीर जनपद की स्थिति पश्चिमी राजस्थान निश्चित होती है[2]। गुजरात के दक्षिणी-पूर्वी भाग को भी आभीर कहा गया है[3]। टालेमी और पेरीप्लस के अनुसार आभीर का सुराष्ट्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध था। टालेमी का कथन है कि सिन्धु नदी आभीर देश में बहती है। 'महाभारत' के एक वर्णन से प्रतीत होता है कि आभीर जाति के लोग सोमनाथ के निकट सरस्वती के तट पर रहते थे[4]। समुद्रगुप्त की इलाहाबाद प्रशस्ति से विदित होता है कि उसके समय आभीर जाति दक्षिण-पश्चिम भारत की प्रमुख शक्ति थी[5]।

2. कङ्क–

प्राचीन भारतीय साहित्य में कङ्क जाति का उल्लेख विदेशी आक्रमणकारियों के रूप में हुआ है। इस जाति का मूल स्थान स्रुघ्न प्रदेश (वर्तमान

---

1. पाद पृ० 159 ॥ 2. मभा 9.37.1 ॥ 3. ऐना पृ० 66 ॥
4. मभा सभापर्व अध्याय 31 ॥ 5. पकाभा पृ० 144 ॥

सोगडियाना) कहा गया है। इसमें वर्तमान अफगानिस्तान का उत्तरी भाग और उससे लगा हुआ रूस का दक्षिणी भाग सम्मिलित थे। 'भागवतपुराण' में आर्येतर जातियों में कङ्कों का नाम भी आता है[1]। 'पादताडितक' में वर्णन है कि सार्वभौमनगर (उज्जयिनी) में कङ्क जाति का काङ्कायन एक चिकित्सक, हरिश्चन्द्र नाम का निवास करता था[2]।

3. कारस्कर--

कारस्कर जाति का उल्लेख महाभारतकार ने विन्ध्य तथा दक्षिणी भारत की अनेक आर्येतर जातियों के मध्य किया है[3]। कारस्करों को आर्य जाति से बहिष्कृत समझा गया था। 'बोधायन धर्मसूत्र' के अनुसार ब्राह्मणों के लिए इनके घर जाना वर्जित था। इनके साथ यदि सम्पर्क हो भी जावे तो शुद्धिसंस्कार करना चाहिए[4]। नन्दलाल डे के अनुसार मैसूर राज्य (कर्नाटक-प्रदेश) के दक्षिण कनारा का कारकल ही प्राचीन कारस्कर कहलाता था। यह भूडबद्री से 10 मील दूर जैनियों का एक प्रसिद्ध तीर्थ है। शकुन्तलाराव शास्त्री का मत है कि कारस्कर जाति पञ्जाब से आई थी और मद्रजाति का एक अंश थी[5]। 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक में कारस्कर जाति का उल्लेख हुआ है[6]। मगधराज सुन्दरवर्मा का दत्तक पुत्र चण्डसेन कारस्कर जाति का था।

4. किन्नर--

किन्नर जाति का उल्लेख गानविद्या में प्रवीण जनों के रूप में उपलब्ध होता है। कण्ठ के माधुर्य की किन्नरों से उपमा दी जाती थी[7]। भवभूति ने गन्धमादन पर्वत पर किन्नरों का उल्लेख किया है। राम के अयोध्या लौटते समय अलकेश्वर के आदेश से किन्नरों का एक युगल उनकी स्तुति करने आया था[8]।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि किन्नर जाति हिमालय के उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में निवास करती थी। यह सङ्गीत में कुशल थी। यक्षों का राजा जिसकी राजधानी अलका थी, इनका अधिपति था। अमरकोश में कुबेर को किन्नरेश्वर कहा गया है[9]। किम्पुरुष पर्वत (हेमकूट) और गन्धमादन इनका

---

1. भागवतपुराण 2.4.18 ॥ 2. पाद पृ० 179 ॥
3. सभा कर्णपर्व 44.43 ॥ 4. बोधायन धर्मसूत्र 1.1.32 ॥
5. शकुन्तला राव द्वारा सम्पादित कौमुदीमहोत्सव 1952 का इन्ट्रोडक्शन-पृ० 4 ॥ 6. कौ 4.6 ॥ 7. देवी पृ० 963 ॥
8. महा 7.25-26 ॥ 9. अमरकोष 1.69 ॥

निवास था। वर्तमान समय में हिमाचल प्रदेश का उत्तरी भाग किन्नौर कहलाता है और यहां के निवासी किन्नर हैं। इनकी बोली किन्नरी कहलाती थी। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार तिब्बत की सींमा पर सतलज की ऊपरी घाटी का 70 मील लम्बा और लगभग इतना ही चौड़ा प्रायः 3000 वर्ग मील का क्षेत्र किन्नर-प्रदेश है। पहले की रामपुर बुशहर रियासत इसी के अन्तर्गत थी[1]। प्रायः सभी समालोचक हिमाचल के वर्तमान किन्नौर को ही किन्नर-प्रदेश मानते हैं[2] परन्तु किन्नरों का सम्बन्ध प्राचीन साहित्य में हेमकूट और गन्धमादन से विशेष रूप से वर्णित है, जो वर्तमान गढ़वाल में स्थित है। इससे विदित होता है कि प्राचीन समय में यह किन्नर-प्रदेश उत्तरी गढवाल और उत्तरी हिमाचल-प्रदेश तक विस्तृत रहा होगा।

5. किरात–

प्राचीन भारतीय साहित्य में किरातों का बहुधा उल्लेख हुआ है। वर्णनों से प्रतीत होता है कि किरात वन्य जाति थी, जिसका निवास हिमालय तथा विन्ध्य दोनों पर्वतीय क्षेत्रों में रहा था। राजशेखर के अनुसार किरात लोग विन्ध्य क्षेत्र में रहते थे। वे शिकार करके अपनी जीविका का निर्वाह करते थे[3]। इनका वीरत्व प्रसिद्ध था और इनको सेनाओं में भरती किया जाता था। 'मुद्राराक्षस' के अनुसार किरातों की सेनाओं ने मलयकेतु के नेतृत्व में कुसुमपुर का घेरा डाला था[4]। 'पादताडितक' में किरातों के सार्वभौम नगर (उज्जयिनी) में रहने का उल्लेख मिलता है[5]। हर्ष ने वर्णन किया है कि किरातों को अन्तःपुर के सेवकों के रूप में नियुक्त किया जाता था[6]।

'महाभारत' के अनुसार किरात आर्येतर थे[7]। वे सम्भवतः हिमालय के दक्षिणी ढलानों पर निवास करते थे। इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या करते हुए अर्जुन को शिव और पार्वती ने किरात-किराती के रूप में दर्शन दिये थे।

अनेक समालोचकों ने किरातों को मंगोल जाति का माना है। वे आसाम से काश्मीर तक हिमालय की तराइयों में फैले हुये हैं[8]। आप्टे के

1. किन्नर देश में पृ० 1, 16, 347 ॥
2. भारत सावित्री पृ० 136, हिग जिल्द-2 पृ० 296 ॥
3. बारा पृ० 379 ॥ 4. मुद्रा पृ० 54 ॥
5. पाद श्लोक 24 ॥ 6. रत्ना 2. 3 ॥ 7. मभा शान्तिपर्व अध्याय 65 ॥
8. प्राभाभू पृष्ठ 40 पर शान्तिकुमार चाटुर्ज्या को उध्दृत, हिस पृ० 71, भारत की जनजातियां पृ० 46, 49 ॥

अनुसार भारत के पूर्वी क्षेत्र सिलहट और आसाम किरातों के मुख्य क्षेत्र थे[1]। 'महाभारत'[2] और पुराणों[3] में किरातों को पूर्वी क्षेत्रों का माना गया है। अथर्ववेद' में किरातों का उल्लेख हुआ है। इनको हिमालय के पूर्वी क्षेत्रों की उपत्यकाओं का माना गया है[4]। 'रघुवंश' में भी किरातों का उल्लेख ब्रह्मपुत्र की घाटी में है[5]।

6. खस–

प्राचीन भारत में खसों का बहुधा उल्लेख है। महाभारत युद्ध में खसों के भाग लेने का वर्णन मिलता है[6]। 'मार्कण्डेय पुराण'[7], 'भागवत–पुराण'[8] और 'राजतरङ्गिणी'[9] में भी इस जाति के तथा इसके स्थानों के वर्णन हैं। विशाखदत्त वर्णन करते हैं कि मलयकेतु की सेना में खस सैनिक भी थे[10]।

सामान्यतः खसों का प्रदेश मध्य हिमालय माना गया है। इसमें कुमायूं तथा पश्चिमी नेपाल आते हैं। आर. एस. पण्डित का कथन है कि खसों का मूल स्थान कुमायूँ का पर्वतीय क्षेत्र था। डी. सी. सरकार का मत है कि खसों का मूल स्थान काश्मीर के पर्वतीय क्षेत्र थे तथा वहां इस समय इन लोगों को खवक कहा जाता है[11]। वहीं से पूर्व की ओर बढ कर ये लोग कुमायूं और गढवाल में फैले होंगे। मध्य हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में अनेक उच्च जातियों के रक्त में खस रक्त की बात प्रतिपादित की गई है। अधिकांश रूप में वे क्षत्रिय हैं। कुछ ब्राह्मण भी खस रक्त से सम्बन्धित कहे जाते हैं।

यह भी कहा जाता है कि मध्य में मुस्लिम आक्रमणों से आक्रान्त होने पर भारत के कई राजवशों ने इस प्रदेश में आकर छोटी–छोटी रियासतें बना ली थीं। इनके साथ आने वाले सैनिक ही खस कहलाये।

7. गन्धर्व–

प्राचीन साहित्य में गन्धर्वों का विशेष उल्लेख है। गन्धर्वों के राज्य हिमालय–क्षेत्र में कहे गये हैं। इनका राजा चित्ररथ था, जो देवराज इन्द्र का विशेष पारिषद् था। 'कादम्बरी' गद्यकाव्य की नायिकायें महाश्वेता और

---

1. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 41 ।।
2. स किरातैश्च चीनैश्च वृतःप्राग्ज्योतिषोऽभवत् । महाभारत सभापर्व 26.9 ।।
3. पूर्वे किराताः यस्यान्ते । विष्णुपुराण 2.3.8 ।। 4. ऐना पृ॰ 290 ।।
5. रघु 4. 76 ।। 6. मभा द्रोणपर्व 121.42–43, उद्योगपर्व 160.103 ।।
7. मार्कण्डेयपुराण पृ॰ 345 ।। 8. भागवतपुराण 2. 4. 18 ।।
9. राजतरंङ्गिणी 1. 317 ।। 10. मुद्रा 3.12 ।। 11. न्योएमि पृ० 36 ।।

कादम्बरी गन्धर्व राजकुमारियां ही थीं। गन्धर्वों को गानविद्या में अति प्रवीण माना जाता था, अतः गानविद्या में प्रवीण व्यक्ति को लोग गन्धर्व भी कह देते थे।

गन्धर्वों को दिव्य शक्ति से सम्पन्न माना गया है। इनकी गणना अर्ध देवों में की गई थी। डा० रांगेय राघव का कथन है कि वह सोमपान करने वाली जाति थी, अतः आर्य इनसे सोम खरीदते थे[1]। गन्धर्व प्रदेश की स्थिति गन्धमादन और सुमेरु के क्षेत्र में कैलास के दक्षिण—पश्चिम में मानी गई है। बदरीनाथ से लेकर कैलास तक का क्षेत्र गन्धर्व प्रदेश कहा जा सकता है।

पुराणों के अनुसार गन्धर्व जाति इन्द्र के आधीन थी। उसने चित्ररथ को गन्धर्वों के राजा के पद पर अभिषिक्त करके अनेक दिव्य शक्तियों का स्वामी बनाया था[2]। विशिष्ट अवसरों पर वीरों की स्तुति करने के लिये गन्धर्व मैदानी क्षेत्रों में भी आते थे। दिव्य गन्धर्वों ने राम—सीता की स्तुति की थी[3]।

'रामायण' के कुछ वर्णनों के अनुसार गन्धर्व प्रदेश की स्थिति गान्धार जनपद के अन्तर्गत भी प्रतीत होती है। यह सिन्धु नदी के दोनों तटों पर विस्तृत था। केकय जनपद के राजा युधाजित के कहने से भरत ने गन्धर्व को पराजित किया था तदनन्तर उसने सिन्धु के पूर्व में तक्षशिला में अपने पुत्र तक्ष को और पश्चिम में पुष्कलावती (आधुनिक चारसड्डा) में पुष्कल को राजा बनाया था[4]। कालिदास ने भी संकेत दिया है कि गन्धर्वों का देश सिन्धु है[5]। इससे अनुमान होता है कि पाकिस्तान के वर्तमान रावलपिण्डी जिले के तक्ष शिला (टैक्सिला) से लेकर सिन्धु नदी को पार करके पेशावर जिले के चारसड्डा तक गन्धर्व प्रदेश विस्तृत था।

गन्धर्व प्रदेश की स्थिति यद्यपि इस प्रसंग में गान्धार प्रदेश के अन्तर्गत कही गई है, तथापि गानविद्या में प्रवीण अर्धदेव गन्धर्व जाति का निवास हिमालय में ही माना जाता है।

8. तुषार—

श्यामिलक ने सार्वभौमनगर (उज्जयिनी) में तुषार जाति के लोगों की उपस्थिति का उल्लेख किया है[6]। शकों के पश्चात् भारतवर्ष पर कुषाणों ने

1. प्राभापइ भूमिका पृ० ख ।।
2. भवतैव गन्धर्वराज्याधिपत्याभिषेककृतमहाप्रसादश्चित्ररथः । महा पृ . 173।।
3. आ पृ० 245 ।। 4. रामायण उत्तरकाण्ड 101. 11 ।।
5. रघु 15. 87--88 ।। 6. पाद श्लोक 24 ।।

आक्रमण किये थे। कुषाण सम्राट कनिष्क का नाम भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है, जो ईसा की प्रथम शताब्दी में हुए तथा जिनकी राजधानी पुष्पपुर थी। कुषाणों की ही एक शाखा तुषार हुई।

तुषारों का उल्लेख 'महाभारत' में हुआ है। इनका मूल पुरुष ऋषिक था। अर्जुन ने अपनी दिग्विजय यात्रा में ऋषिकों को जीता था[1]। 'विष्णु-धर्मोत्तरपुराण'[2] और 'गरुडपुराण'[3] में तुषारों की स्थिति पश्चिमोत्तर में कही गई है। 'महाभारत' के अनुसार यहां के घोड़े बहुत प्रसिद्ध थे[4]।

तुषार क्षेत्र की पहचान आधुनिक तुखारिस्तान (चीनी तुर्किस्तान–सिक्यांग) से की गई है, जो इनका मूल स्थान माना जाता है। इसकी सीमायें बैक्ट्रिया तक फैली हुई थीं। आक्सस नदी इसके मध्य में से बहती है। इस तथ्य के भी संकेत मिलते हैं कि तुषार लोग काश्मीर के उत्तर में मध्य एशिया में रहते थे[5]।

. दाशेर–

दाशेर जाति का भी प्राचीन साहित्य में उल्लेख हुआ है। इस जाति के लोग प्राय: मछली पकड़ने का कार्य करते थे। बिज्जिका ने वर्णन किया है कि कुलिन्दों, शबरों और दाशेरों की सहायता से कल्याणवर्मा ने अपने राज्य को पुन: प्राप्त किया था[6]।

बिज्जिका के कथन के अनुसार दाशेरों के गणराज्य की स्थिति वर्तमान मध्यप्रदेश के विन्ध्य क्षेत्र में रही होगी।

'पादताडितक' में जिन दाशेरकों का उल्लेख है, तथा जिनका वर्णन प्राचीन भारतीय जनपदों में किया गया है, वे बिज्जिका द्वारा वर्णित दाशेरों से भिन्न प्रतीत होते हैं। दाशेरक शक्तिशाली सभ्य लोग प्रतीत होते हैं, जबकि दाशेरों की गणना जन-जातियों में की जा सकती है।

10. निषाद–

भारतीय जन-जातियों में निषादों का प्रमुख स्थान था। इनका मुख्य कार्य नौका चलाना और यात्रियों को नदी के पार उतारना था[7]। वनों की ओर जाते हुए राम को निषादों के राजा गुह ने गंगा नदी के पार उतारा था[8]। शिकार करके भी ये लोग अपनी जीविका अर्जित करते थे। बाल्मीकि को

---

1. मभा सभापर्व 27.25–27 ॥ 2. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 1. 9. 8. ॥
3. गरुडपुराण 55.16 ॥ 4. मभा सभापर्व 51.30 ॥ 5. कहिवा पृ० 10॥
6. को पृ० 33 ॥ 7. उत्त 1.21 ॥ 8. बारा पृ० 369 ॥

'रामायण' की रचना करने की प्रेरणा उस समय मिली, जबकि एक निषाद ने क्रौंच पक्षी को बाण से बींध दिया या। इससे बाल्मीकि के हृदय में करुणा का भाव उत्पन्न हुआ था[1]।

'रामायण' के वर्णनों से प्रतीत होता है कि उस युग में निषादों का राज्य स्वकीय स्वतन्त्र रहा होगा। उनकी राजधानी शृङ्गवेरपुर थी। यह राज्य कोशल जनपद के दक्षिण-पश्चिम में अवस्थित था। कौशल राज्य से निकल कर राम निषाद राज्य में से होकर दक्षिण की ओर वनों में गये थे।

परन्तु 'महाभारत'से निषाद राज्य की स्थिति कुछ भिन्न प्रतीत होती है। यह राज्य सम्भवत: भारत के पश्चिमी प्रदेशों में, वर्तमान राजस्थान के उत्तरी क्षेत्र तथा हरियाणा के दक्षिण में रहा होगा। ये निषाद आर्य परम्पराओं से बाहर थे। सहदेव ने निषादों को जीता था[2]। सरस्वती नदी इस भूमि में होकर बहती थी, परन्तु निषादों के संसर्ग दोष से बचने के लिये वह भूमि के अन्दर प्रविष्ट हो गई[3]। रुद्रदामन् के गिरिनार अभिलेख (120ई०) में राज्य-विस्तार के अन्तर्गत पश्चिमी क्षेत्र में निषादों की भीं गणना की गई है[4]।

गुप्त काल में निषादों के स्वतन्त्र राज्य और नगर अवश्य रहे होंगे। 'पादताडितक में निषाद नगर का उल्लेख हुआ है[5]। परन्तु इस नगर की यथार्थ भौगोलिक स्थिति को जानना कठिन है। मैक्डानल का विचार है कि प्राचीन साहित्य में आर्येतरों को सामान्य रूप से निषाद कह दिया गया है[6]। वर्तमान समय में कोल, मुण्डा, भील आदि जातियां इन्हीं की सन्तान हैं। वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार आर्यों के साथ निषादों के मधुर सम्बन्ध थे और उनके निवास आर्यों की सीमाओं तक विस्तृत थे[7]।

---

1. मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।। रामायण बालकाण्ड प्रथम अध्याय
2. सभा समापर्व 31. 5 ।। 3. वही 130.4 ।।
4. स्ववीर्यार्जितानामनुरक्तप्रकृतीनां सुराष्ट्रश्वभ्रभरूकच्छसिन्धुसौवीरकुकुरापरान्तनिषादादीनाम्...... ।। 5. पाद श्लोक 124 ।।
6. The word seems to demote not so much a particular tribe, but to be the general term for the non-Aryan tribes, who were not Aryan-controlled.
वैदिक इन्डेक्स, नेम्स एण्ड आब्जेक्ट्स - स निषादः।
7. भारत की मौलिक एकता–प्रयाग 1954 पृ० 127 ।।

11. यक्ष–

प्राचीन साहित्य में यक्षों के प्रचुर वर्णन हैं। इनका निवास कैलास पर्वत की तलहटियों में था। अलका राजधानी थी। यक्ष अति शक्तिशाली जाति रही होगी। अतः इनका पूजन अर्ध देवों के रूप में किया जाने लगा था। कुबेर इनका राजा था। यक्षों की राजधानी का वर्णन अलका के प्रसंग में किया गया है।

12. विद्याधर–

कवियों ने विद्याधरों का भी वर्णन किया है। साहित्य में इनको दिव्य शक्तियों का स्वामी माना गया है। इनका स्थान ऊंचे हिमालय शिखरों में रहा होगा। कालिदास ने विद्याधरों की प्रेम-गाथाओं का संकेत दिया है। वे अपनी प्रेयसियों के लिये भोज-पत्रों पर गेरू से प्रेमगाथायें लिखा करते थे[1]। विद्याधरों की अराध्य देवी विद्या थी[2]। यह जाति वैज्ञानिक रूप से भी समुन्नत थी। साहित्य में इनको विविध यंत्र-विद्याओं का ज्ञाता और विमानों का स्वामी माना गया है। भवभूति ने 'उत्तररामचरित' में वर्णन किया है कि एक विद्याधर युगल ने विमान में बैठ कर अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में लव-चन्द्रकेतु युद्ध को तुलनात्मक दृष्टि से देखा था[3]. 'नागानन्द' नाटक के नायक-नायिका को कवि ने विद्याधर जाति का बताया है[4]।

साहित्य में तथा विशेष रूप से नाटकों में विद्याधरों का निवास-स्थान ऊंचे हिमालय क्षेत्र कहे गये हैं। यहां मन्दाकिनी और भागीरथी का उद्गम क्षेत्र है तथा गन्धमादन आदि की शृंखलायें विद्यमान हैं। इस आधार पर उत्तरी गढवाल क्षेत्र को विद्याधर जाति का विशेष रूप से निवास कहा जा सकता है। इस क्षेत्र में भागीरथी, अलकनन्दा आदि नदियों का उल्लेख होने से विद्याधरों के राज्य की स्थिति उत्तर गढ़वाल मानना अधिक उपयुक्त है।

13. शबर और पुलिन्द–

संस्कृत नाटकों में शबर तथा पुलिन्द जातियों का बहुधा वर्णन है। ये लोग विन्ध्य पर्वत में रहते थे[5]। अनेक विद्वानों ने इनका निवास विन्ध्य क्षेत्र में प्रतिपादित किया है[6]। 'महाभारत' में इनकी गणना आर्येतरों में हुई है। इनके स्वतन्त्र प्रदेश थे। यद्यपि इन पर सार्वभौम आधिपत्य आर्य राजाओं का

---

1. अभिज्ञान सप्तम अंक ।। 2. कुमार 1.11 ।। 3 आ पृ० 219–220 ।। 4. उक्त अंक 6 का विष्कम्भक ।। 5. बारा 4.45 ।। 6. ज्योएमि पृ० 63 ।।

था, परन्तु आन्तरिक प्रशासन में वे स्वतन्त्र थे। आर्यों की राजनीति में भी वे भाग लेते थे। विज्जिका ने वर्णन किया है कि मगध के दक्षिण-पश्चिम सीमान्तों पर शबर तथा पुलिन्द जातियां निवास करती थीं। मगध पर चन्द्रसेन का अधिकार हो जाने पर कल्याणवर्मा के मन्त्री मन्त्रगुप्त ने अपने राजनीतिक षड्यन्त्रों में इनको सम्मिलित करके कल्याणवर्मा को सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था[1]।

शक्तिभद्र ने विन्ध्य क्षेत्र में रहने वाली शबर और पुलिन्द जातियों का उल्लेख किया है। वत्स और अवन्ती जनपदों के मध्यवर्ती वनों में ये जातियां रहती थीं। इसके युवक आर्य राजाओं की सेनाओं में भरती होते थे। उज्जयिनी की सेना में अनेक शबर थे, जिनके साथ युद्ध करने के लिये रूमण्वान् को तत्पर होना पड़ा[2]। उदयन को पकड़ने के लिये भेजे गये सैनिकों में शबरराज भी था। अनेक शबर इस युद्ध में मारे भी गये[3]।

शबरों और पुलिन्दों का विन्ध्य क्षेत्रों में निवास था, इसके उल्लेख अनेक स्थानों में हुए हैं। कालिदास के अनुसार, कुशावती को छोड़ कर जब अयोध्या में राजधानी पुनः स्थापित हुई तो विन्ध्य के पुलिन्द भेंटे लेकर कुश की सेवा में आये थे[4]। पुराणों[5] तथा अन्य स्थानों पर[6] भी इस तथ्य का प्रतिपादन किया गया है।

पुलिन्दों का वर्णन हिमालय क्षेत्रों में भी किया गया है। पर्जीटर ने पुलिन्दों की दो शाखाओं का कथन किया है-हिमालयन शाखा और दक्षिणी शाखा[7]। हिमालयन शाखा हिमालय के क्षेत्र में और दक्षिणी शाखा विन्ध्य क्षेत्र में निवास करती थी। 'महाभारत' में पाण्डवों की गन्धमादन यात्रा के सम्बन्ध में पुलिन्दों के देश का वर्णन आया है। सम्भवतः यह स्थान कैलास और तिब्बत के पठारों का है। अतः विद्वानों ने कल्पना की है कि पुलिन्द जाति मूल रूप में हिमालय क्षेत्र में रहती थी और इनकी एक शाखा दक्षिण की ओर चली गई।

कुछ विद्वानों ने पुलिन्द और कुलिन्द शब्दों को समानार्थक माना है। कुलिन्दों के सिक्के हमीरपुर, लुधियाना, सहारनपुर आदि स्थानों पर मिले

---

1. कौ पृ॰ 10 ॥ 2. वीणा पृ॰ 10 ॥ 3. वीणा पृ॰ 12 ॥
4. रघु 16.19-32 ॥ 5. मत्स्यपुराण 114.48 ॥
6. बृहत्कथाश्लोकसंग्रह 18.171, कादम्बरी—विन्ध्याटवी वर्णन ॥
7. मार्कण्डेयपुराण पृ॰ 316 ॥

है। इससे अनुमान हो सकता है कि उनका राज्य शिवालिक की तलहटियों और पर्वतीय क्षेत्र में विस्तृत था। 'महाभारत' में कुलिन्द जनपद का उल्लेख है, जो गङ्गा और मन्दाकिनी की घाटी में फैला था। पाण्डवों के हिमालय में आने पर कुलिन्दराज सुबाहू ने उनका स्वागत किया था। वर्तमान गढ़वाल का श्रीनगर क्षेत्र ही यह प्रदेश रहा होगा, यह अनुमान किया जाता है।

14. हूण -

प्राचीन साहित्य में हूणों का भी वर्णन आया है। संस्कृत नाटकों में भी इनके सङ्केत मिलते हैं। 'महाभारत' में हूणों के देश को पारसीकों के समीपवर्ती कहा गया है[1]। 'शक्तिसङ्गमतन्त्र' के अनुसार हूण देश काश्मीर के दक्षिण और मरुदेश के उत्तर में था[2]। 'हर्ष चरित' के वर्णनों के अनुसार हूणों का स्थान पश्चिमोत्तर भारत रहा था। कालिदास ने वर्णन किया है कि हूणों का राज्य आक्सस (वंक्षु) और उसकी सहायक नदियों के प्रदेश में था। यह प्रदेश बाह्लीक के उत्तर में था। इस प्रदेश में केशर-पुष्प प्रचुर होते थे। रघु द्वारा हूणों पर आक्रमण करने पर ये केसर-पुष्प अश्वों के केसरों (ग्रीवा के बालों) पर लग गये[3]।

हूणों ने प्राचीन काल में भारतवर्ष पर प्रबल आक्रमण किये थे। शकों के पश्चात् हूण ही प्रबल आक्रान्ता हुये थे। ऊपर के वर्णनों से यह अनुमान किया जा सकता है कि हूण पहले मध्य एशिया में रहते थे। यहां से वे धीरे-धीरे भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेश की ओर बढ़ते गये। भारत में अपने साम्राज्य की स्थापना करके वे यहीं बस गये। भारतीय धर्म और संस्कृति को स्वीकार करके वे यहाँ की चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था में सम्मिलित हो गये। विद्वानों का विचार है कि हूणों को राजपूतों के 36 वंशों में सम्मिलित कर लिया गया[4]। हूणों के प्रथम आक्रमण का उल्लेख समुद्रगुप्त के समय का मिलता है[5]।

विदेशी जनपद

संस्कृत नाटकों में विदेशी जनपदों का अधिक विस्तृत वर्णन तो नहीं है, तथापि कुछ जनपदों के सङ्केत अवश्य मिलते हैं। निम्न जनपदों के विवरण इन नाटकों में आये हैं—

---

1. कहिवा में पृ0 257 पर महाभारत से उद्धृत।
2. कामगिरेर्दक्ष भागे मरुदेशातथोत्तरे।
   हूणदेशः समाख्यातः हूणास्तत्र वसन्ति हिं। शक्तिसङ्गमतन्त्र 3.7.44 ।।
3. काभा भाग–1 पृ0 103।। 4. दी एज आफ इम्पीरियल गुप्ताज पृ046।।
5. ज्योएमि पृ0 10 ।।

1. चीन–

प्राचीन भारतीय साहित्य में चीन का वर्णन बहुत हुआ है। 'रामायण' के किष्किन्धा काण्ड (43.13) और 'महाभारत' के भीष्म पर्व (नवम-अध्याय) में चीन का वर्णन हुआ है। चीन के राजा भगदत्त ने दुर्योधन के पक्ष में युद्ध किया था[1]।

प्राचीन समय में भारत के चीन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध थे। चीन से व्यापारिक वस्तुयें भारतवर्ष में आती थीं। इनमें चीनी वस्त्र बहुत प्रसिद्ध थे। कालिदास ने चीनी वस्त्र से राजकीय पताकाओं को बनाये जाने का वर्णन किया है[2]। चीनांशुक मूल्यवान् थे और समृद्धजनों द्वारा पहने जाते थे। पार्वती ने विवाह के समय इसको पहना था[3]।

चीन के साथ आर्थिक सम्बन्धों के अतिरिक्त भारत के विशेष धार्मिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध भी रहे। भारत के धर्म प्रचारकों ने चीन में भारतीय धर्म का प्रसार किया था। चीन से अनेक तीर्थयात्री भारत में आये। इनमें ह्वेनसांग और फाहियान अधिक प्रसिद्ध हैं। चीन की स्थिति भारत के उत्तर में हिमालय के पार है तथा यह महादेश प्रशान्त महासागर तक विस्तृत है।

2. पारसीक–

पारसीक देश का उल्लेख संस्कृत नाटकों में अनेक स्थलों पर हुआ है। यहां के नागरिक उज्जयिनी में देखे जा सकते थे[4]। मलयकेतु के सहायक राजाओं में पारसीक देश का राजा मेघ भी था[5]।

'महाभारत' में यवन, चीन, कम्बोज, हूण आदि के साथ पारसीकों का भी उल्लेख हुआ है[6]। कालिदास ने रघु द्वारा इस देश को जीत लेने का वर्णन किया है[7]। यहां रघु जल-मार्ग से भी जा सकते थे, परन्तु वे स्थल-मार्ग से ही गये[8]।

प्राचीन वर्णनों से प्रतीत होता है कि विशेष रूप से आधुनिक फारस (ईरान) ही पारसीक देश रहा था। वर्तमान समय के बिलोचिस्तान और अफगानिस्तान के कुछ क्षेत्र भी उस युग में पारसीक देश में सम्मिलित रहे होंगे। पारसीक देश का उल्लेख भारत के सीमान्त जनपदों में हुआ है।

1. मभा सभापर्व 23.19 ।।
2. चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य । अभिज्ञा 1.30 ।।
3. कुमार 7.3 ।। 4. पाद श्लोक 24 ।। 5. मुद्रा 1.20 ।।
6. मभा सभापर्व नवम अध्याय ।। 7. रघु 4.60 ।। 7. रघु 5. 73 ।।

3. यवन–

'पादताडितक' में वर्णन है कि पारसीकों के साथ शक, यवन और तुषार भी उज्जयिनी में रहते थे[1]।

सम्भवतः प्राचीन समय में यूनानियों को यवन कहा गया है। ये उदीच्य प्रदेशों (उत्तर-पश्चिम) में बस गये थे। 'काव्यमीमांसा' में इनका वर्ण पाण्डु कहा गया है[2]। 'महाभारत' के अनुसार काम्बोज, शक, मद्र आदि के साथ यवनों ने भी महाभारत युद्ध में दुर्योधन का पक्ष लिया था[3]। पतञ्जलि यवनों को आर्यावर्त से निरवसित शूद्र कहते हैं[4]। 'महाभारत' में वर्णन है कि सहदेव ने यवनपुर नामक नगर को जीतकर उनसे कर को एकत्रित किया था[5]। यवनपुर की पहचान मिश्र के अलेक्जेन्ड्रिया नगर से की गई है[6]।

4. शक–

श्यामलिक ने वर्णन किया है कि शकों को सार्वभौम नगर (उज्जयिनी) में देखा जा सकता था[7]।

शकों का उल्लेख 'रामायण'[8], 'माहाभारत'[9] 'महाभाष्य और 'मनुस्मृति'[10] में हुआ है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार ई० पू० प्रथम शताब्दी में शकों ने आक्रमण करके भारत में साम्राज्य की स्थापना की थी। उस समय विक्रमादित्य ने इनको पराजित करके बाहर निकाल दिया था और इस देश को स्वतन्त्र किया था। शकों का अपना विशिष्ट जनपद था। राजशेखर ने इसका नाम शाकद्वीप बताया है[11]। प्राचीन विवरणों के अनुसार शक लोग शाकद्वीप के निवासी थे तथा यह द्वीप जम्बूद्वीप के साथ जुड़ा हुआ था[12]। सम्भवतः यही वह द्वीप है, जिसकी गणना सप्त द्वीपों में की गई है[13]।

---

1. पाद श्लोक 24 ।। 2. काव्य 97.7 ।। 3. कैहिइ भाग–1 पृ0 225 ।।
4. अष्टाध्यायी 2.4.10 पर महाभाष्य।।
5. अन्ताखीं चैव रोमां च यवनानां पुरं तथा ।
   दूतैरेव वशे चक्रे करं चैनानदापयत् । मभा सभापर्व 31.72 ॥
6. ऐना पृ0 770 ।। 7. पाद श्लोक 24 ।।
8. रामायण बालकाण्ड 54.21 ।। 9. मभा सभापर्व 32.17 ।।
10. मनु 10 44 ।। 11. काव्य 14.9–11 ।।
12. भविष्यपुराण अध्याय 149 ।। 13. कहिवा पृ0 261 ।।

शक जनपद या शाकद्वीप की पहचान वर्तमान सीथिया (सीस्तान) से की जाती है। यह प्रदेश सीर और आमू (वंक्षु) नदियों का मध्यवर्ती रहा होगा। वर्तमान समय में ईरान का उत्तर-पश्चिमी भाग ही प्राचीन समय में शाक द्वीप के अन्तर्गत माना जाता था[1]। शकों ने वंक्षु को पार करके भारत-वर्ष पर आक्रमण किये थे और अपने साम्राज्य की स्थापना की थी। परन्तु धीरे-धीरे उनका पूर्ण रूप से आर्यीकरण हो गया और वे यहां की जनता के अविभाज्य अङ्ग बन गये। पेरीप्लस के अनुसार शकों की राजधानी भिननगर थी तथा उनके जनपद का समुद्रतटवर्ती नगर बारबेरियस व्यापार का बड़ा केन्द्र था।

1. प्राचीन मुद्रा पृ0 74–75।।

षष्ठ अध्याय

नगर और ग्राम

कृषि प्रधान भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ग्रामों का समुचित विकास हुआ था। उत्तरवर्ती काल में आबादी तथा सभ्यता के विकास के साथ ही नगरों की रचना भी होने लगी। आर्थिक तथा राजनीतिक गतिविधियों के केन्द्रों के रूप में ये नगर जनता के बसने के लिये प्रमुख आकर्षण थे। संस्कृत नाटकों में अनेक नगरों और ग्रामों का वर्णन हुआ है। अकारादि वर्णक्रम के अनुसार इनका विवरण यहां दिया जा रहा है।

1. अमरावती–

पुराणों में अमरावती की प्रसिद्धि स्वर्ग की राजधानी के रूप में है। राजशेखर ने इस नगरी को नारी पात्र के रूप में प्रस्तुत किया है, जबकि रावण के मारे जाने पर उज्जयिनी, भोगवती और अमरावती नगरियां समवेदना प्रकट करने के लिये लंका के पास आती हैं[1]।

मध्ययुग में अमरावती आन्ध्र की राजधानी रही। यह कृष्णा नदी के तट पर स्थित है। यहां सातवाहन वंश के राजा सातकर्णी ने 180 ई० के लगभग अपनी राजधानी बनाई थी। कृष्णा नदी के मार्ग द्वारा समुद्र से यहां तक व्यापारिक पोतों के आवागमन की सुविधा होने से यह नगरी राजनीतिक केन्द्र के साथ व्यापारिक केन्द्र के रूप में भी बहुत प्रसिद्ध हुई।

'बालरामायण' में अमरावती को स्वर्ग की नगरी के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है और इसका पृथिवी की अमरावती से सम्बन्ध नहीं है।

2. अयोध्या–

अयोध्या का उल्लेख रघुवंशी राजाओं की राजधानी के रूप में हुआ है[2]। यह नगरी सरयू नदी के तट पर है[3]। भास ने वर्णन किया है कि

---

1. बारा अष्टम अंक का विष्कम्भक ॥ 2. बारा 1.23, कुन्द पृ. 35 ॥
3. सोपस्नेहतया वृक्षाणामभितः खल्वयोध्या भवितव्यम्। प्रति पृ० 72 ॥

इसके चारों ओर घने वृक्ष थे[1]। मुरारि ने इसको उत्तरकोशल की राजधानी कहा है[2]।

अयोध्या अति प्राचीन काल से बहुत प्रसिद्ध है। 'विष्णुधर्मोत्तरपुराण' में इस नगरी को देवों से अविजित, प्राकार और परिखा से परिवेष्टित, सरयू से शोभित, विशाल प्रासादों से अलंकृत और महापथों में विभक्त कहा गया है[3]। 'रामायण' में अयोध्या का विस्तृत वर्णन है। उसके अनुसार 12 योजन की परिधि में विस्तृत यह नगरी सरयू के तट पर अवस्थित थी[4]।

अयोध्या को साकेत भी कहा गया है[5]। ये दोनों नाम पर्यायवाची ही समझने चाहियें। कालिदास ने इस नगरी के अयोध्या[6] और साकेत[7] दोनों ही नाम दिये हैं प्रायः सभी हिन्दू और जैन ग्रन्थों में अयोध्या और साकेत पदों को पर्यायवाची समझा गया है।

सामान्यतः पर्यायवाची होते हुये भी अयोध्या और साकेत भिन्न अर्थों के द्योतक भी रहे होंगे। बौद्ध साहित्य में कहीं-कहीं साकेत को अयोध्या से भिन्न नगर माना गया है[8]। रीज डेविड्ज की मान्यता है कि बुद्ध के समय साकेत और अयोध्या अलग-अलग नगर थे[9]। सम्भवतः किसी समय पूरे जनपद को साकेत कहा जाता था और अयोध्या इसकी राजधानी थी। आयने अकबरी में साकेत को 148 कोस लम्बा और 36 कोस चौड़ा कहा गया है[10]। परन्तु संस्कृत साहित्य में ये दोनों नाम एक ही नगर के हैं। 'रामायण' में साकेत को दशरथ की राजधानी बताये जाने से यह स्पष्ट है। पतञ्जलि ने साकेत पर यवनों द्वारा घेरा डाले जाने का वर्णन किया है[11]।

यह सम्भव है कि प्राचीन समय में साकेत और अयोध्या एक ही विशाल नगर के दो भाग रहे हों। उनकी स्थिति इसी प्रकार की रही हो, जैसे कि इंग्लैण्ड में वर्तमान समय में लण्डन और वेस्टमिन्स्टर की है[12]

वर्तमान समय में अयोध्या नगरी उत्तरप्रदेश के फैजाबाद जिले में सरयू के उत्तरी तट पर अवस्थित है। यह एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। इसकी

---

1. बारा 10.96 ।। 2. अन 7. 147 ।। 3. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 1.13·1-2।।
4. रामायण अयोध्याकाण्ड 5. 7 ।।
5. को 5. 3 ।। 6. रघु 11. 93, 14. 10, 15 38, 16. 25 ।।
7. रघु 5. 21, 12. 79, 14. 13, 18. 36 ।।
8. संयुत्तनिकाय भाग 3 पृ० 140 ।। 9. ज्योग्राफी आफ अर्ली बुद्धिज्म पृ०5।।
10. आयने अकबरी का ग्लेडविन का अनुवाद 2. 32 ।।
11. अष्टाध्यायी 3. 2. 111 पर महाभाष्य ।। 12. कहिवा पृ० 250 ।।

गणना मोक्षदायक सात नगरियों में की गई है[1]। अयोध्या के पूर्व में सरयू के तट पर रामघाट और पश्चिम में गुप्तघाट है। इन दोनों घाटों के मध्य सभी पवित्र स्थान आ जाते हैं। यह नगर दो मील लम्बा और 0·75 मील चौड़ा है।

अयोध्या नगरी का राजनीतिक महत्व गुप्त काल तक बना रहा। मुस्लिम आक्रमणों और आधिपत्य ने इसको और भी कम कर दिया। इससे कुछ ही दूरी पर मुस्लिम शासकों ने फैजाबाद को राजधानी के रूप में बसाया। बाबर के एक सेनापति ने अयोध्या के राममन्दिर को तोड़ कर उस स्थान पर मसजिद बनवाई, जो अब भी विद्यमान है।

3. अरारालपुर–

'कुन्दमाला' नाटक में अरारालपुर नगर का उल्लेख हुआ है। दिङ्नाग इसी के निवासी थे[2]। परन्तु वर्तमान समय में इस नगर की स्थिति की पहचान नहीं हो सकी है।

4. अलका–

अलका नगरी का वर्णन यक्षों के अधिपति कुबेर की राजधानी के रूप में हुआ है। कालिदास के अनुसार यह नगरी मानसरोवर के समीप कैलास पर्वत की तलहटियों में बसी हुई थी। इसके समीप गंगा बहती है[3]। राजशेखर ने इसको कैलास पर अवस्थित कुबेर की राजधानी कहा है[4]। यह नगरी यथार्थ में थी या केवल कवियों की कल्पना है, यह कहना कठिन है। नाम-साम्य से इसकी स्थिति अलकनन्दा के तट पर, जो गंगा की प्रधान सहायक है, सम्भावित हो सकती है।

वर्तमान समय में अलकनन्दा का उद्गम स्थान अलकापुरी कहलाता है। यह स्थान बदरीनाथ से चल कर बसुधारा से लगभग सात मील दूर है और समुद्रतल से 12700 फीट ऊंचा है। यहां मनुष्यों की आबादी सम्भव

---

1. अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका
   पुरी द्वारावती चैव सप्तैका मोक्षदायिकाः ॥
2. कुन्द पृ० 5 ॥
3. तस्योत्सर्गे प्रणयिन इव ग्रस्तगंगादुकुलां
   न त्वंदृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ॥ पूर्वमेघ 66 ॥
4. बारा पृ० 627 ॥

नहीं है । अनेक समालोचक मन्दाकिनी की घाटी में गुप्तकाशी और सोन-प्रयाग के मध्य मन्दाकिनी के तट पर कालीमठ को अलका नगरी मानते हैं। यह भी प्रसिद्ध है कि यहीं पर कालिदास ने काली देवी की उपासना करके अनुपम कवि-प्रतिभा को प्राप्त किया था और अपना नाम कालिदास रखा था। उसी के कुछ ऊपर कविल्ठा ग्राम है, जो कालिदास का जन्म स्थान कहलाता है। यहां से केदारनाथ के हिममण्डित शिखर अति रमणीय दृष्टिगोचर होते हैं ।

5. अलिपुर-

विशाखदत्त ने अलिपुर का उल्लेख किया है । 'देवीचन्द्रगुप्तम्' के अनुसार शकराज के द्वारा गुप्तसाम्राज्य पर आक्रमण किये जाने की अवस्था में गुप्तसम्राट रामगुप्त का शिविर अलिपुर में था । इसको अरिपुर भी कहा गया है । जायसवाल के अनुसार अलिपुर की स्थिति वर्तमान कांगड़ा जिले में व्यास और जेहलम के मध्यवर्ती दोआबे में थी । इस समय यह स्थान अलिबल के नाम से प्रसिद्ध है[1] ।

6. आनन्दपुर-

श्यामिलक ने वर्णन किया है कि आनन्दपुर का निवासी भववर्मा उज्जयिनी में रहता है । वह प्रसिद्ध विट है[2] । साहित्य में आनन्दपुर को आनर्त-पुर भी कहा गया है । गुर्जरनरेश शीलादित्य के एक ताम्र-दानपट्ट (767 ई०) में आनन्दपुर का उल्लेख है[3] । वर्तमान समय में इसकी पहचान वड़नगर से की जाती है[4] ।

एक आनन्दपुर पंजाब में भी है । यहां सिखों के दसवें गुरु गोविन्द-सिंह ने धर्म की रक्षा के लिए खालसा पन्थ को प्रवर्तित किया था ।

7. इन्द्रप्रस्थ-

प्राचीन साहित्य में इन्द्रप्रस्थ पाण्डवों की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध है[5] । 'महाभारत' के अनुसार धृतराष्ट्र ने कुरु राज्य को दो भागों में बांट कर दक्षिणी भाग पाण्डवों को दे दिया था । उन्होंने हस्तिनापुर से दूर दक्षिण दिशा में यमुना के तट पर खाण्डवप्रस्थ स्थान पर अपनी राजधानी बनाई और इसका नाम इन्द्रप्रस्थ रखा । महाभारत युद्ध के बाद वे हस्तिनापुर चले आये और इन्द्रप्रस्थ का महत्व कम हो गया । 900 ई० पू० के लगभग गंगा की बाढ़ में हस्तिनापुर के बह जाने के बाद पाण्डवों द्वारा कौशाम्बी को राजधानी बनाये जाने पर इन्द्रप्रस्थ का महत्व और भी कम हो गया ।

---

1. शृंगारप्रकाश पृ० 870 ।। 2. पाद पृ० 160 ।। 3. ऐना पृ० 62 ।।
4. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 39 ।। 5. सुभ पृ० 29 ।।

प्राचीन समय में इन्द्रप्रस्थ की गणना पांच प्रसिद्ध प्रस्थों–इन्द्रप्रस्थ, यमप्रस्थ, वरुणप्रस्थ, कूर्मप्रस्थ और देवप्रस्थ में की गई थी[1]। डी. सी. सरकार का कथन है कि इन्द्रप्रस्थ केवल एक नगर ही नहीं था, अपितु पूरा जनपद भी था। यह उत्तर में मेरठ, दक्षिण में गोदावरी, पूर्व में मथुरा और पश्चिम में द्वारका तक विस्तृत था[2]। दिल्ली के पुराने किले को पाण्डवों का किला कहा जाता है।

8. उज्जयिनी–

प्राचीन समय में उज्जयिनी (उज्जैन) बहुत प्रसिद्ध और महान् नगरी थी। इसका राजनीतिक, धार्मिक और आर्थिक महत्व सर्वमान्य था। यह अवन्ती जनपद की राजधानी थी[3]। यहां का महाकाल मन्दिर बहुत मान्यता रखता है[4]। भारतीय लोककथाओं में यह नगरी अवन्तिकुमारी वासवदत्ता और सम्राट् विक्रमादित्य के कारण अति प्रसिद्ध है। उदयन के समय यहां का राजा चण्डप्रद्योत था[5], जिसकी पुत्री वासवदत्ता को उदयन हर कर ले गया था[6]। 'रत्नावली' में उल्लेख है कि वासवदत्ता ने सागरिका को कैद करके यह अफवाह फैला दी कि उसको उज्जयिनी भेज दिया गया है[7]। कालिदास के अनुसार उज्जयिनी की स्थिति विदिशा के दक्षिण में है तथा मार्ग में निर्विन्ध्या नदी पड़ती है[8]।

'विद्धसालभञ्जिका'[9] और 'बालरामायण'[10] में उज्जयिनी का वर्णन है। यह नगरी चर्मण्वती (चम्बल) की सहायक शिप्रा नदी से परिवेष्टित है। ई0 पू0 प्रथम शताब्दी में यह विक्रमादित्य की राजधानी रही। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने चतुर्थ शताब्दी में इसको अपनी दूसरी राजधानी बनाया था। इस सम्राट् ने मालव, शक, सुराष्ट् और अपरान्त प्रदेशों को जीत कर सुव्यवस्था के लिये उज्जयिनी को महत्व दिया था। सार्वभौम सम्राट् की राजधानी होने से यह नगरी भी सार्वभौमनगर कहलाती होगी। श्यामिलक ने इस नाम का प्रयोग किया है।[11]

कालिदास ने उज्जयिनी को विशाला कहा है[12]। उन्होंने इस नगरी के धार्मिक, राजनीतिक और व्यापारिक महत्व का विशद वर्णन किया है।

---

1. शक्तिसंगमतन्त्र 3. 8. 1 ।। 2. ज्योएमि पृ० 108 ।। 3. वीणा पृ० 13।।
4. अन पृ० 372, बारा पृ० 686 ।। 5. स्वप्न पृ० 14. प्रतिज्ञा पृ० 28 ।।
6. प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे । पूर्वमेघ 32 ।।
7. रत्ना पृ० 130 ।। 8. पूर्वमेघ 29–30 ।। 9. विद्ध पृ० 6 ।।
10. बारा 3 47 ।। 11. पाद पृ० 165 ।। 12. पूर्वमेघ 32 ।।

अत्यन्त समृद्ध यह नगरी मानो स्वर्ग का एक कान्तिमय खण्ड है। अवन्ती जनपद की राजधानी होने से इसको अवन्तिका भी कहा गया था। इसकी गणना सात मोक्षदायक पुरियों में की गई है।[1]

उज्जयिनी की प्रसिद्धि यहां के महाकाल के मन्दिर के कारण भी बहुत है। कालिदास ने इस मन्दिर में प्रतिदिन सायंकाल होने वाली पूजा का मनोरंजक चित्रण किया है। इसमें देवदासियों का नृत्य होता था[2]। महाकाल मन्दिर के शिवलिङ्ग की गणना द्वादश ज्योतिर्लिङ्गों में की जाती है। महाकाल का मन्दिर उज्जयिनी में अब भी विद्यमान है, परन्तु यह बहुत प्राचीन नहीं है। प्राचीन मन्दिर को दिल्ली के सुलतान इल्तुमिश ने ध्वस्त करवा दिया था मराठों के शासन काल में अनेक हिन्दू मन्दिरों का जीर्णोद्धार हुआ। 19 वीं शताब्दी में राणोजी सिन्धिया के मन्त्री रामचन्द्र बाबा ने इसका पुनः निर्माण कराया था।

उज्जयिनी की समृद्धि का कवियों ने उज्ज्वल वर्णन किया है। श्यामिलक इसको जम्बू द्वीप को तिलकभूत कहते हैं। यह विशाल सुन्दर नगरी अपने कला, विद्या, विज्ञान और विलासों के लिये प्रसिद्ध थी। गुरुजन यहां वेदों का अभ्यास कराते थे, विद्वान् शास्त्रार्थ करते थे, कविजन काव्यों और नाटकों की रचना करते थे, क्षत्रिय धनुषों पर टंकार करते थे, मार्गों पर हाथी-रथ-अश्व दौड़ते थे, दुकानों पर विविध द्वीपों से लाया गया सामान बिकता था, गीत-द्यूत-वाद्य-होता था, विट मजे करते थे, वाराङ्गनाओं को मार्गों पर घूमते देखा जा सकता था और घरों में पालतू पक्षियों के स्वर तथा कंगनों की ध्वनियां गूंजती थीं[3]।

अपने यौवन काल में उज्जयिनी व्यापार और राजनीति का केन्द्र रही। यहां के बाजारों में विविध बढ़िया और घटिया सामान बिकते थे और

---

1. अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
   पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥
2. अप्यन्यस्मिन् जलधर महाकालमासाद्य सद्यः। पूर्वमेघ 37॥
   पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतैः
   रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
   वैश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाग्रबिन्दून्
   आमोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान्॥ पूर्वमेघ 38॥
3. पाद श्लोक 24॥

खरीदने वालों की भीड़ के शोर से ये भरे रहते थे। एक महान् साम्राज्य का केन्द्र होने से विविध जनपदों के सामन्तों और नागरिकों ने यहां अपने मकान बनवा लिये थे। यहां शक, यवन, तुषार, पारसीक, मगध, किरात, बङ्ग महिषक, चोल, पाण्ड्य, केरल आदि जनपदों के निवासी स्थान-स्थान पर घूमते देखे जा सकते थे[1]।

उज्जयिनी व्यापार-उद्योग का केन्द्र थी। नाटककारों ने यहां सार्थवाहों के व्यापार का विस्तृत विवरण दिया है। चारुदत्त यहां का अपने समय का प्रसिद्ध सार्थवाह था। दूर-दूर से कलाकुशल व्यक्ति आजीविका प्राप्त करने के लिये इस नगरी में आते थे। मालिश की कला में कुशल संवाहक नाम के कलाकार के, जो कुसुमपुर का निवासी था, उज्जयिनी में आने का वर्णन शूद्रक ने किया है[2]।

प्राचीन उज्जयिनी की पहचान वर्तमान समय के उज्जैन से की जाती है। यह शिप्रा नदी के तट पर बसा है। यहां महाकाल का मन्दिर है, जहां अब भी सिंहस्थ का कुम्भ-मेला प्रति 12 वें वर्ष लगता है। अनेक प्राचीन अवशेष इस नगर में विद्यमान हैं।

9. कटाहनगर–

कौमुदीमहोत्सव में कटाहनगर का उल्लेख हुआ है। यहां एक विट के गढ़े में गिरने का वर्णन है[3]। इस नगर की पहचान ठीक नहीं हो सकी है। डी. सी. सरकार ने पाकिस्तान के जेहलम जिले में विद्यमान खेतस या कटास नामक तीर्थ का उल्लेख किया है। सम्भवतः यही कटाहनगर रहा होगा[4]।

10. काञ्ची–

काञ्ची का उल्लेख द्रविड जनपद की राजधानी के रूप में हुआ है[5]। प्राचीन समय में यह नगरी व्यापार का प्रसिद्ध केन्द्र थी और पल्लववंशी राजाओं की राजधानी थी[6]। बिज्जिका ने भी इसका उल्लेख किया है[7]। समुद्रगुप्त के प्रयागस्तम्भ में विष्णुगोप द्वारा काञ्ची पर शासन करने का वर्णन है।

काञ्ची पवित्र तीर्थ स्थान है। इसकी गणना सात मोक्षदायक पुरियों में की गई है[8]। यहां प्रभूत संख्या में मन्दिर बने थे। प्राचीन मन्दिर प्रायः

1. वही श्लोक 24 ।। 2. चा पृ० 60 ।। 3. कौ 5.3।। 4. ज्योएमि पृ० 108।।
5. अन पृ० 370–371 ।। 6. मत्त पृ० 10 ।।7. कौ 5. 3 ।।
8. अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैताः मोक्षदायिकाः ।।

पल्लवंशी राजाओं और विजयनगर के राजाओं द्वारा बनाये गये थे। इस नगरी के दो भाग किये गये थे–विष्णुकाञ्ची और शिवकाञ्ची। पहले भाग में वैष्णवों की और दूसरे भाग में शैवों की प्रधानता थी। राजशेखर ने वर्णन किया है कि काञ्ची के राजा की उत्पत्ति शिव के तीसरे नेत्र से हुई थी[1]।

'स्कन्दपुराण' में काञ्ची की महती महिमा का गान किया गया है। यहां कम्पा नामक स्थान पर आम्रवृक्ष तपस्या का उत्कृष्ट स्थान है। पार्वती ने यहीं तपस्या की थी[2]। इस स्थान पर शिव का प्रसिद्ध एकाम्रेश्वर मन्दिर है। इसको राजा कृष्णदेवराय ने बनवाया था। मन्दिर के एक विशाल शिवलिंग में 1008 छोटे शिवलिंग अंकित हैं। मन्दिर के पार विशाल आम्रवृक्ष है, जो हजारों वर्ष पुराना कहा जाता है। इसमें चार प्रकार के फल लगते हैं। विष्णुकाञ्ची में 100 मण्डपों वाला विशाल विष्णु-मन्दिर है। इसका सा शिल्प अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

11. कान्यकुब्ज–

प्राचीन समय में कान्यकुब्ज बहुत प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण नगर रहा था। हर्षवर्धन ने इसको राजधानी बनाया था। यह गंगा के तट पर काली नदी के संगम पर बसा था 'स्कन्दपुराण' में इसको महान् देश कहा गया है, जिस पर भोज का शासन[3] है। यह नगर पञ्चाल जनपद के अन्तर्गत रहा था[4] 'रामायण' के अनुसार कुश नामक राजा की कुब्जा कन्याओं के नाम पर यह नगर कान्यकुब्ज कहलाया। कुशनाभ के पुत्र अमावसु ने इसकी स्थापना की थी।

किसी समय इस नगर का नाम गाधिपुर था। यह विश्वामित्र की जन्मभूमि और राजधानी रहा था[5]। इसका नाम महोदय भी प्रसिद्ध रहा होगा[6]। 'रामायण' के अनुसार महोदयपुर की स्थापना कुशनाभ ने की थी[7]।

कान्यकुब्ज की विशेष समृद्धि हर्ष के समय हुई थी, जबकि उन्होंने अपने भाई राज्यवर्धन तथा बहनोई ग्रहवर्मा की हत्या होने के पश्चात् स्थाण्वीश्वर (थानेसर) को छोड़कर कान्यकुब्ज को राजधानी बनाया था। इससे पूर्व यह स्थान मौखरी वंश के ग्रहवर्मा की राजधानी था। चीनी यात्री ह्वेसांग ने इसका विशद वर्णन किया है।

1. बारा 3.53 ॥ 2. स्कंदपुराण 1. 3. 3. 59 ॥
3. कान्यकुब्जे महाक्षेत्रे राजा भोजेति विश्रुतः। स्कन्दपुराण 7.2.6.20 ॥
4. एपिग्राफिका इन्डिका भाग 4 पृ० 256 ॥
5. बारा 10.88॥ 6. बारा पृ० 1.691 ॥ 7. रामायण बालकाण्ड 32.6 ॥

राजशेखर ने कान्यकुब्ज की विशेष समृद्धि का वर्णन किया है। यह गंगा के तट पर अवस्थित है[1]। अन्य स्थानों के लोग यहां की परम्पराओं का अनुसरण करते हैं। यहां की रमणियां जैसे वस्त्र पहनती हैं, अलङ्कार धारण करती हैं, व्यवहार करती हैं, विलासचेष्टायें करती हैं, शृङ्गार-प्रसाधन करती हैं, सूक्तियों की रचना करती हैं, उन्हीं का अनुसरण अन्य स्थानों की रमणियां करती है[2]।

प्राचीन काल के इस कान्यकुब्ज की पहचान वर्तमान कन्नौज से की जाती है। यह फरूखाबाद जिले में गंगा के तट पर काली के संगम पर बसा है।

12. काम्पिल्य–

काम्पिल्य प्राचीन समय में एक प्रसिद्ध नगर था। भास ने इस नगर का उस समय उल्लेख किया है जबकि उदयन का विदूषक स्वामी का मन बहलाने के लिये काम्पिल्यनगर और वहां के राजा ब्रह्मदत्त की कहानी सुना रहा था[3]। 'महाभारत' में काम्पिल्य के राजा ब्रह्मदत्त और उसकी पूजनी नामक चिड़िया की कहानी कही गई है[4]। प्राचीन काल में इस नगर का महत्व काशी के समान था।

'महाभारत' के अनुसार काम्पिल्य दक्षिण पञ्चाल की राजधानी था। द्रुपद को जीतकर द्रोण ने पञ्चाल के दो भाग कर दिये–उत्तर पञ्चाल और और दक्षिण पञ्चाल। उत्तर पञ्चाल पर अपना अधिकार करके उसने दक्षिण पञ्चाल द्रुपद को दे दिया। द्रोण से हार कर दुःखी द्रुपद दक्षिण पञ्चाल में जाकर रहने लगे थे और काम्पिल्यनगर को इन्होंने राजधानी बनाया था[5]।

---

1. बारा 10.89 ॥
2. यो मार्गः परिधानकर्मणि गिरां यः सूक्तिमुद्राक्रमः
   भंगिर्या कबरीचयेषु रचनं यद् भूषणालीषु च।
   दृष्टं सुन्दरि कान्यकुब्जललनालोकैरिहान्यच्च यत्
   छिद्यन्ते सकलासु दिक्षु तरसा मत्कौतुकिन्य स्त्रियः ॥ बारा 10.90 ॥
3. राजा ब्रह्मदत्तः, नगरं काम्पिल्यमभिधीयताम्। स्वप्न पृ० 182 ॥
4. महाभारत शान्तिपर्व 139.5 ॥
5. माकन्दीमथ गंगायास्तीरे जनपदायुताम्।
   सोऽध्यवसद् दीनमनाः काम्पिल्यं च पुरोत्तमम् ॥
   दक्षिणांश्चापि पञ्चालान् तावच्चर्मण्वती नदी।
   द्रोणेन चैव द्रुपदः परिभूयाथ पालितः ॥ मभाआदिपर्व 137. 73–74 ॥

काम्पिल्य का उल्लेख बौद्धों और जैनियों के धार्मिक साहित्य में भी प्रचुर है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी इसको देखा था।

वर्तमान समय में काम्पिल्य की पहचान फर्रुखाबाद जिले में स्थित कम्पिला कस्बे से की जाती है। यहां एक अति प्राचीन टीला है, जो द्रुपदकोट कहलाता है। यहां बूढ़ी-गंगा के तट पर द्रौपदीकुण्ड है। प्राचीन विश्वासों के अनुसार इसी कुण्ड से धृष्टद्युम्न और द्रौपदी का जन्म हुआ था।

13. काशी–

देखें वाराणसी पृ० 114 पर।

14. किष्किन्धा–

दक्षिण में किष्किन्धा वानर जाति की राजधानी थी। रामायण काल में यहां का राजा बालि था, जो रावण का मित्र था। इसका भाई सुग्रीव भय के कारण ऋष्यमूक पर्वत पर रहता था। बालि के बाद सुग्रीव राजा हुआ। भास ने वर्णन किया है कि किष्किन्धा वन्य जातियों का निवास था[1]।

किष्किन्धा की पहचान हम्पी (विजयनगर) के समीप तुंगभद्रा नदी के तट पर अवस्थित अनागुण्डी ग्राम से की गई है। इसके दक्षिण-पश्चिम में दो मील की दूरी पर पम्पा सरोवर है[2]। यह स्थान बिलारी से 60 मील उत्तर में सपेट रेलवे स्टेशन से 2.5 मील है। इससे कुछ ही दूर ऋष्यमूक पर्वत है। इसको घेर कर तुंगभद्रा नदी बहती है। ऋष्यमूक पर्वत और तुंगभद्रा के घेरे को चक्रतीर्थ कहते हैं। यहाँ अनेक प्राचीन मन्दिर हैं।

15. कुण्डिननगर–

कुण्डिननगर महाराष्ट्र के विदर्भ जनपद की राजधानी थी[3]। इसको कुण्डिनपुर भी कहा गया था[4]। भारतीय साहित्य में नल-दमयन्ती, अज-इन्दुमती और कृष्णरुक्मिणी की कथाओं के साथ कुण्डिनपुर बहुत प्रसिद्ध हुआ, जो विदर्भ की राजधानी रहा था। निषध देश के राजा नल का वरण करने वाली दमयन्ती यहीं की राजकुमारी थी। कालिदास ने 'रघुवंश' में इन्दुमती के स्वयंवर के प्रसंग में विदर्भ की राजधानी कुण्डिननगर का वर्णन किया है। कृष्ण ने कुण्डिनपुर से ही रुक्मिणी का अपहरण किया था,

---

1. अस्ति किल किष्किन्धा नाम वनौकसां निवासः। प्रति पृ० 157 ॥
2. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ० 41 ॥ 3. अन पृ० 362, 7.101 ॥
4. माल. 9-10 ॥

जबकि उसके पिता भीष्मक अपनी पुत्री का विवाह शिशुपाल से करने की तैयारी कर रहे थे।

कुण्डिननगर का वर्तमान नाम कुण्डलपुर है। यह अमरावती से 80 मील दूर वर्धा नदी के तट पर बसा है। इसके समीप एक टीले पर अम्बिकादेवी का प्राचीन मन्दिर है। कहा जाता है कि यहीं से छिप कर रुक्मिणी ने कृष्ण के साथ पलायन किया था।

16. कुसुमपुर–

कुसुमपुर प्राचीन समय में अति प्रसिद्ध, महान् और समृद्धिशाली नगर था। शताब्दियों तक यह सारे भारतवर्ष की राजधानी रहा। इस नगर को पुष्पपुर और पाटलिपुत्र भी कहा जाता था। 'मुद्राराक्षस' में इसको अधिकतर कुसुमपुर कहा गया है, परन्तु कहीं कहीं पाटलिपुत्र नाम भी आया है[1]। कालिदास ने इन्दुमती के स्वयंवर के प्रसंग में मगध-नरेश की राजधानी पुष्पपुर कही है[2]। यहां मल्लिनाथ ने अपनी टीका में पुष्पपुर का अर्थ पाटलिपुत्र किया है[3]।

कुसुमपुर, मगध में गङ्गा और शोण नदियों के सङ्गम पर अवस्थित है। 'महाभाष्य' में इसको शोण के तट पर लम्बा बसा हुआ बताया गया था[4]। प्राचीन समय में कुसुमपुर महान साम्राज्यों की केन्द्रीय राजधानी रहा। मौर्य, शुङ्ग, मित्र और गुप्त साम्राज्यों का यह केन्द्र रहा। मेगास्थनीज ने इस नगर की समृद्धि का वर्णन किया है[5]। नाटकों में भी इस समृद्धि के वर्णन मिलते हैं।

'धूर्तविटसंवाद' में कवि कहता है कि नगर पद का अर्थ कुसुमपुर ही करना चाहिए[6]। इस नगर के भवन बहुत ऊंचे तथा अनेक मञ्जिलों के थे। बाजारों में भीड़ रहती थी तथा वहां सब प्रकार की सामग्रियां बिकती थीं[7]। 'उभयाभिसारिका' में कुसुमपुर के राजमार्गों, बाजारों, भवनों, वेश्यालयों, प्रमदाओं, राजकीय अधिकारियों, सवारियों और विविध विलासों का विस्तृत

---

1. मुद्रा पृ॰ 140॥ 2. रघु 6.24॥ 3. पुष्पपुराङ्गनानां पाटलिपुराङ्गनानाम्॥
4. अष्टाध्यायी 2.1.16 पर महाभाष्य॥ 5. एमेए पृ0 65-67॥
6. स्थाने खलु कुसुमपुरसदृशस्यान्यनगरसदृश नगरमित्यविशेषग्राहिणी पृथिव्यां-स्थितिः। धूर्त पृ0 69॥
7. धूर्त पृ0 69॥

विवरण है[1]। इस नगर की भूमि स्वर्ग थी। यहां के नागरिक उत्सव मनाते थे। सुगन्धियों का प्रयोग करते थे और विविध क्रीड़ाओं के सुखों का उपयोग करते थे[2]। पाटलिपुत्र की वेश्यायें उज्जयिनी में देखी जा सकती थीं[3]।

राजशेखर ने कुसुमपुर को विद्या का महान् केन्द्र बताया है। यहां महान् विद्वानों की परीक्षा होती थी। इस नगर में वर्ष, उपवर्ष, पाणिनि, पिङ्गल, व्याडि, वररुचि और पतञ्जलि जैसे विद्वानों की परीक्षा हुई थी[4]।

पाटलिपुत्र कलाकुशल लोगों का निवास था। यहां के कलाकार अन्य स्थानों पर भी आजीविका की खोज में जाते थे। उज्जयिनी में संवाहक नाम का कलाकुशल मालिश करने वाला कुतूहलवश पाटलिपुत्र से आया था[5]।

पाटलिपुत्र की स्थापना मगध के सम्राट अजातशत्रु ने की थी। पहले मगध की राजधानी राजगृह थी। गङ्गा के उत्तर में विद्यमान् वैशाली गण-राज्य के आक्रमणों से मगध की रक्षा के लिए 480 ई0पू0 में अजातशत्रु ने इसको बसाया था[6]। गङ्गा–शोण सङ्गम पर पाटलि नामक ग्राम था। पाटल के वृक्षों की प्रचुरता के कारण पाटलि नाम प्रसिद्ध हुआ। अजातशत्रु ने पहले यहां मिट्टी के दुर्ग का निर्माण किया। बाद में उसके पुत्र उदायिन् ने पाटलि-पुत्र नगर की नींव डाली। तदनन्तर यह मगध के राजाओं की राजधानी बना। कुसुमपुर मौर्य राजाओं की इतिहास प्रसिद्ध राजधानी रहा, जिसका वर्णन यूनानी राजदूत मेगास्थनीज ने किया है। ईसा की छठी शताब्दी तक इस नगर का अधिक महत्व रहा और यह विशाल साम्राज्य की राजधानी रही। फाहियान के समय यह नगर बहुत समृद्ध था, परन्तु ह्वेनसांग जब भारत आया था तो बहुत कुछ उजड़ चुका था।

आधुनिक पटना की पहचान प्राचीन पाटलिपुत्र या कुसुमपुर से की जाती है। प्राचीन विवरणों के अनुसार कुसुमपुर की स्थिति गङ्गा-शोण सङ्गम पर थी, किन्तु वर्तमान समय में यह नगर इस सङ्गम से 60–70 मील दूर हो गया है। इस अवधि में या तो नगर हट गया है या नदियों की धारा ने मार्ग बदल लिया है।

---

1. उभ पृ0 124-125॥ 2. वही श्लोक 6॥ 3. पाद पृ0 182॥

4. श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकारपरीक्षा। अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिङ्गला-विहव्याडिः। वररुचिपतञ्जली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः।
काव्य 55.21.23।

5. चा पृ0 60॥ 9. सुमङ्गलविलासिनी 2.5.40॥

कुसुमपुर और पाटलिपुत्र नामों के सम्बन्ध में समालोचकों ने विचार किया है। शकुन्तलाराव शास्त्री का कहना है कि पूरा विशाल नगर पाटलिपुत्र कहलाता था और उसका एक भाग कुसुमपुर था। नगर के मध्य भाग को, जहां राजप्रासाद आदि बने थे, कुसुमपुर कहते थे[1]।

17. कौशाम्बी–

कौशाम्बी का उल्लेख वत्स जनपद की राजधानी के रूप में हुआ है[2]। इसका राजा छठी शताब्दी ई0पू0 में उदयन था। उदयन से सम्बन्धित नाटकों में कौशाम्बी का विशद वर्णन है। नीले हाथी के कपट से उदयन के पकड़ लिये जाने पर उज्जयिनी के सेनानायक सालंकायन ने हंसक को आदेश दिया कि वह इस वृत्तान्त को कौशाम्बी में जाकर कहे[3]।

प्राचीन समय में कौशाम्बी समृद्ध नगर था। साकेत, श्रावस्ती, प्रतिष्ठान आदि स्थानों पर जाने के लिये यह व्यापारिक मार्गों का केन्द्र था[4]। पुराणों के अनुसार गङ्गा की बाढ़ में हस्तिनापुर के बह जाने पर पाण्डववंशी राजा निचक्षु (युधिष्ठिर से सातवी पीढ़ी) ने वत्स में आकर कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया[5]। इस वंश की 26वीं पीढ़ी में उदयन हुआ।

कौशाम्बी नगरी गङ्गा-यमुना सङ्गम से 32 मील ऊपर यमुना नदी के किनारे बसी थी। यहां अब भी उसके अवशेष के रूप में कोसम नाम का ग्राम है। इस स्थान पर इस समय काफी खुदाइयां हुई हैं। अनेक अवशेषों के साथ प्राचीन किले के खण्डहर भी मिले हैं।

18. चम्पा–

मुरारि ने चम्पा को गौड देश की राजधानी लिखा है[6]। राजशेखर इसको अङ्ग जनपद की राजधानी कहते हैं[7]। बौद्ध साहित्य में चम्पा को अङ्ग जनपद की राजधानी कहा गया है[8]। सम्भव है कि मुरारि के समय गौड और

---

1. कौ इन्ट्रोडक्शन पृ0 26 ॥ 2. प्रिय पृ0 8, कौ 1.11 ॥
3. सालङ्कायनेन नियुक्तः गच्छेमं वृत्तान्तं कौशाम्ब्या निवेदय।
प्रतिज्ञा पृ0 32 ॥
4. भरहुत इन्स्क्रिप्शन पृ0 12 ॥
5. अधिसीमकृष्णपुत्रो निचक्षुर्भविता नृपः। यो गङ्गयाऽवहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्यां निवत्स्यति। विष्णुपुराण 4.21.7–8 ॥
6. अन पृ0 380 ॥ 7. बाभा पृ0 23 ॥
8. दिव्यावदान पृ0 170, दिग्घनिकाय 1.111, 2.235 ॥

अङ्ग एक ही शासन के अन्तर्गत रहे हों, अतः उसने गौड की राजधानी चम्पा लिखी हो। इस नगरी को पृथुलास के पुत्र चम्प ने बसाया था[1]।

महाभारत काल में चम्पाकी प्रसिद्धि कर्ण के कारण हुई थी। दुर्योधन ने कर्ण को अङ्ग का राजा बनाया, जिसकी राजधानी चम्पा थी। जरासन्ध ने दुर्योधन के अनुरोध को स्वीकार करके चम्पा को कर्ण के लिये प्रदान कर दिया था[2]। चम्पापुरी के समीप ही एक पहाड़ी कर्णगढ कहलाती है। इससे इसका सम्बन्ध महाभारत के योद्धा कर्ण से प्रतिपादित होता है।

चम्पा की गणना जैन तीर्थों में भी है। जैन ग्रन्थ 'विविधतीर्थकल्प' के अनुसार 12 वें तीर्थंकर वासुपूज्य का जन्म चम्पा में हुआ था।

प्राचीन समय में चम्पा के नागरिकों ने अति साहस और वीरता के कार्य किये थे। ईसा की दूसरी शताब्दी में कुछ चम्पावासियों ने वर्तमान हिन्दचीन के अनाम प्रान्त में उपनिवेश बसाया था। इसको चम्पा नाम दिया गया था। यहां के भारतीय राजा श्रीमान् का उल्लेख चीन के इतिहास में हुआ है।

चम्पा की पहचान वर्तमान चम्पापुर से की गई है। यह भागलपुर नगर से चार मील पश्चिम में गंगा के तट पर स्थित है। यहां चम्पा नाम की नदी का गंगा में मिलन होता है।

19. द्वारका–

द्वारका या द्वारावती कृष्ण की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध हुई थी। भट्टनारायण[3] और कुलशेखर वर्मन्[4] ने इसका उल्लेख किया है। पुराणों में द्वारका की गणना सात मोक्ष दायक पुरियों में की गई है[5]।

'महाभारत' के अनुसार जरासन्ध के निरन्तर आक्रमणों से बचने के लिए कृष्ण ने मथुरा को छोड़ कर द्वारका को राजधानी बनाया था। इसका निर्माण समुद्र के मध्य एक द्वीप पर विश्वकर्मा ने किया था। सभापर्व के 38 वें अध्याय में इस नगरी की समृद्धि का वर्णन किया गया है।

वर्तमान समय में सुराष्ट्र में विद्यमान द्वारका को प्राचीन द्वारका के रूप में पहचाना जाता है, परन्तु अनेक समालोचकों के मत से यह सन्देहास्पद

1. विष्णुपुराण 4.18.20 ।।
2. मभा शान्तिपर्व 5.6–7 ।। 3. वेणी पृ॰ 248 ।। 4. सुभ पृ॰ 29 ।।
5. अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ।।

है कि यही प्राचीन द्वारका है। 'महाभारत' और पुराणों के अनुसार यादवों के अनन्तर समुद्र ने द्वारका को बहा दिया था[1]।

20. पद्मनगर–

पद्मनगर का उल्लेख 'पादताडितक' में हुआ है। उज्जयिनी के दयित-विष्णु नामक विट ने पद्मनगर में शत्रुओं के बाणों को सहन किया था[2]। यह नगर पूर्व–अवन्ती में था। वर्तमान समय में पौन्नार नगर से इसकी पहचान की जाती है।

पुराणों के अनुसार नासिक का एक नाम पद्मनगर है। इस नगर को सत्ययुग में पद्मनगर त्रेता में त्रिकण्टक, द्वापर में जनस्थान और कलियुग में नासिक कहा गया था[3]।

21. पद्मपुर–

भवभूति ने अपने को पद्मपुर का निवासी कहा है। यह दक्षिणापथ में था[4]। 'महावीरचरितम्' की भूमिका में राघवभट्ट ने इस नगर को शरावती के दक्षिण में बताया है[5]। प्राचीन टीकाकार जगद्धर और त्रिपुरारि का कथन है कि 'मालतीमाधव' रूपक की घटना का क्षेत्र पद्मपुर ही है।

आधुनिक समालोचकों ने पद्मपुर की स्थिति पर बहुत विचार किया है। जनरल कनिंघम का विचार है कि ग्वालियर के समीप सिन्धु के किनारे नरवर नामक स्थान का प्राचीन नाम पद्मावती था। यह पद्मपुर भी कहलाता था। मिराशी महोदय ने पद्मावती को माना तो ग्वालियर के क्षेत्र में ही है, परन्तु इसको भवभूति के निवास स्थान से भिन्न कहा है। उनका कथन है कि विदर्भ के भण्डारा जिले में आमगांव से 2. 5 मील दूर पद्मपुर ग्राम है। यही भवभूति का प्राचीन निवास पद्मपुर है। यहां से कुछ पुराने अवशेष प्राप्त हुये हैं[6]। इस ग्राम के निकट एक पहाड़ी को भवभूति की टोरिया कहा जाता है। यहां भवभूति की स्मृति में समारोह होते हैं।

---

1. कहिवा पृ० 255–256 ॥, विष्णुपुराण 5. 38· 9 ॥
2. पाद श्लोक 20 ॥
3. ऐना पृ० 524 ॥ 4. अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। उत्त पृ.10, महा पृ0 7–8, माल पृ0 10 ॥
5. राघवभट्टकृत महावीरचरितम् की टीका-उपरोक्त पर।
6. इहिक्वा खण्ड 11 पृ० 289 – 289 ॥

मिराशी की मान्यता का काणे और भण्डारकर ने विरोध किया है। काणे का कथन है कि विदर्भ में इस पद्मपुर के अतिरिक्त पाँच पद्मपुर और भी हैं। इन सभी स्थानों की खुदाई करके उनसे प्राप्त अवशेषों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर ही भवभूति का जन्मस्थान निश्चित किया जा सकता है[1]। भण्डारकर का विचार है कि भवभूमि का जन्मस्थान नागपुर क्षेत्र में चन्द्रपुरा या चांदा के समीप रहा होगा। यहीं पद्मपुर था। यहां अब भी कुछ कृष्णयजुर्वेदी तैत्तिरीय शाखाध्यायी मराठी ब्राह्मणों के कुल रहते हैं[2]।

22. पद्मावती–

'मालतीमाधव' की घटनाओं का क्षेत्र पद्मावती नगरी है। मालती का पिता भूरिवसु इस नगरी के राजा का मन्त्री था। यह नगरी वरदा-सिन्धु संगम पर थी। यहां एक शिवमन्दिर भी था। माधव मकरन्द से कहता है कि इस संगम में स्नान करके नगरी में प्रवेश करते हैं[3]।

आप्टे महोदय ने वर्तमान ग्वालियर क्षेत्र में नरवर (नलपुर) को पद्मावती माना है। उनका कथन है कि इसके समीप ही पारा (पार्वती) लूणा (लवणा) और मधुवर नदियां हैं, जिनको 'मालतीमाधव' में क्रमशः पारा, लवणा और मधुमती कहा गया है[4]। कुछ विद्वान् नरवर से 25 मील दूर पदमपंवाया ग्राम को पद्मावती कहते हैं[5]। प्राचीन समय में यह नाग राजाओं की राजधानी रही थी। नाग राजाओं के पहली से आठवीं शताब्दी तक के अवशेष यहां मिलते हैं। इनमें अनेक सिक्के हैं। एक विशाल खण्डहर है। 'विष्णुपुराण' में नाग राजाओं का वर्णन है[6]।

परन्तु 'मालतीमाधव' के वर्णनों से तुलना करने पर ये दोनों ही स्थान भवभूति की पद्मावती नगरी का द्योतन नहीं करते। इस रूपक के वर्णनों से प्रतीत होता है कि पद्मावती नगरी सुदूर केरल में रही होगी। इस नगरी के उद्यानों में सुपारी से लिपटी पान की लताओं का वर्णन है। यहां की

---

1. काणे द्वारा सम्पादित उत्तरामचरितम् का प्राक्कथन पृ० 7—8 ॥
2. भण्डारकर द्वारा सम्पादित मालतीमाधव का टिप्पणी खण्ड पृ० 3 ॥
3. माल पृ0 196 ॥ 4. आप्टेडि अपेन्डिक्स पृ0 44 ॥
5. ऐना पृ0 525 ॥
6. उत्साद्याखिलक्षत्रियजातिं नवनागा पद्मावत्यां नामपुर्यामनुगंगाप्रयागं गंगायाश्च मागधा गुप्ताश्च भोक्ष्यन्ति ॥

वधुओं के कपोल पान के पत्तों के समान होते हैं[1] । सुपारी के वृक्षों और पान की लताओं की उत्पत्ति केरल में प्रचुर है ।

23. पाटलिपुत्र–

देखें कुसुमपुर पृष्ठ 129 पर ।

24. प्रतिष्ठानपुर–

कालिदास ने वर्णन किया है कि पुरूरवा की राजधानी प्रतिष्ठानपुर थी । इस नगर में उसका राजभवन सर्वश्रेष्ठ था । यह नगर गंगा-यमुना के संगम पर अवस्थित था[2] ।

वर्तमान समय में प्रयाग से गंगा के दूसरे पार अवस्थित झूसी की पहचान प्रतिष्ठानपुर से की जाती है[3] । 'महाभारत' में प्रयाग के साथ ही प्रतिष्ठानपुर का वर्णन है[4] । सब तीर्थों की यात्रा को प्रतिष्ठानपुर में प्रतिष्ठित माना गया है[5] ।

25. प्रयाग–

अति प्राचीन काल से प्रयाग परम पवित्र तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध रहा है । उत्तरवर्ती काल में इसका विकास एक नगर के रूप में भी हुआ । इस नगर की स्थिति गंगा यमुना नदियों के मध्यवर्ती प्रदेश में संगम पर है । यहां श्याम नाम का वट वृक्ष श्रद्धालुओं की सभी मनोकामनाओं को पूरा करता है[6] । उत्तर से भागीरथी पार करके प्रयाग में प्रवेश किया जाता हैं और यहां से यमुना को पार करके दक्षिण की ओर जाने का मार्ग है[7] ।

भारतीय जन इस तीर्थ के प्रति अति श्रद्धालु रहे थे । यहां तपस्वियों के तपोवन थे । विश्वास था कि इस संगम में स्नान करने से सभी पापों का प्रक्षालन होता है और इसमें प्राणों का परित्याग करना महान् पुण्य है । 'तापसवत्सराज' नाटक में प्रयाग की प्रशंसा इस प्रकार है–

---

1. माल 6. 19 ।।
2. भागीरथ्याः यमुनासंगमविशेष पावनेषु सलिलेष्वात्मानमवलोकयत इव प्रतिष्ठानस्य शिखाभरणभूतं तस्य राजर्षेर्भवनम् । विक्र पृ0 177 ।।
3. ऐना पृ० 583, ज्योएमि पृ0 71, काभा भाग 1 पृ० 124 ।।
4. प्रयागं सप्रतिष्ठानम् । मभा वनपर्व 85. 76 ।।
5. एवमेषा महाभाग प्रतिष्ठाने प्रतिष्ठिता ।
तीर्थयात्रा महापुण्या सर्वपापप्रमोचिनी ।। मभा वनपर्व 85. 114 ।।
6. बारा 10.11 ।। 7. बारा पृ० 370 ।।

यहां गङ्गा-यमुना का सङ्गम हुआ है, मुनिजन अपनी अभीष्ट सिद्धियों को यहां प्राप्त करते हैं और पापी जन पवित्र होते हैं[1]। यह सङ्गम मन को परम शान्ति प्रदान करता है[2]। राजशेखर ने प्रयाग-सङ्गम की बहुत प्रशंसा की है। इसमें स्नान करने और प्राणों का परित्याग करने से मनुष्य देवता होकर इन्द्र का आसन प्राप्त करता है[3]।

प्रयाग की पुण्यता का अनेक कवियों ने वर्णन किया है। कालिदास के अनुसार गङ्गा-यमुना संगम के अनुपम सौन्दर्य का दर्शन करने से परम आनन्द प्राप्त होता है। यहा शरीर का त्याग करने से बिना तत्व-ज्ञान के भी मोक्ष प्राप्त होता है[4]। मुरारि ने भी इस प्रयाग के संगम की बहुत प्रशंसा की है। यह अन्तर्वेदी में स्थित है। यहां कृष्णवर्णा यमुना और गौरवर्णा भागीरथी का संगम है। यह संगम प्रयाग कहलाता है, जो सभी तीर्थों में श्रेष्ठ है[5]।

गंगा-यमुना का संगम वर्तमान समय में भी प्रयाग कहलाता है। यह हिन्दुओं का परम-पावन तीर्थ है। वर्तमान समय में यहां इलाहाबाद नाम का विशाल नगर बसा हुआ है। कथा प्रसिद्ध है कि पुरुवंशी राजा पुरुरवा के माता पिता इला और बुध थे। इला के नाम पर इस स्थान को इलावास कहा गया। मुस्लिम युग में इस नगर को राजनीतिक महत्व प्राप्त हुआ तथा अकबर ने इसका नाम इलाहाबाद कर दिया।

प्रयाग में प्रति 12वें वर्ष कुम्भ का मेला लगता है। माघ मास में गंगावास करने तथा स्नान करने का यहां अति पुण्य है।

भारतीय साहित्य तथा लोक में प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती इन तीन नदियों के संगम की कल्पना की गई है। अतः इसको त्रिवेणी भी

---

1. सख्यं गता यमुनया सह तत्र गंगा यत्राप्नुवन्ति मुनयः स्वसमीहितानि।
पापीयसां भवति यत्र परा विशुद्धिस्तं मामितो नयतमिच्छफलं प्रयागम्॥
ताप 3.56॥
2. इमं गंगायमुनयोश्चेतोनिर्वृतिकारणम्। पाद 6.5॥
3. यस्मिन्नापः सह परिगताः सूर्यपुत्रीपयोभिः
मन्दाकिन्याः कुमुदरूचयो मेचकेन्दीवराभैः
तीर्थे तस्मिन् मम विशदित्तं देवताभूय भूयः
स्वाङ्गत्यागात् स्पृहयति मनो बासवार्धासनाय॥ बारा 6.72॥
4. रघु 13.58॥ 5. अन 7.127॥

कहते हैं। वर्तमान समय में यहां गंगा-यमुना संगम ही दृष्टिगोचर होता है, सरस्वती दिखाई नहीं देती। पण्डों का कथन है कि सरस्वती नदी यहां पहले प्रकट रूप में थी, परन्तु अब गुप्त रूप में विद्यमान है। परन्तु इस तीर्थ में तीन नदियों केप्रमाण प्राचीन साहित्य में भी नहीं मिलते। 'रामायण'[1] 'महाभारत'[2] आदि में यहां गङ्गा-यमुना के सङ्गम का ही वर्णन है। कालिदास[3] तथा अन्य कवियों ने भी यहां गङ्गा-यमुना के सङ्गम का वर्णन किया है। सम्भवतः तीन नदियों की कल्पना बहुत बाद की है। इसका त्रिवेणी नाम गंगा-यमुना तथा गंगा-यमुना की सम्मिलित धारा, इस प्रकार तीन धाराओं के कारण भी हो सकता है।

26. भर्तृस्थान–

श्यामिलक ने शिवि जनपद के एक विट की सार्वभौमनगर में उपस्थिति वर्णित की है, जोभर्तृ स्थान में रहते हुए वृद्ध हो गया था[4]। वासुदेवशरण अग्रवाल का विचार है कि यहां कवि का भर्तृस्थान से अभिप्राय मुलतान से है। 'भर्तृ' का मूल अर्थ 'प्रभु' या 'स्वामी' होता है। सूर्य का एकपर्याय इन है, जिसका अर्थ स्वामी है, 'इन' का अर्थ 'सूर्य' होने से (इनकान्त—सूर्यकान्त) भर्तृ का अर्थ सूर्य भी किया जा सकता है। इस प्रकार भर्तृस्थान का अर्थ होगा—जहां सूर्य का मन्दिर है। प्राचीन समय में मुलतान का सूर्य-मन्दिर बहुत प्रसिद्ध था। शिवि जनपद के शिविपुर (शेरकोट) से मुलतान केवल 50 मील दूर है अतः यहां के विट का भर्तृस्थान (मुलतान) में रहना स्वाभाविक है[5]।

27. मथुरा–

'रामायण' के समंय से ही मथुरा एक प्रसिद्ध नगर रहा है। प्राचीन परम्पराओं के अनुसार इस नगर की स्थापना शत्रुघ्न ने लवणासुर को मार कर की थी। यमुना के तट पर मधुवन को काटकर बसाने के कारण इस नगर का नाम मधुरा (मथुरा) हुआ[6]।

यह भी प्रसिद्ध है कि लवणासुर के पिता का नाम मधु था, जो अपने पुत्र की मृत्यु को देखकर बहुत दुःखी हुआ। मधु के नाम पर इस नगरी को मधुरा

1. रामायण अयोध्याकाण्ड 54.2–22 ॥
2. महाभारत वनपर्व 84.35, 87.18, 95.4–5 ॥
3. रघु 13.54–57 ॥ 4. पाद श्लोक 132 ॥
5. शृंगारहाट पृ0 221
6. एन्शिएन्ट इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन्स : पर्जीटर पृ0 170 ॥

या मधुपुरी कहलाया। शत्रुघ्न ने लवणासुर को मारकर इस नगरी को पुनः बसाया।

मथुरा का अनेक नाटककारों ने उल्लेख किया है। भवभूति यहां के निवासियों को माधुर कहते हैं[1]। शक्तिभद्र ने इस नगर को मथुरा और यहां के राजा को माधुर कहा है[2]। 'कौमुदीमहोत्सव' की नायिका कीर्तिमती मथुरा की राजकुमारी थी। यह नगरी शूरसेन जनपद की राजधानी थी[3]।

'महाभारत' के वर्णनों के अनुसार शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा प्रसिद्ध नगरी थी। भगवान् कृष्ण की जन्म भूमि के रूप में भी इस नगरी ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की। अपने नाना शूरसेन का वध करके कंस ने इस राज्य पर अधिकार कर लिया था। तदनन्तर उसने अपनी बहन देवकी तथा बहनोई वसुदेव को कैद कर लिया। कंस का वध करने के लिए कृष्ण ने देवकी के गर्भ से जन्म लिया[4]। भास ने मथुरा के कारागर में कृष्ण के जन्म और वहां से उनके गोकुल ले जाये जाने का रोचक वर्णन किया है[5]। बाद में कृष्ण ने कंस का वध किया। परन्तु जरासन्ध के बार-बार के आक्रमणों के कारण उनको मथुरा छोड़कर द्वारका जाना पड़ा।

वर्तमान समय की मथुरा ही प्राचीन मथुरा है। यह दिल्ली से80मील दूर यमुना के तट पर बसी है भारतीय जीवन में इसका धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक सभी दृष्टियों से महत्व है। पुराणकारों ने इस नगरी की गणना सात मोक्ष दायक नगरियों में की है[6]। मथुरा पर अधिकार करने के लिए अनेक आक्रामकों ने आक्रमण किये थे। कुषाणों ने इसको अपनी राजधानी बनाया था और समुन्नत किया था। हूणों और मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इसको अनेक बार लूटा तथा नष्ट किया। मथुरा में कृष्ण-भूमि पर एक विशाल मन्दिर बना था। इसको तोड़कर औरङ्गजेब ने मसजिद बनवाई। यह आज भी विद्यमान् है। औरंगजेब ने इस नगर का नाम भी बदल कर इस्लामाबाद कर दिया था, किन्तु वह प्रचलित नहीं हो सका।

28. महोदयपुर–

कुलशेखर वर्मन् ने महोदयपुर का उल्लेख किया है। यह केरल की राजधानी रहा था। वर्तमान समय में इसकी पहचान तिरूवच्चिकल से की

---

1. उत्त पृ0 111 ।। 2. माधुरो राजा। वीणा पृ0 4 ॥
3. कौ पृ0 15 ।। 4. बारा 3.44 ॥ 5. बाच पृ0 7–10 ।।
6. अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका।
   पुरी द्वारावती चैव सप्तैता: मोक्षदायिका:।।

गई है[1]। पञ्चाल जनपद के कान्यकुब्ज को भी महोदयपुर कहा गया था[2], परन्तु कुलशेखर वर्मन् द्वारा वर्णित महोदयपुर की स्थिति केरल में ही है।

29. माहिष्मति–

माहिष्मति दक्षिण में अवन्ति में नर्मदा के तट पर अवस्थित थी[3]। यह हैहयवंशी राजा कार्तवीर्यार्जुन की राजधानी रही[4]। प्रसिद्ध है कि उसने अपनी हजार भुजाओं से नर्मदा के प्रवाह को रोक लिया था। मुरारि ने माहिष्मति को चेदिमण्डल की राजधानी कहा है। उस समय यहां कलचुरि वंश के राजा शासन करते थे[5]। राजशेखर के समय भी यह नगरी कलचुरि वंश के राजाओं की राजधानी रही[6]।

'महाभारत' काल में चेदिमण्डल की राजधानी के रूप में माहिष्मति प्रसिद्ध थी। यहां का राजा शिशुपाल था। सहदेव ने चेदिराज को पराजित किया था। कालिदास ने इन्दुमति-स्वयंवर के प्रसंग में नर्मदा के तट पर अवस्थित माहिष्मति नगरी और उसके राजा का मनोरम वर्णन किया है[7]। प्रसिद्ध है कि शंकराचार्य से शास्त्रार्थ करने वाले मण्डनमिश्र और उनकी पत्नी माहिष्मति के निवासी थे। इतिहास प्रसिद्ध अहिल्याबाई ने अपने जीवन के अन्तिम दिन माहिष्मती में ही विताये थे। उसने यहां अनेक मन्दिर और घाट बनवाये थे।

वर्तमान समय में नर्मदा के तट पर अवस्थित मानधरा या माहेश्वर नाम से प्रसिद्ध स्थान ही प्राचीन काल की माहिष्मती है। यह स्थान इन्दौर जिले में उज्जैन से लगभग 40मील दूर है तथा पश्चिम रेलवे के उज्जैन-खंडवा रेल मार्ग पर बड़वाहा स्टेशन से 35 मील है।

30. मिथिला–

भगवती सीता की जन्म-भूमि के रूप में मिथिला नगरी ने भारतीय जन-जीवन में बहुत प्रसिद्धि तथा गौरव प्राप्त किया है[8]। यह नगरी विदेह जनपद की राजधानी थी, जहां जनक राज्य करते थे। इसको जनकपुर भी कहते थे। साहित्य में विदेह जनपद को मिथिला और मिथिला को विदेह भी कह दिया गया है। राजशेखर ने मिथिला को निमिवंशियों की राजधानी कहा

1. तप का प्रिफेस पृ0 4 ।। 2. विष्णुधर्मोत्तरपुराण 9.30.2–3 ।।
3. पद्मपुराण स्वर्गखण्ड 3.25 ।। 4. बारा 3.34 ।।
5. अन पृ0 374 ।। 6. बारा 3.25 7. रघु 6.43 ।। 8. बारा 10.93 ।।

है[1]। पुराणों के अनुसार राजा निमि ने अपने जीवन काल में ही मोक्ष को प्राप्त कर लिया था, अतः वे विदेह के नाम से प्रसिद्ध हुये थे। उनके नाम पर इस जनपद का और नगरी का भी नाम विदेह प्रसिद्ध हो गया[2]। मुरारि ने राम के विमान को मिथिला के ऊपर होकर मथुरा पहुंचाया है[3]।

'रामायण', 'महाभारत', पुराणों तथा उपनिषदों में विदेह जनपद तथा यहां के राजा का नाम अनेक बार चर्चित हुआ है। भास के समय मिथिलाधीशों की गणना शक्तिशाली राजाओं में की जाती थी। मिथिला के राजा ने अवन्ती की राजकुमारी के साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा था, जिस पर प्रद्योत ने विचार भी किया था[4]।

वर्तमान समय में मिथिला नगरी पूर्वी नेपाल में तराई प्रदेश में है। इसको जनकपुर भी कहा जाता है।

31. राजगृह–

प्राचीन काल में मगध की राजधानी राजगृह थी। महाभारत-काल में यहां के राजा जरासन्ध को पाण्डवों के राजसूय यज्ञ में भीमसेन ने पराजित किया था। राजगृह को गिरिव्रज भी कहा जाता था। इस नगर की स्थापना चेदिराज वसु के पुत्र बृहद्रथ ने की थी। पांच पर्वतों से घिरा होने के कारण यह नगर बहुत सुरक्षित था। इसका कुछ विवरण मगध जनपद के प्रसंग में दिया जा चुका है।

'तापसवत्सराज' नाटक में राजगृह का उल्लेख हुआ है। मगध की राजकुमारी पद्मावती के साथ उदयन का विवाह कराने की यौगन्धरायण की योजना बनी थी। यहां उदयन को राजगृह की ओर जाते हुये दिखाया गया है[5]। भास ने 'स्वप्नवासदत्तम्' में मगध की राजधानी राजगृह का वर्णन किया है[6]। भारतीय राजनीतिक मानचित्र पर राजगृह का बहुत महत्व था, परन्तु पाटलिपुत्र के मगध की राजधानी बनाये जाने पर यह कम हो गया। नन्दों के समय में पाटलिपुत्र ही मगध की राजधानी हो गई।

32. लंका–

रावण की राजधानी के रूप में भारतीय साहित्य में लंका नगरी बहुत प्रसिद्ध है। इसका वर्णन लंका जनपद के प्रसंग में किया जा चुका है। प्रतीत

---

1. वही 1.23 ॥ .2 प्राभास्व पृ0 40 ॥ 3. अन 7.123 ॥
4. प्रतिज्ञा 2. 8 ॥ 5. ताप पृ० 60 ॥ 6. स्वप्न पृ० 14 ॥

होता है कि लंका द्वीप या जनपद की राजधानी का नाम भी लंका ही रहा होगा।

33. लावणक–

प्राचीन लोककथाओं में लावणक का नाम बहुत प्रसिद्ध है। यह वत्स जनपद में स्थित था। बहाना करके यौगन्धरायण अपने राजा उदयन को वन विहार के लिये इस ग्राम में ले आया। एक दिन उदयन के शिकार खेलने के लिये दूर चले जाने पर उसने शिविर में आग लगा दी और प्रसिद्ध कर दिया कि वासवदत्ता इसमें जल गई। इससे वह उदयन को पद्मावती के साथ विवाह करने के लिये राजी करना चाहता था[1]।

लावणक ग्राम की वर्तमान स्थिति सुनिश्चित करना कठिन है। श्री विजयेन्द्रकुमार माथुर का कथन है कि लावणनील नामक नगर से इसकी पहचान सम्भव है। कनिंघम ने मुंगेर को लावणक कहा है[2]।

परन्तु मुंगेर को लावणक मानना कठिन है। मुंगेर की स्थिति पटना से बहुत पूर्व में गंगा के तट पर है और यह स्थान मगध के बहुत भीतरी भाग में रहा होगा। नाटकों के वर्णनों के परिप्रेक्ष्य में लावणक को वत्स देश की ही सीमाओं के भीतर, परन्तु मगध की सीमाओं के समीप होना चाहिये। यहां से वासदत्ता को साथ लेकर यौगन्धरायण सरलता से पद्मावती के पास पहुंच सकता था।

34. वारणावत–

महाभारत काल में वारणावत एक प्रसिद्ध नगर तथा तीर्थस्थान था। यहां का शिवमन्दिर प्रसिद्ध था। इसके उत्सव को देखने के लिये पाण्डव लोग धृतराष्ट्र से अनुमति लेकर गये थे[3]। पाण्डवों को जला देने के लिये दुर्योधन ने यहां लाक्षागृह बनवाया था[4]। पाण्डवों ने दुर्योधन से सन्धि करने के लिए शर्त रूप में जिन पांच ग्रामों की मांग की थी, उनमें वारणावत भी एक था[5]।

वारणावत की पहचान मेरठ जिले के बरनाला से की जाती है। यह हिन्डन और कृष्णा नदियों के संगम पर है और मेरठ से 15 मील है। यहां एक ऊंचे टीले को वारणावत कहा जाता है। अफगान शासन काल में यहां किसी समय एक मुस्लिम फकीर ने निवास किया था। यहां उसकी जियारत होती है। कुछ समय पहले यहां एक संस्कृत पाठशाला की भी स्थापना हुई है।

---

1. स्वप्न पृ० 40-42 ॥ 2. ऐना पृ0 816–817 ॥
3. मभा आदिपर्व 142. 2-3 ॥ 4. बाभा पृ0 47 ॥ 5. वेणी 1.16 ॥

गढ़वाल में उत्तरकाशी के समीप लक्षेश्वर महादेव का मन्दिर है। यहां प्राचीन काल की जली हुई ईटें मिली हैं। कहा जाता है कि यहीं वारणावत था और शिव का प्रसिद्ध मन्दिर था, जिसके उत्सव को देखने के लिये पाण्डव यहां आये थे। उत्तरकाशी के समीपस्थ पर्वत को आज भी वारणावत कहते हैं।

35. वाराणसी–

देखिये पृ० 150 पर।

36. विदिशा–

प्राचीन समय की प्रसिद्ध विदिशा नगरी को कालिदास ने दशार्ण जनपद की राजधानी कहा है[1]। इसको अवन्ती जनपद की राजधानी भी कहा गया है[2]।

पुष्यमित्र के शासन काल में अवन्ती जनपद की राजधानी विदिशा थी। उसने यहां का शासक अपने पौत्र अग्निमित्र को बनाया था। अग्निमित्र इस नगरी के उद्यानों में विहार करता था[3]। यहीं के राजमहलों में उसने मालविका को पाया था।

विदिशा का उल्लेख श्यामिलक ने भी किया है। यहां दयितविष्णु नामक विट की भुजायें यन्त्रचालित बाण से बिंध गई थी[4]। बाण के समय भी विदिशा बहुत समृद्ध नगरी थी। उसने शूद्रक की राजधानी विदिशा का वर्णन वेत्रवती (बेतवा) के तट पर किया है।

विदिशा की प्रसिद्धि रामायण-युग में भी थी। बाल्मीकि सूचित करते हैं कि शत्रुघ्न के पुत्र शत्रुघाती को विदिशा का शासक बनाया गया है[5]।

वर्तमान समय में विदिशा की पहचान भिल्सा नगर से की जाती है। यह मध्यप्रदेश में बेतवा के तट पर बसा हुआ है। मध्यप्रदेश की राजधानी भोपालसे यह 26 मील उत्तरपूर्व में है। विदिशा के समीप ही सांची में अशोक का प्रसिद्ध स्तूप है।

37. विराटनगर–

विराटनगर महाभारत काल का एक प्रसिद्ध नगर रहा था। यहां का राजा विराट था[6]। पाण्डवों ने अपनी अज्ञातवास की अवधि इस नगर में

---

1. तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्। पूर्वमेघ 24॥
2. रघु 6.32-36॥ 3. नयसि विदिशात्तीरोद्यानेष्वनंग इवांगवान्। माका5.1
4. पाद श्लोक 20॥ 5. रामायण उत्तरकाण्ड108.10॥ 6. पंच पृ०43॥

राजा विराट के आश्रम में व्यतीत की थी । विराटनगर मत्स्य जनपद की राजधानी थी । इसके समीप ही उपप्लव्य नगर था । यहां राजा विराट का स्कन्धावार था । इसी स्थान पर रह कर पाण्डवों ने युद्ध की तैयारी की थी और शल्य उनसे मिलने आया था[1] । मत्स्य जनपद का उल्लेख पहले किया जा चुका है ।

विराटनगर की पहचान वर्तमान समय में बैरतनगर से की जाती है । यह जयपुर से 40 मील उत्तर में है ।

38. वैरन्त्य–

भास ने 'अविमारक' नाटक में वैरन्त्यनगर का उल्लेख किया है[2] । इस नाटक की पृष्ठभूमि वैरन्त्यनगर की है । नायिका कुरङ्गी के पिता कुन्तिभोज की राजधानी वैरन्त्यनगर थी[3] । हर्ष चरित में राजा रन्तिदेव की राजधानी भी वैरन्त्यनगर कही गई है ।

'वैरन्त्यनगर' की ठीक पहचान नहीं हो सकी है । श्री विजयेन्द्रकुमार माथुर का कहना है कि वैरन्त्यनगर की स्थिति चम्बल की सहायक अश्व नदी के तट पर थी । इस नगर को भोज कहा जाता था[4] ।

39. व्याधकिष्किन्धा–

'कौमुदीमहोत्सव' में व्याधकिष्किन्धा का उल्लेख है । यह स्थान दुर्ग के रूप में था, जो विन्ध्यवासिनी के मन्दिर चण्डिकायतन के निकट था[5] । व्याध नाम से स्पष्ट है कि इसकी स्थिति विन्ध्य पर्वतश्रेणी के अन्दर होनी चाहिये, जहां व्याध नामक वन्य जाति रहती होगी । यह स्थान मिर्जापुर के समीप कहीं होना चाहिये ।

किष्किन्धा नाम से दो स्थानों का परिचय मिलता है । एक किष्किन्धा दक्षिण में धारवार जिले में है । यह बेलारी के समीप, विजयनगर से तीन मील दूर तुंगभद्रा के तट पर है । इसके दक्षिण-पश्चिम में दो मील की दूरी पर पम्पा सरोवर है[6] । दूसरी किष्किन्धा दक्षिणी भारत में ही निम्बापुरी में है[7] । परन्तु ये दोनों ही किष्किन्धायें उस व्याधकिष्किन्धा से भिन्न हैं, जिनका

---

1. उपप्लव्यं स गत्वा तु स्कन्धावारं प्रविश्य च ।
   पाण्डवानथ तान् सर्वान् शल्यस्तत्र ददर्श ह ।। मभा उद्योगपर्व 8.25 ।।
2. वैरन्त्यं नाम नगरमप्यस्ति । अवि पृ० 161 ।।
3. पिता कुरंग्या भूपालो वैरन्त्यनगरेश्वरः । अवि 6.13 ॥
4. ऐना पृ० 88 ।। 5. कौ पृ० 3 ।।
6. जे.आर ए.एस 1894 पृ० 25 ।। 7. जे.ए.एस.बी. वो 14 पृ०519 ।।

उल्लेख विज्जिका ने किया है। यह व्याधकिष्किन्धा दुर्ग विन्ध्यवासिनी देवी के मन्दिर के समीप था। इसको मथुरा से बहुत दूर भी नहीं होना चाहिये। मथुरा की राजकुमारी कीर्तिमयी यहां पैदल ही देवी का पूजन करने के लिए आई थी[1]। इसी के समीप आचार्य जाबालि का आश्रम था; जो विन्ध्य वन में अवस्थित था। अतः व्याधकिष्किन्धा दुर्ग मिर्जापुर के समीप विन्ध्य पर्वतमाला में कहीं रहा होगा।

40. शृंङ्गवेरपुर–

'रामायण' के कथानक में शृंङ्गवेरपुर का महत्व है। यह निषादराज गुह की राजधानी था[2]। राम के वनगमन के समय सुमन्त्र उनको रथ में बिठा कर शृंङ्गवेरपुर लाये थे। यहां उन्होंने अयोध्या की ओर उन्मुख होकर महाराज दशरथ से सन्देश कहने का उपक्रम किया था[3]। तदनन्तर **गुह** ने राम को गंगा के पार उतारा था[4]।

शृंङ्गवेरपुर की पहचान इलाहाबाद के वर्तमान सिगरौर से की जाती है। यह गंगा के तट पर बसा है। तुलसीदास ने इसको सिगरौर ही लिखा है। जिस घाट से राम ने गंगा को पार किया था, उसको रामचौरा कहते हैं। सिगरौर की स्थिति अयोध्या से 80 मील तथा इलाहाबाद से 22 मील दूर है।

41. साकेत–

देखें अयोध्या पृ० 119 पर।

42. हस्तिनापुर–

भारतीय साहित्य में हस्तिनापुर बहुत प्रसिद्ध है। यह कुरुवंशियों की राजधानी[5] भागीरथी के दायें तट पर बसी हुई थी[6]। इसको नागपुर भी कहा गया था[7]। प्राचीन साहित्य में इसके हस्तिनापुर[8], गजपुर, नागसाह्वय, हस्तिग्राम, आसन्दीवत्, ब्रह्मस्थल आदि नाम मिलते हैं।[9]

पौराणिक कथाओं के अनुसार हस्तिनापुर को पुरुवंशी राजा बृहत्क्षत्र के पुत्र हस्तिन् ने बसाया था, अतः इसका नाम हस्तिनापुर प्रसिद्ध हुआ। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के नायक दुष्यन्त की राजधानी यही हस्तिनापुर थी।

---

1. कौ पृ० 8 ॥ 2. बारा पृ० 109 ॥ 3. प्रति पृ०62 ॥
4. उत्त 1.21 ॥ 5. पंच पृ0 61 ॥ 6. तप पृ0 21 ॥7. वही पृ0 43 ॥
8. पाणिनीय अष्टाध्यायी 4. 2, 101 ॥ 9. ऐना पृ० 1016 ॥

दुष्यन्त के साथ विवाह होने के बाद गर्भवती शकुन्तला यहीं आई थी[1]। कौरवों के समय में हस्तिनापुर भारतवर्ष का सबसे प्रमुख नगर था। 'महाभारत में इस नगर की समृद्धि और सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन है[2]।

इतिहास में प्रसिद्ध है कि हस्तिनापुर पर प्रकृति का अनेक बार प्रकोप हुआ। अनेक बार गंगा की बाढ़ ने इस नगर को बहाया और यह पुनः बसा। परीक्षित के पौत्र निचक्षु के समय गंगा की बाढ़ ने इसका पूरा विनाश कर दिया। तब उसने हस्तिनापुर को छोड़कर यमुना के तट पर कौशाम्बी को अपनी राजधानी बनाया।

जैन साहित्य में भी हस्तिनापुर बहुत प्रसिद्ध है। जैनियों का यह पवित्र तीर्थ है। 'विविधतीर्थकल्प' के अनुसार ऋषभदेव ने अपने सम्बन्धी कुरु को कुरूक्षेत्र राज्य दिया था। कुरु के पुत्र हस्तिन् ने हस्तिनापुर नगर बसाया था। यहां अनेक तीर्थङ्कर हुये। वर्तमान समय में भी हस्तिनापुर जैनियों का प्रसिद्ध तीर्थ है और उन्होंने यहां अनेक संस्थायें खोली हुई हैं।

मेरठ से 22 मील दूर उत्तरपूर्व में गंगा के तट पर हस्तिनापुर ग्राम में प्राचीन हस्तिनापुर के अवशेष हैं। यहां से गंगा की मुख्य धारा अब काफी दूर हट गई है। परन्तु एक छोटी धारा, जो बूढीगंगा कहलाती है, इसके समीप से बहती है। प्राचीन नगर के अनेक टीले और खण्डहर यहां हैं। इसके समीप ही 6 मील पर मवाना कसबा है।

---

1. अनुसूये त्वरस्व त्वरस्व। एते हस्तिनापुरगामिन ऋषयः शब्दायन्ते।
अभिज्ञा पृ. 285 ।।
2. सभा आदिपर्व अध्याय 10 ।।

सप्तम अध्याय

तीर्थ और ऋषियों के आश्रम

भारतवर्ष एक धर्मप्रधान देश रहा है। यहां के नागरिकों में धर्म के प्रति आस्था होने से विविध तीर्थों का विकास हुआ था। तपस्वी ऋषियों ने भी वनों में अपने निवास बनाये थे। संस्कृत नाटकों में अनेक तीर्थों तथा ऋषि-आश्रमों का उल्लेख हुआ है। इनका अवलोकन उपयोगी और रोचक होगा।

(क) तीर्थ

1. अगस्त्यतीर्थ–

देखें पृष्ठ 153 पर अगस्त्य आश्रम।

2. अप्सरस्तीर्थ–

कालिदास ने अप्सरस्तीर्थ का उल्लेख किया है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के अनुसार यह तीर्थ हस्तिनापुर में ही गंगा के तट पर था। दुष्यन्त द्वारा तिरस्कृत रोती-कलपती शकुन्तला को उसकी माता मेनका अप्सरस्तीर्थ से उठा कर ले गई थी[1]। इस तीर्थ के महात्म्य के विषय में कल्पना की गई थी कि अप्सरायें यहां अपने क्रम से आकर भक्तों की मनोकामनाओं को पूरा करती हैं[2]।

अप्सराओं का मूल निवास कालिदास ने मारीच के आश्रम के समीप बताया है, जो हेमकूट पर्वत पर था। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के अनुसार मेनका नाम की अप्सरा शकुन्तला को उठा कर मारीच के आश्रम में ले आई थी[3]।

---

1. अभिज्ञा 5.30 ॥ 2. वही पृ० 389 ॥ 3. वही पृ0 504 ॥

3. अयोध्या–

देखें पृष्ठ 119 पर।

4. उज्जयिनी–

देखें पृष्ठ 123 पर।

5. कांची–

देखें पृष्ठ 125 पर।

6. काशी–

देखें वाराणसी पृष्ठ 150 पर।

7. कुमारीतीर्थ–

कुलशेखर वर्मन् ने दक्षिण भारत में कुमारी तीर्थ का उल्लेख किया है[1]। वर्तमान समय में यह कन्याकुमारी कहलाता है। यह भारतवर्ष के दक्षिण में अन्तिम छोर पर समुद्रतट पर है। इसके तीन ओर समुद्र है। पूर्व में बंगाल की खाड़ी, पश्चिम में अरब सागर और दक्षिण में हिन्द महासागर है। इस स्थान को प्राचीन काल में कुमारीपुर भी कहा गया था। 'महाभारत'[2] और पुराणों[3] में यह कुमारीतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध है। इस तीर्थ को सभी पापों का विनाश करने वाला कहा गया है।

भारतवर्ष का विस्तार कुमारीपुर से हिमालय तक 1000 योजन कहा गया है[4]।

8. गोकर्ण–

गोकर्ण प्राचीन काल से प्रसिद्ध तीर्थ है। इसको दक्षिण समुद्रतट पर अवस्थित कहा गया है। हर्ष ने यहां भगवान् शिव की प्रसिद्ध लिङ्गमूर्ति का उल्लेख किया है[5]।

'भागवतपुराण' में गोकर्ण तीर्थ में शिव के मन्दिर का वर्णन हुआ है[6]। 'महाभारत' में शैव तीर्थ के रूप में गोकर्ण का अनेक बार संकेत है[7]।

---

1. सुभ पृ० 168।।
2. मभा वनपर्व 85.23।। .3 पद्मपुराण 38.23।।
4. काव्य पृ० 92।। 5. ना पृ० 168।।
6. गोकर्णाख्यं शिवक्षेत्रं सान्निध्यं यत्र धूर्जटेः। भागवतपुराण।
7. मभा आदिपर्व 216.34–35, वनपर्व 85.24–29, 88.14.15।।

कालिदास भी इस तीर्थ का वर्णन करते हैं, जो दक्षिण समुद्रतट पर है[1]। कुलशेखर वर्मन् ने गोकर्ण तीर्थ को दक्षिण में बताया है[2]।

गोकर्ण तीर्थ की स्थिति वर्तमान करवार जिले के उत्तरी कनारा के समीप है। इसके समीप में गेंदिया नगर है[3]। गोम्रा से तीन मील दक्षिण में सदाशिवगढ़ है और वहां से 30 मील दक्षिण में करवार और कुमता के मध्य में गोकर्ण है। कुमता से यह 10 मील उत्तर है। यहां गंगवती नाम की नदी समुद्र में मिलती है। इस नगर में महाबलेश्वर शिव का मन्दिर है, जो रावण द्वारा स्थापित बताया जाता है।

वर्तमान समय में गोकर्ण महाराष्ट्र का प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। इस मन्दिर की रचना द्रविडियन शैली में हुई है। प्रति वर्ष शिवरात्रि पर यहां विशाल मेला लगता है। इसमें दूर दूर से भक्तजन आते हैं। एक गोकर्ण तीर्थ का नेपाल में भी उल्लेख है[4]। परन्तु संस्कृत नाटकों में वर्णित गोकर्ण दक्षिण भारत में ही है।

9. चण्डिकायतन–

प्राचीन काल में विन्ध्यवासिनी देवी का एक प्रसिद्ध मन्दिर और तीर्थस्थान विन्ध्य वनों में था। यह चण्डिकायतन के नाम से प्रसिद्ध था। यहां दूर-दूर से भक्त जन आकर अपनी मनोकामनाओं को पूरा करने के लिये देवी से प्रार्थना करते थे। शूरसेन देश की राजकुमारी कीर्तिमती यहां पूजन के लिये आई थी[5]।

'देवीभागवत' पुराण के अनुसार विन्ध्यवासिनी का मन्दिर मिर्जापुर के समीप एक पर्वत शिखर पर है[6]। इसी पर्वत शिखर के समीप भगवती योगमाया अष्टभुजी का मन्दिर है। यह उन 52 सिद्धपीठों में से है, जहां सती के अङ्ग कट कर गिरे थे। इस स्थान पर सती का अंगूठा गिरा था[7]। 'कथासरित्सागर' में विन्ध्यवासिनी को पवित्र माना गया है[8]। सातवीं शताब्दी में यह प्रसिद्ध तीर्थ रहा होगा।

---

1. अथ रोधसि दक्षिणोदधेः श्रितगोकर्णनिकेतनमीश्वरम्। रघु 8.33 ॥
2. सुभ पृ० 168 ॥ 3. ज्योडिएमि पृ० 70 ॥ 4. कहिवा पृ०257 ॥
5. चण्डिकायतनं गत्वा कानिचिदहान्याराधयितुं भगवतीं विन्ध्यवासिनीम्। को पृ० 8 ॥
6. देवीभागवतपुराण 7.30 ॥ 7. शिवपुराण 4.1.21 ॥
8. कथासरित्सागर लम्बक–1 अध्याय-1 ॥

चण्डिकायतन या विन्ध्यवासिनी का मन्दिर अब भी विद्यमान है। आधुनिक मिर्जापुर के पश्चिम में कुछ मील दूर विन्ध्याचल नगर में बिन्दुवासिनी या विन्ध्यवासिनी का मन्दिर है[1]। परन्तु यह मन्दिर पर्वत शिखर पर न होकर मैदान में है।

10. द्वारका–

देखें पृष्ठ 132 पर।

11. प्रभासतीर्थ–

द्वारका के समीपवर्ती प्रभास तीर्थ का उल्लेख 'सुभद्राधनञ्जय'[2] में हुआ है। यहां अनेक तीर्थयात्री आते थे। डी. सी. सरकार का मत है कि सातवीं शताब्दी में यह तीर्थ अधिक प्रसिद्ध हुआ था[3]।

'महाभारत' में प्रभास तीर्थ का विस्तृत वर्णन है[4]। यहां सरस्वती नदी का समुद्र में संगम होता है। इसी स्थान पर जरा नाम के व्याध के बाण से हत होकर कृष्ण ने देहोत्सर्ग किया था। पाण्डवों ने भी इस तीर्थ की यात्रा की थी। इसी स्थान पर मदिरा से उन्मत यादव परस्पर लड़कर नष्ट हो गये थे[5]।

12. प्रयाग–

देखें पृष्ठ 135 पर।

13. बालुकातीर्थ–

'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' में बालुकातीर्थ का उल्लेख हुआ है। वत्स जनपद से जो मार्ग दक्षिण की ओर जाता है, वह बालुकातीर्थ पर नर्मदा को पार करता था। इससे आगे वेणुवन और नागवन था[6]।

14. मथुरा--

देखें पृष्ठ 137 पर।

15. मिथिला–

देखें पृष्ठ 139 पर।

---

1. इम्पीरियल गजेटियर आफ इन्डिया वो 18 पृ0 377 ।।
2. सुभ पृ0 9 ।। 3. हिज्योए पृ0 225 ।।
4. मभा वनपर्व 118.15 ।। 5. विष्णुपुराण 5.37–40 ।।
6. बालुकातीर्थे नर्मदां तीर्त्वा वेणुवने कलत्रमावास्य.........नागवनं प्रयातो भर्ता। प्रतिज्ञा पृ0 15 ।।

16. वारणावत–

देखें पृष्ठ 141 पर।

17. वाराणसी–

वाराणसी अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध तीर्थ रहा है। वरुणा और असी (गंगा की वाराणसी के समीप धारा को असी कहते हैं) के मध्य बसा होने के कारण यह नगर वाराणसी कहलाया[1]। यह काशी जनपद की राजधानी था और काशी भी कहलाता था। व्यापार के केन्द्र के रूप में भी यह बहुत प्रसिद्ध रहा। पतञ्जलि ने इसको वस्त्र के व्यापार का केन्द्र बताया है[2]।

बाराणसी को भगवान शिव का निवास माना जाता है[3]। यहां के निवासी सांसारिक सुखों को भोगते हुये भी भगवान शिव को प्राप्त करते हैं[4]। शिव का निवास होने से वाराणसी को शेष विश्व से पृथक् माना गया था। क्षेमीश्वर वर्णन करते हैं—

'समग्र पृथिवी के भार को शेषनाग वहन करते हैं, परन्तु वाराणसी इससे अलग है[5]। यह शिव का अपना क्षेत्र है और अन्तरिक्ष की नगरी है[6]।

यही कारण था कि विश्वामित्र को अपना राज्य दान करके हरिश्चन्द्र वाराणसी आये और अपने को तथा अपने परिवार को बेच कर उन्होंने ऋषि की दक्षिणा पूरी की। एक चण्डाल ने उनको खरीदकर श्मशान की रक्षा के लिए नियुक्त किया था। आज भी वह स्थान वाराणसी में है और हरिश्चन्द्र घाट के नाम से प्रसिद्ध है।

वाराणसी नगरी को काशी भी कहा जाता है। कालिदास ने वर्णन किया है कि पुरुरवा की विवाहिता रानी काशी के राजा की पुत्री थी[7]। 'महाभारत' के कथानक में काशी का महत्वपूर्ण योग है। भीष्म ने काशीराज की तीन पुत्रियों–अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका का अपहरण अपने भाइयों के विवाह के लिये किया था। शिव की नगरी के रूप में काशी ने परम प्रसिद्धि प्राप्त की थी। इसकी गणना मोक्ष प्रदान करने वाली सात पुरियों में की गई है[8]।

1. कूर्मपुराण 30.63 ।। 2. अष्टाध्यायी 5.3.55 पर महाभाष्य ।।
3. बारा पृ0 693 ।। 4. वही 10·12 ।। 5. चण्ड 3.4 ।। 6. चण्ड 2.30।।
7. काशिराजदुहितरम् । विक्र 2.1 के पश्चात् ।।
8. अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता: मोक्षदायिका: ।।

श्रद्धालु भारतीय जन वाराणसी का सदा से आदर करते रहे हैं। वृद्ध होकर वाराणसी जाकर निवास करना मोक्ष का हेतु समझा जाता था। वाराणसी में प्राणों का परित्याग करने से प्राणी पुनर्जन्म से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करते। यहां संसार के सभी बन्धन स्वतः विच्छिन्न हो जाते हैं। यहां शिव के हाथ पर चिपका ब्रह्मा का सिर छूट कर गिर गया था, अतः ब्रह्महत्या का पाप नहीं लगता। शिव-पार्वती इस क्षेत्र को कभी नहीं छोड़ते[1]।

प्राचीन वाराणसी ही वर्तमान की वाराणसी है। प्राचीन काल के समान यह अब भी धर्म और विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र है। धर्म का लाभ करने के लिये भारत के प्रत्येक भाग से यहां लाखों तीर्थयात्री आते रहते हैं।

18. वृन्दावन–

भगवान् कृष्ण की लीला से सम्बन्धित होने के कारण वृन्दावन बहुत प्रसिद्ध तीर्थ रहा। भास ने 'बालचरितम्' में वृन्दावन का आकर्षक चित्र अङ्कित किया है। यहां गोप-गोपियां रहते थे। यमुना के जल को पीकर गौएं स्वच्छन्दता से विचरण करती थीं[2]। 'श्रीमद्भागवत' के अनुसार कंस के अत्याचारों से बचने के लिये नन्द गोकुल से वृन्दावन चले आये थे। कालिदास ने वृन्दावन को शूरसेन जनपद के अन्तर्गत बताया है[3]। राजशेखर ने इसको मथुरा के समीप तथा मथुरा राज्य के अन्तर्गत लिखा है[4]।

वर्तमान समय में वृन्दावन इसी नाम से प्रसिद्ध है। यह मथुरा से 6 मील उत्तर-पश्चिम में यमुना के तट पर है।

19. शक्रावतार–

कालिदास ने गङ्गा के तटवर्ती शक्रावतार का वर्णन किया है। नदी आदि जलीय तटवर्ती स्थानों पर पार उतरने के स्थानों को अवतार कहा जाता था। कालिदास के अनुसार मालिनी के तटवर्ती कण्व के आश्रम से हस्तिनापुर को जाने वाले मार्ग में गंगा को पार उतरने का घाट शक्रावतार था। पौराणिक कथा प्रसिद्ध है कि किसी समय इन्द्र (शक्र) के साथ भ्रमण करते हुये इन्द्राणी (शची) ने सभी तीर्थों का आवाहन करते हुये यहाँ स्नान किया था। तदनन्तर यह सारा क्षेत्र शक्रावतार कहलाया। और जहाँ शची

---

1. चण्ड 3.6-7 ॥
2. एतस्मिन् वृन्दावने प्रकामं पानीयं पीत्वा कम्भारवं कुर्वदायतु गोधनम्। बाच पृ0 51 ॥
3. रघु 6, 50 ॥ 4. बारा पृ0 143 ॥

ने स्नान किया था, वह स्थान शचीतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हस्तिनापुर जाते हुये शकुन्तला ने शचीतीर्थ में वन्दना की थी। उसी समय उसकी अंगूठी जल में गिर गई[1]। शक्रावतार में धीवरों की आबादी थी। जहां रहने वाले एक धीवर को[2] मछली के पेट से वह अंगूठी प्राप्त हुई।

शक्रावतार की पहचान मुजफ़्फ़रनगर जिले में गंगा के तट पर अवस्थित शुक्करताल से की जाती है[3]। श्री विजयेन्द्रकुमार माथुर ने शुक्करताल को शक्रावतार का ही अपभ्रंश माना है[4]। यहां गंगा के उस पार मंडावर है, जहां मालिनी नदी आती है। अतः शकुन्तला कण्व-आश्रम से इसी मार्ग से आई होगी और उसने यहां गंगा को पार करके नदी में स्नान करके वन्दना करते हुये अपनी अंगूठी अनजाने ही जल में गिरा दी होगी।

20. शचींतीर्थ–

कालिदास ने शक्रावतार के साथ शचीतीर्थ का भी वर्णन किया है। इसकी स्थिति वहीं उस स्थान पर थी, जहां शची ने स्नान किया था। इसका विवरण ऊपर दिया जा चुका है।

21 सीतातीर्थ–

भवभूति ने दण्डकारण्य में सीतातीर्थ का उल्लेख किया है, जहां गोदावरी नदी को पार किया जा सकता था[5]। वनवास की अवधि में पंचवटी में रहते हुये सीता यहां स्नान करती होगी, अतः इसका नाम सीतातीर्थ प्रसिद्ध हो गया होगा। मध्यप्रदेश के जिला दमोह में सुनार नदी के तट पर भी एक सीतानगर है, जो प्राचीन तीर्थ है।

22. सोमतीर्थ–

कालिदास ने 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में सोमतीर्थ का उल्लेख किया है। शकुन्तला के प्रति देव की प्रतिकूलता को शान्त करने के लिये कण्व इस स्थान पर गये थे[6]। अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के किन्हीं संस्करणों में यहां सोमतीर्थ

---

1. शक्रावताराभ्यन्तरे शचीतीर्थं वन्दमानायां: सख्यास्ते हस्ताद् गंगास्रोतसि परिभ्रष्टा। अभिज्ञा पृ0 363॥
2. शक्रावताराभ्यन्तरालवासी धीवरः। अभिज्ञा पृ0 380॥
3. मालिनी के वनों में। पृ0 191॥ 4. ऐना पृ0 887॥
5. उत्त पृ० 213॥
6. दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितं सोमतीर्थं गतः। अभिज्ञा पृ० 142॥

पाठ है । अतः सोमतीर्थ प्राचीन समय में उस स्थान पर रहा होगा, जिसको वर्तमान में प्रभासपट्टन कहते हैं ।

प्रभासपट्टन की स्थिति पश्चिम समुद्रतट पर द्वारका से कुछ दूर है । यहां अति प्राचीन शिवमन्दिर ज्योतिर्लिङ्ग है । कहा जाता है कि इस स्थान पर शिव की आराधना करके चन्द्रमा ने क्षय रोग से मुक्ति पाई । वह दक्ष प्रजापति के शाप से क्षय रोग से पीड़ित हो गया था । अतः यह स्थान सोमतीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ । नन्दलाल डे[1] और 'भूगोल पत्रिका' के 'भुवनकोषाङ्क' के अनुसार इसी को सोमतीर्थ मानना चाहिए[2] ।

गढ़वाल में केदारनाथ से नीचे एक सोम नदी मन्दाकिनी में मिलती है । इस स्थान को सोमप्रयाग कहते हैं । इसको भी सोमतीर्थ माना जा सकता है, जो अति प्राचीन है । प्रभासपट्टन की अपेक्षा यह स्थान कण्व के आश्रम के अधिक समीप रहा होगा । महाभारत के अनुसार कुरुक्षेत्र के निकट भी एक सोमतीर्थ था । यहाँ कार्तिकेय ने तारकासुर का वध किया था[3] । प्रभासपट्टन की अपेक्षा यह स्थान भी कण्व के आश्रम के अधिक समीप है । अतः सोमतीर्थ की पहचान इनमें से ही किसी एक के साथ सम्भावित है ।

(ख) ऋषियों के आश्रम

1. अगस्त्य–

प्राचीन साहित्य में अगस्त्य मुनि का नाम बहुत प्रसिद्ध है । विन्ध्य पर्वत की ऊंचाइयों को पार करके उन्होंने दक्षिण भारत में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया था[4] । वे सुदूर दक्षिण तक पहुँचे थे ।[5] तमिल साहित्य के अनुसार अगस्त्य मुनि आर्य संस्कृति का प्रचार करने के लिये दक्षिण भारत गये और वहीं रहने लगे[6] । प्राचीन साहित्य में उनके आश्रमों की स्थिति उत्तर और दक्षिण भारत के अनेक स्थानों पर वर्णित है । अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा की गणना तीन महा पतिव्रताओं में की जाती है[7] । अतः अगस्त्य

1. ज्योडिएमि पृ० 85।। 2. भूगोल पत्रिकाभुवनकोषाङ्क 1932मई-जून पृ. 6।।
3. महा शल्यपर्व 44. 52 ।।
4. रामायण अरण्यकाण्ड 11. 85–86, महा वनपर्व अध्याय 104 ।।
5. रामायण अरण्य काण्ड 11. 37-42।।
6. ग्रामर आफ दी द्राविडियन लैंग्वेजेज पृ० 101, 109 ।।
7. महा 7. 36 ।।

और उनकी पत्नी के प्रभाव से उत्तरवर्ती साहित्य में उनका आश्रम तीर्थ के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

'प्रियदर्शिका' में अगस्त्यतीर्थ का उल्लेख हुआ है[1]। किसी समय यहां अगस्त्य मुनि का आश्रम रहा होगा। यहां स्नान करना पुण्य समझा जाता होगा। 'प्रियदर्शिका' के एक वर्णन से प्रतीत होता है कि यह तीर्थ अंग जनपद के समीप विन्ध्य वन में था। 'महाभारत' में अगस्त्याश्रम का वर्णन है, जबकि पाण्डव तीर्थयात्रा के प्रसंग में गया से आगे चल कर अगस्त्याश्रम पहुँचे थे[2]। अंग जनपद की स्थिति मगध के पूर्व में थी। वर्तमान समय में राजगृह के समीप इस आश्रम की स्थिति की कल्पना की गई है।

'स्कन्दपुराण' के सेतुखण्ड के 16 वें अध्याय में गन्धमादन पर्वत पर अगस्त्य मुनि के आश्रम तथा तीर्थ होने का वर्णन है। यहां वे अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ रहते थे। गढ़वाल में ऋषिकेश से 100 मील ऊपर और रुद्रप्रयाग से 10 मील आगे केदारनाथ की ओर मन्दाकिनी के बायें तट पर अगस्त्य मुनि का प्राचीन मन्दिर है। बी0 सी0 ला ने इसी स्थान पर प्राचीन अगस्त्याश्रम माना है[3]। परन्तु उन्होंने दूरी का माप करने में कुछ भूल कर दी है।

आर्य संस्कृति तथा धर्म का प्रचार करने के लिये अगस्त्य मुनि क्योंकि विन्ध्य को पार करके उत्तर से दक्षिण की ओर गये थे तथा उस ओर ही रहने लगे थे, अतः दक्षिण भारत में उनके आश्रम की स्थिति का अनेक स्थानों पर वर्णन है। दण्डकारण्य में गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था[4]। यहां अगस्त्य के साथ अनेक ब्रह्मवेत्ता ऋषि रहते थे। अगस्त्य से ब्रह्मविद्या का अध्ययन करने के लिये अनेक छात्र आते रहते थे[5]। अगस्त्य के कहने पर राम ने उनके आश्रम के समीप पंचवटी में अपना निवास बनाया था[6]।

अगस्त्य के इस आश्रम की पहचान नासिक (पंचवटी) से पूर्व में 15 मील दूर अकोला ग्राम में की गई है[7]। यहां अब भी एक विशाल कुण्ड अगस्त्य

---

1. प्रिय पृ० 3॥ 2. ततः सम्प्रस्थितो राजा कौन्तेयो भूरिदक्षिणः।
अगस्त्याश्रममासाद्य दुर्जयायामुवास ह॥ महा वनपर्व 96.1॥

3. प्राए.भू पृ0 610॥ 4. उत्त पृ0 165॥

5. अस्मिन्नगस्त्यप्रमुखाः प्रदेशे भूयांस उद्गीथविदो वसन्ति।
येभ्योऽधिगन्तुं निगमान्तविद्यां वालमीकिपार्श्वादिह पर्यटामि॥ उत्त 2.3॥

6. महा पृ० 169॥ 7. भारत भ्रमण चतुर्थ खण्ड पृ1189॥

कुण्ड के नाम से प्रसिद्ध है । नन्दलाल डे ने नासिक से 24 मील उत्तर-पूर्व में अगस्त्यपुरी को प्राचीन अगस्त्याश्रम माना है[1] ।

प्राचीन साहित्य में अगस्त्याश्रम की स्थिति दक्षिण समुद्रतट पर भी कही गई है[2] । 'महाभारत' में दक्षिण समुद्र तट पर पांच तीर्थों की गणना है । इनमें अगस्त्य तीर्थ भी है[3] । अर्जुन ने अपनी वनवास की अवधि में यहां तीर्थयात्रा की थी और भगवान् शिव का पूजन किया था ।

अगस्त्य मुनि ने विस्तृत भ्रमण करके आर्य संस्कृति का प्रचार किया था, अतः विभिन्न प्रदेशों में उनके आश्रमों का होना स्वाभाविक है । प्राचीन साहित्य में अगस्त्य का उल्लेख एक महान् पर्यटक तथा विद्वान् तपस्वी धर्म-प्रचारक के रूप में हैं । उनके आश्रमों का वर्णन अनेक स्थानों पर है ।

2. अत्रि–

भारतीय साहित्य में अत्रि ऋषि की गणना सप्तर्षियों में है । इनकी पत्नी अनसूया सतियों में शिरोमणि थी । पातिव्रत्य के प्रभाव से ब्रह्मा, विष्णु और शिव को भी इनकी गोदी में शिशु के रूप में आना पड़ा था । वनवास की अवधि में चित्रकूट से दक्षिण की ओर जाने पर राम अत्रि के आश्रम में पहुँचे थे । शक्तिभद्र ने वर्णन किया है कि अत्रि-पत्नी अनसूया ने सीता को वर दिया था कि वह राम को सदा अलङ्कृत दिखाई देगी[4]। कालिदास के अनुसार अनसूया ने सीता के अङ्गों पर सुगन्धित अङ्गराग लगाया था[5] ।

कालिदास ने चित्रकूट और मन्दाकिनी का वर्णन करके[6] लिखा है कि अत्रि-पत्नी अनसूया स्नान करने के लिये त्रिपथगा (मन्दाकिनी) को अपने आश्रम के समीप ले आई थी[7] । अत्रि के आश्रम की पहचान चित्रकूट के समीप मन्दाकिनी के तट पर की गई है । इस नदी को वर्तमान समय में पयस्विनी भी कहते हैं । यह स्थान चित्रकूट की आबादी से आठ मील दक्षिण में पहाड़ी पर है । इसको अनसूया भी कहा जाता है । यहां अत्रि मुनि और अनसूया की मूर्तियां स्थापित हैं ।

अनसूया नाम से एक स्थान गढ़वाल में भी प्रसिद्ध है । गोपेश्वर से आगे मण्डल और वहां से तीन मील आगे अनसूया है । इससे कुछ ही दूर

1. ज्योडिऐमि पृ० 2 ।। 2. मभा आदिपर्व 215.1–3 ।। 3. वही 216.17 ।।
4. आ 7.28 ।। 5. रघु 12.27 ।। 6. वही 13.47-48 ।।
7. वही 13.50-51 ।।

तुङ्गनाथ शिखर है। कहा जाता है कि इस अनसूया स्थान पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने अनसूया के गर्भ से जन्म लिया था।

3. कण्व—

कण्व मुनि की गणना भी सप्तर्षियों में है। भारतीय साहित्य में इनका आश्रम तीर्थ, धर्मारण्य, तपोभूमि और विद्या के केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध है[1]। कण्व को कुलपति कहा गया है। इससे सिद्ध है कि इनका आश्रम एक प्रसिद्ध शिक्षास्थान था।

कालिदास ने शकुन्तला के निवास स्थान के रूप में कण्व के आश्रम को बहुत प्रसिद्ध किया। यह आश्रम मालिनी के तट पर[2] हिमालय की उपत्यका में[3] था। यहां मालिनी के सभी ओर हिमालय की उपत्यकायें थीं[4]।

अनेक विद्वान् समालोचकों ने कण्व-आश्रम की पहचान मंडावर से की है। सम्भवतः इसी स्थान को पाणिनि ने मार्दयपुर कहा है[5]। यह स्थान बिजनौर जिले में बिजनौर नगर से 10 मील उत्तरपूर्व की ओर मालिनी के तट पर है। यहां से मुरादाबाद सहारनपुर रेलवे मार्ग पर स्थित चन्दक स्टेशन केवल चार मील है। इम्पीरियल गजेटियर में[6] तथा बिजनौर की आरम्भिक कक्षाओं के भूगोल में मंडावर में कण्व आश्रम की स्थिति कही गई है। मैक्स-मूलर भी इसी बात को मानते हैं[7]। मंडावर से गंगा को पार करके शुक्कर-ताल होकर हस्तिनापुर को मार्ग जाता है। मंडावर के उत्तर-पश्चिम में कजली वन है। सम्भवतः यहीं दुष्यन्त शिकार खेलने आया होगा।

परन्तु अनेक अन्वेषक और समालोचक इस मत से सहमत नहीं हैं। श्री निधि विद्यालंकार का मत है कि कण्व आश्रम की स्थिति वर्तमान चौकी घाट में थी[8]। यह स्थान मालिनी नदी के तट पर नजीबाबाद से 14 मील है। कोटद्वार-हरिद्वार मार्ग पर यह कोटद्वार से 6 मील है। इसके समीप एक नड़ों (वेतस) का वन है, जो प्राचीन काल में नडपित् कहलाता था। इस

---

1. सभा आदिपर्व 215.1-3, स्कन्दपुराण केदारखण्ड 57.10-11 अग्निपुराण 115.10 ॥
2. एष खलु कण्वस्य कुलपतेरनुमालिनीतीरमाश्रमो दृश्यते। अभिज्ञा पृ० 142॥
3. हिमगिरेरुपत्यकारण्यवासिनः कण्वसन्देशमादाय। अभिज्ञा पृ० 335 ॥
4. पादास्तामभितो निषण्णहरिणाः गौरीगुरोः पावनाः। अभिज्ञा 6.17 ॥
5. अष्टाध्यायी 4.2.10 ॥ 6. इम्पीरियल गजेटियर भाग 2 पृ० 332 ॥
7. सैक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट ॥ 8. मालिनी के वनों में पृ० 201 ॥

वन में तपस्या करते हुये विश्वामित्र का मेनका से सम्बन्ध हुआ था और शकुन्तला उत्पन्न हुई थी । नडपित् वन में त्यागी जाने के कारण शकुन्तला का नाम नाडपिता भी प्रसिद्ध हुआ (नडपिति वने परित्यक्ता नाडपिती)। यहां से हिमालय की उपत्यकायें प्रारम्भ हो जाती हैं और पर्वत-शृंखलायें दृष्टि-गोचर होती हैं । इस प्रकार मानने पर कालिदास के वचन सिद्ध होते हैं कि कण्व आश्रम हिमालय की उपत्यका में हैं तथा मालिनी के दोनों ओर हिमालय की उपत्यकायें हैं ।

4 गौतम–

राम कथाओं में वर्णन है कि जब राक्षसों का वध करके तथा विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करके राम मिथिला की ओर गये तो मार्ग में उनको गौतम ऋषि का आश्रम मिला । यहां ऋषिके शाप से शिला बनी अहिल्या का उन्होंने उद्धार किया[1] ।

'रामायण[2]' और 'रघुवंश[3], में गौतम ऋषि के आश्रम को मिथिला के समीप कहागया है । इस आश्रम की पहचान उत्तरपूर्व रेलवे के कमतोल स्टेशन के समीप अहियारी ग्राम से की गई है । इसको सिंहेश्वर भी कहते हैं[4] । विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण वैशाली होकर मिथिला गये थे । मध्य में गौतम का आश्रम मिला, जहां राम ने अहिल्या का उद्धार किया । अहियारी का समीपस्थ स्थान पावन तीर्थभूमि के रूप में प्रसिद्ध है । यहां गौतम ऋषि और अहिल्या के नाम से कुण्ड, सरोवर, चौरा और मन्दिरों के अवशेष विद्यमान हैं[5] । कमतौला स्टेशन से तीन मील उत्तर-पश्चिम में पुनौरा ग्राम में अहिल्या का मन्दिर है ।

गौतम ऋषि के आश्रम की स्थिति अन्यत्र भी वर्णित है । नन्दलाल डे ने अहिरौली (बक्सर) के समीप और आबू (अर्बुद) पर्वत पर गौतम आश्रम की स्थिति मानी है[6] । देहरादून के समीप एक स्फटिक जल की बावड़ी है । इस स्थान को ठकरानी कहा जाता है । स्थानीय जन-श्रुतियों के अनुसार न्याय दर्शन के रचयिता गौतम ऋषि का आश्रम यहीं था[7] ।

---

1. अनपृ० 20 ।।
2. मिथिलोपवने तत्र आश्रमे दृश्य राघवः ।
   पुराणं निर्जनं रम्यं पप्रच्छ मुनिपुंगवम् ।।
   रामायण बालकाण्ड अध्याय 48 ।।
3. रघु 11.33-34 ।। 4. ऐना पृ० 56 ।।
5. कल्याण तीर्थाङ्क वर्ष 31 पृ० 153 ।
6. ज्योडिएमि पृ० 31 ।। 7. ऐना पृ० 309 ।।

गौतम के पुत्र शतानन्द जनक के पुरोहित थे। उनका आश्रम वहीं रहा होगा, जहां उनके माता-पिता थे। जनकों के पुरोहित होने से उनका आश्रम मिथिला में भी अवश्य रहा होगा।

5. च्यवन–

'विक्रमोर्वशीयम्' नाटक में च्यवन ऋषि के आश्रम का वर्णन आया है। उर्वशी ने अपने पुत्र आयु को उत्पन्न होते ही च्यवन के आश्रम में छोड़ दिया था। यहाँ उसके जातकर्म आदि संस्कार हुये तथा उसकी धनुर्वेद आदि की शिक्षा का प्रबन्ध हुआ[1]। आश्रम में युद्ध विद्या का प्रबन्ध होने पर भी हिंसा का निषेध था। आयु द्वारा वृक्ष पर बैठे गिद्ध को बेध कर गिरा देने पर च्यवन ऋषि ने उसको माता-पिता के पास हस्तिनापुर भेज दिया[2]।

प्रतिष्ठानपुर में राजा के महल से संगमनीय मणि को मांस का टुकड़ा समझकर गिद्ध ने उठा लिया था। तदनन्तर ऊपर आकाश में चक्कर काट कर[3] वह दक्षिणदिशा की ओर उड़ गया[1]।

च्यवन आश्रम की स्थिति सामान्यतः मगध में गया जिले में मानी गई है। पटना गया रेलवे मार्ग पर गया से 27 मील पर जहानाबाद स्टेशन से 36 मील पर देवकुण्ड स्थान है। यहां च्यवन ऋषि का आश्रम कहा जाता है। शर्याति की पुत्री सुकन्या ने यहीं भूल से च्यवन ऋषि की आंख फोड़ी थी और उसको ऋषि से विवाह करना पड़ा। तदनन्तर इसी देवकुण्ड में स्नान करके च्यवन ने नेत्र पाये और नवयौवन भी पाया।

परन्तु 'विक्रमोर्वशीयम्' के अनुसार च्यवन आश्रम की स्थिति प्रतिष्ठानपुर (गंगा के बायें तट पर वर्तमान झूसी) के दक्षिण में कही गई है। 'महाभारत' की सुकन्या की कथा में च्यवन आश्रम को नर्मदा के तट पर

1. कंचुकी– देव च्यवनाश्रमात् कुमारं गृहीत्वा सम्प्राप्ता तापसी।
तापसी– जातकर्मादिविधानं तदस्य भगवताच्यवनेनाशेषमनुष्ठितम्। गृहीतविद्या धनुर्वेदेऽभिविनीतः। उर्वशी जातमात्रमेव विद्यागमनिमित्तं भगवतश्च्यवनाश्रमे......विक्र अंक 5॥

2. तापसी– गृहीतामिषः किल पादपशिखरे लक्ष्यीकृतो बाणस्य। ततः उपलब्ध वृतान्तेन भगवता च्यवनेनाहं समादिष्टा निर्यातयैनमुर्वशीहस्ते। विक्र अंक 5॥

3. विक्र अंक 5॥ 4. भो इतो दक्षिणान्तेनापगतः सः विक्र अंक 5॥

कहा गया है[1], जो वैदूर्य पर्वत के पश्चात् है[2]। वैदूर्य पर्वत सम्भवत: नर्मदा नदी के तटवर्ती संगमरमर के पर्वतों को कहा गया है। इसके समीप भेड़ाघाट नामक स्थान है, जो जबलपुर से 13 मील है। स्थानीय जन-श्रुतियों के अनुसार यहां भृगु ऋषि का आश्रम था और भृगु ऋषि के पुत्र च्यवन थे[3]। यह भेड़ाघाट स्थान प्रतिष्ठानपुर के दक्षिण में ही हैं, अतः 'विक्रमोर्वशीयम्' में वर्णित च्यवन आश्रम की स्थिति यहीं मानी जा सकती है[4]।

6. परशुराम–

भारतीय साहित्य में परशुराम का नाम बहुत प्रसिद्ध है। इनकी गणना विष्णु के दस अवतारों में की गई है। ये महर्षि जमदग्नि और रेणुका के पुत्र थे। कार्तवीर्यार्जुन द्वारा पिता का वध करने से क्रुद्ध होकर उन्होंने 21 बार सम्पूर्ण क्षत्रियों का संहार करके सारी पृथिवी को कश्यप के लिये दान कर दिया। तदनन्तर वे स्वयं महेन्द्र पर्वत पर रहने के लिये चले गये।

परशुराम से सम्बन्धित कथाओं से विदित होता है कि पहले वे अपने पिता जमदग्नि के साथ आश्रम में रहते थे। इसकी स्थिति उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले में कही जाती है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह आश्रम बलिया से 36 मील पश्चिमोत्तर में खैरादि में था[5]। पौराणिक कथायें जमदग्नि आश्रम को गढवाल के उत्तरकाशी में भी बताती हैं[6]। यहां कार्तवीर्यार्जुन सेनासहित आया था। कामधेनु की कृपा से जमदग्नि ने उसका राजसी सत्कार किया। परन्तु कार्तवीर्यार्जुन ने जमदग्नि को मार कर कामधेनु को छीनना चाहा। पिता की यह अवस्था देखकर परशुराम ने कार्तवीर्यार्जुन को मारने की प्रतिज्ञा की।

क्षत्रियों का वध करके तथा सारी भूमि को कश्यप के लिये दान करके परशुराम दक्षिण की ओर चले गये तथा महेन्द्र पर्वत पर रहने लगे। राजशेखर के अनुसार यह भूमि वर्तमान कोंकणहै[7] 'महाभारत' के अनुसार परशुराम ने पृथिवी का दान करके अपने निवास के लिये समुद्र से भूमि मांगी थी। समुद्र द्वारा खाली की गई भूमि पर वे आश्रम बना कर रहने लगे थे। यह

---

1. मभा वनपर्व अध्याय 121–122॥ 2. वही 121–19॥
3. भृगोर्महर्षेः पुत्रो भूच्च्यवनो नाम भारत। मभा वनपर्व 121.1॥
4. ऐना पृ० 346–347॥ 5. प्राऐभू पृ0 232॥ 6. केदार खण्ड पुराण॥
7. बारा 2. 15॥

भूमि शूर्पारक कहलाई, जो अपरान्त क्षेत्र के अन्तर्गत थी[1]। वर्तमान नालसोपारा ही शूर्पारक था, जो बम्बई के समीप थाना जिले में है।

7. बाल्मीकि–

'रामायण' के रचयिता बाल्मीकि को संस्कृत भाषा का आदि कवि होने का गौरव प्राप्त है। प्राचीन साहित्य के वर्णनों के अनुसार बाल्मीकि का तमसा और गंगा नदियों के साथ विशेष सम्बन्ध है। अतः बाल्मीकि का आश्रम इन नदियों के समीप होना चाहिए। इनमें भी यह तमसा के अधिक समीप है। कहा जाता है कि एक दिन माध्यन्दिन सवन के लिए बाल्मीकि तमसा नदी के तट पर गये। वहां उन्होंने, एक व्याध द्वारा क्रौञ्च पक्षी का वध देखा, जबकि उसकी प्रिया क्रौञ्ची विलाप करती हुई ऊपर आकाश में उड़ रही थी। इस करुण दृश्य को देख कर महाकवि की वाणी से निम्न छन्द प्रादुर्भूत हुआ—

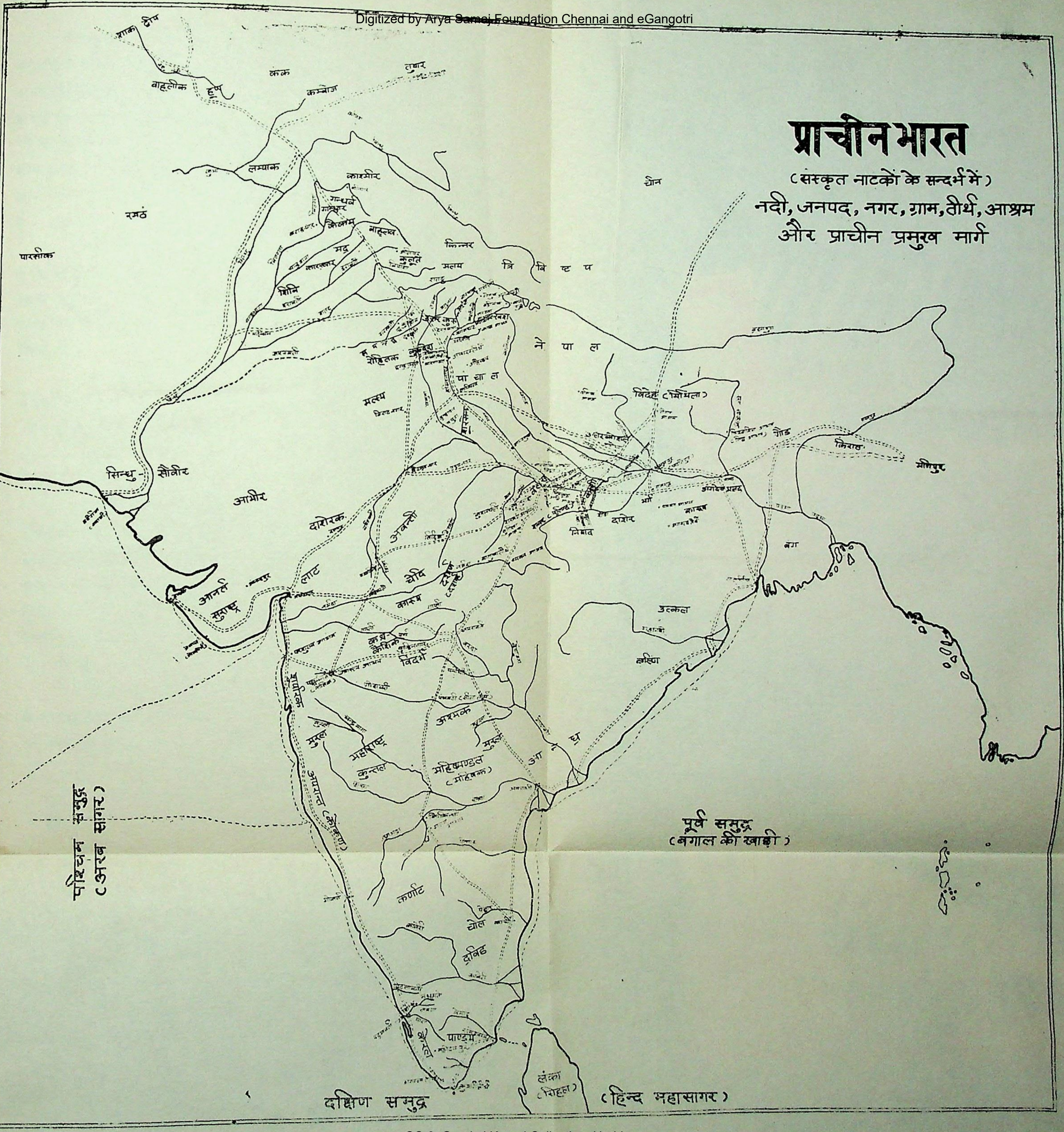
मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम्॥

तदनन्तर बाल्मीकि ने ब्रह्मा के आदेश से 'रामायण' की रचना की[2]।

'रामायण' के अनुसार वनवास के प्रारम्भ में राम ने चित्रकूट के समीप बाल्मीकि के आश्रम में जाकर ऋषि के दर्शन किये थे[3]। और उनके निर्देश से चित्रकूट में पर्णकुटि बनाई। सीता के लिए निर्वासन का आदेश मिलने पर लक्ष्मण उनको गंगा पार करा कर वनों में छोड़ आये थे। यहां बाल्मीकि से सीता की भेंट हुई और वे सीता को अपने आश्रम में ले गये। यहां सीता ने लव कुश को प्रसूत किया। इससे सिद्ध होता है कि बाल्मीकि का आश्रम गंगा के दक्षिणी तट को पार करके उस स्थान पर था, जहां तमसा (रीवां से बह कर आने वाली टौंस नदी) का गंगा में संगम होता है। 'रामायण' में स्पष्ट लिखा है। कि गंगा के दूसरे पार तमसा है तट पर बाल्मीकि का आश्रम है[4]।

---

1. मभा शन्तिपर्व 49. 66–67॥ 2. उत्त. पृ॰ 18-131॥
3. रामायण अयोध्याकाण्ड 56.16॥
4. गंगायास्तु परे पारे बाल्मीकेस्तु महात्मनः।
आश्रमो दिव्यसङ्काशस्तमसातीरमाश्रितः॥ रामायण उत्तरकाण्ड 45.17-18॥


प्राचीन भारत
(संस्कृत नाटकों के सन्दर्भ में)
नदी, जनपद, नगर, ग्राम, तीर्थ, आश्रम
और प्राचीन प्रमुख मार्ग
शक
तुषार
बाह्लीक
हूण
कम्बोज
लम्पाक
काश्मीर
चीन
रमठ
पारसीक
किन्नर
मलय
त्रि वि ष्ट प
शिबि
मद्र
कुलूत
नेपाल
पांचाल
मत्स्य
विदेह (मिथिला)
गौड
किरात
मणिपुर
सिन्धु सौवीर
आभीर
दशेरक
अवन्ती
निषाद
वंग
लाट
आनर्त
सुराष्ट्र
उत्कल
कलिंग
विदर्भ
अश्मक
महाराष्ट्र
कुन्तल
माहिष्मण्डल (माहिषक)
आन्ध्र
अपरान्त (कोंकण)
पश्चिम समुद्र (अरब सागर)
पूर्व समुद्र (बंगाल की खाड़ी)
कर्णाट
चोल
द्रविड
पाण्ड्य
लंका (सिंहल)
दक्षिण समुद्र
(हिन्द महासागर)

कानपुर से 12 मील पर उत्तरपूर्व में बिठूर (प्राचीन नाम ब्रह्मावर्त) स्थान है। प्राचीन किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि यहां ब्रह्मा ने अश्वमेध यज्ञ किया था। बाल्मीकि को ब्रह्मा (प्रचेतस्) का पुत्र कहा जाता है और वे प्राचेतस के नाम से प्रसिद्ध थे[1]। बिठूर में बाल्मीकि का आश्रम कहा जाता है। समीप ही एक कुयें को बाल्मीकि कूप कहते हैं। यहां बाल्मीकेश्वर महादेव का मन्दिर है। समीप में सीताकुण्ड, लव–कुश–निवास और स्वर्ग की सीढ़ी है। आश्रम के समीप एक छोटी नदी है, जो गंगा में मिल जाती है। इसको उत्तरी लोन या नोन कहते हैं। सम्भवतः यही प्राचीन काल की तमसा हो[2]।

तमसा–गंगा के संगम तथा बिठूर, स्थानों में दूरी बहुत है। यह सम्भव है कि बाल्मीकि के आश्रम दोनों स्थानों पर रहे हों तथा ब्रह्मावर्त-आश्रम जन्म-स्थान रहा हो। बाल्मीकि की दशरथ के साथ परम मित्रता थी, अतः उन्होंने अपना दूसरा आश्रम अयोध्या के अधिक समीप गंगा-तमसा के सङ्गम पर बना लिया हो।

'रामायण' के उत्तरकाण्ड के अनुसार राम ने अश्वमेध का आयोजन नैमिषारण्य में किया था[3]। दिङ्नाग ने इसी का अनुसरण किया है[4]। लव-कुश और सीता को लेकर बाल्मीकि इस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये नैमिषारण्य गये थे। वहां उनकी भेंट राम से हुई। बिठूर से नैमिषारण्य का मार्ग अधिक सीधा, सरल तथा छोटा है।

बाल्मीकि का आश्रम अपने समय में विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र रहा था। बाल्मीकि स्वयं वेद आदि शास्त्रों के विद्वान् थे। लव-कुश को सभी विद्याओं की शिक्षा बाल्मीकि के आश्रम में ही मिली थी। भवभूति के अनुसार यहां छात्रायें भी विद्याध्ययन करती थीं। आत्रेयी नाम की एक छात्रा अध्ययन में विघ्न उत्पन्न होने के कारण बाल्मीकि के आश्रम को छोड़ कर अगस्त्य के विद्या–केन्द्र में चली गई[5]।

8. मतङ्ग–

रामायण में मतङ्ग ऋषि का वर्णन है। उनका आश्रम पम्पा सरोवर के समीप ऋष्यमूक पर्वत पर था। मतङ्ग के शाप के कारण बालि इस पर्वत पर नहीं आ सकता था[6], अतः सुग्रीव ने इसको अपना निवास बनाया था।

1. अन पृ० 32 ॥ 2. काक्रभौप्र पृ० 32 ॥
3. रामायण उत्तरकाण्ड अध्याय 91–93 ॥
4. कुन्द पृ० 61 ॥ 5. उत्त 2. 3 ॥ 6. वही पृ० 205 ॥

श्रमणा नाम की शबरी इन्हीं मतङ्ग की शिष्या थी। वह उनके आश्रम के समीप ही कुटी बना कर रहती थी[1]।

ऋष्यमूक पर्वत और पम्पा सरोवर के समीप अनेक स्थान मतङ्ग ऋषि के नाम से प्रसिद्ध थे। शबरी ने राम-लक्ष्मण को अपने आश्रम के समीप सुन्दर मतङ्ग वन के दर्शन कराये थे[2]। पम्पा सरोवर के समीप ही एक अन्य जलाशय मतङ्गसर कहलाता है। ऋष्यमूक पर्वत के समीप की पहाड़ी को आज भी मतङ्ग पर्वत कहते हैं[3]। अतः मतङ्ग आश्रम की स्थिति यहां होनी चाहिए।

9. मारीच–

कालिदास ने हेमकूट नामक किम्पुरुष पर्वत पर मारीच ऋषि के आश्रम का वर्णन किया है। वे ब्रह्मा के पौत्र और मरीचि नामक प्रजापति के पुत्र थे तथा स्वयं भी प्रजापति थे। उनको सुर-असुरों का पिता कहा गया है[4]।

कालिदास का यह हेमकूट पर्वत अनेक कल्पनाओं से आच्छन्न है। इसके वर्णनों में अतिशयोक्तियां भी बहुत हैं। इसको पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत तथा कनकरसनिस्यन्दी कहा गया है। यहां अप्सराओं का निवास है और तपस्वी जन तप करते हैं। यहां रत्नों की शिलायें, मन्दार तथा अशोक के वृक्ष, स्वर्णकमल, अपराजिता आदि वनस्पतियां और सिंह, सर्प आदि जन्तु होते हैं।

हेमकूट पर्वत की स्थिति का वर्णन पर्वतों के प्रकरण में किया जा चुका है। 'वराहपुराण' के अनुसार भागीरथी, अलकनन्दा और यमुना के उद्गम क्षेत्र हेमकूट पर्वत में ही हैं। अतः मारीच का आश्रम उत्तरी गढ़वाल के ऊंचे पर्वतीय क्षेत्र में रहा होगा।

10. वसिष्ठ–

प्राचीन भारतीय साहित्य में वसिष्ठ रघुवंशी राजाओं के कुलगुरु के रूप में बहुत प्रसिद्ध हैं[5]। रघुकुल के राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा का कार्य वे ही सम्पन्न करते थे[6]। वसिष्ठ के राजगुरु होने से उनका आश्रम अयोध्या से बहुत दूर नहीं होना चाहिए। कालिदास के वर्णनों के अनुसार पुत्र की प्राप्ति के लिए

---

1. महा 5. 27॥ 2. रामायण उत्तरकाण्ड 4. 20-21 ॥ 3. ऐना पृ0 519॥
4. हेमकूटो नाम किम्पुरुषपर्वतस्तपःसंसिद्धिक्षेत्रम्। यत्र–

स्वायम्भुवान्मरीचेर्यः प्रबभूव प्रजापतिः।
सुरासुरगुरुः सोऽत्र सपत्नीकस्तपस्यति ॥ अभिज्ञा 7. 9 ॥

5. उत्त पृ0 32 ॥ 6. वही 7.13–14 ॥

राजा दिलीप वसिष्ठ के आश्रम में गये थे, जो अयोध्या से कुछ दूर हिमालय की तराई में था। दिलीप रथ पर बैठ कर चले और सारे दिन चलकर सायं समय जब उस आश्रम में पहुँचे तो रथ के अश्व थक चुके थे[1]। यहां रहते हुए वे प्रतिदिन नन्दिनी को उन वनों में चराने के लिये ले जाते थे, जो हिमालय की उपत्यकाओं में फैला हुआ था। एक दिन यह गौ गङ्गा-प्रपात के समीप चली गई तथा चरती हुई एक गुफा में प्रविष्ट हो गई[2]।

कालिदास के इस वर्णन से स्पष्ट है कि वसिष्ठ का आश्रम अयोध्या से उत्तर की ओर हिमालय की तलहटी में उस स्थान पर होना चाहिए, जहां अयोध्या से एक दिन में रथ द्वारा पहुँचा जा सके। कवि ने इस स्थल पर गङ्गा–प्रपात शब्द का प्रयोग किया है, जो आश्रम के समीप वन में था। केवल गङ्गा पद का प्रयोग न करने के कारण गङ्गा–प्रपात शब्द से किसी भी पर्वतीय झरने का बोध हो सकता है, जो किसी नदी में मिलता हो। अतः अयोध्या से उत्तर में वर्तमान नेपाल में जहां पर्वत-श्रृंखलायें प्रारम्भ होती हैं, वसिष्ठ का आश्रम रहा होगा।

समालोचकों ने वसिष्ठ आश्रम की स्थिति के सम्बन्ध में अनेक कल्पनायें की हैं। कुछ का विचार है कि अर्बुद (आबू) पर्वत पर वसिष्ठ का आश्रम था[3]। परन्तु यह स्थान अयोध्या से इतनी दूर है कि रघुवंशी राजाओं के कुलगुरुओं का स्थायी निवास सम्भव नहीं है। मधुसूदन ओझा ने (घाघरा) (सरस्वती) के तट पर वसिष्ठाश्रम की स्थिति मानी है[4]। रंगनाथ रामचन्द्र-दिवाकर गढवाल में बदरी–केदार के मध्य किसी स्थान पर वसिष्ठाश्रम को प्रतिपादित करते हैं[5]। परन्तु अयोध्या के बहुत दूर होने से इस मत को भी स्वीकार करना सम्भव नहीं है। प्रोफेसर हटवाल के अनुसार भागीरथी की सहायक भिलंगना के उद्गम स्थान पर वसिष्ठ का आश्रम था। यहां अब भी वसिष्ठ गुहा, वसिष्ठ कुण्ड आदि अवशेष विद्यमान् हैं[6]। परन्तु यह स्थान भी अयोध्या से बहुत दूर है। सम्भव है कि कभी वसिष्ठ ने इस ओर तीर्थयात्रा की हो और इस स्थान पर तपस्या की हो।

---

1. रघु प्रथम–द्वितीय सर्ग ।। 2. रघु 2.26 ।।
3. ज्योडिएमि पृ0 100, प्राऐभू पृ0 558–559 ।।
4. महर्षि कुलवैभवम् पृ0 13 ।। 5. हिमालय-दर्शन भूमिका पृ0 4 ।।
6. स्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड का भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन । पृ0 72 ।।

'महाभारत' में उल्लेख है कि अपने बारह वर्ष के अज्ञातवास में अर्जुन ने वसिष्ठ पर्वत की यात्रा की थी। वे अगस्त्यवट होकर इस स्थान पर पहुँचे थे। यह स्थान गङ्गाद्वार के समीप ही था। ऋषिकेश की 10 मील की दूरी पर हिंवल-गंगा संगम पर गंगा के दायें तट पर वसिष्ठ गुहा है। महाभारत-कार ने सम्भवतः इस स्थान का उल्लेख किया होगा। परन्तु यह स्थान भी अयोध्या से बहुत दूर है, जहां एक दिन में पहुँचना उस युग में सम्भव नहीं था।

ऊपर के सारे विवेचन से भी वसिष्ठ के आश्रम की यथार्थ स्थिति का बोध नहीं होता। तथापि कालिदास के वर्णनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उनका आश्रम अयोध्या से उत्तर में नेपाल में हिमालय की तलहटी में उस स्थान पर होगा, जहां घाघरा की कोई धारा प्रपात बनाती हो। यह बर्तमान नेपालगंज के समीप हो सकता है। अन्य स्थानों पर वसिष्ठाश्रम की जो किम्वदन्तियां हैं, उनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि वसिष्ठ ने उन स्थानों की यात्रा की होगी तथा वहां कुछ समय तक तप किया होगा।

11. विश्वामित्र–

प्राचीन भारतीय साहित्य में विश्वामित्र ऋषि की प्रसिद्धि अति कर्मठ, तेजस्वी और सामर्थ्यशाली ऋषि के रूप में है। वे वैदिक ऋषि हैं। 'ऋग्वेद' का तीसरा मण्डल उनके ही नाम से है। उनकी गणना सप्त-ऋषियों में की गई है। विश्वामित्र अपने जीवन के पहले भाग में क्षत्रिय थे तथा गाधिपुर (कान्यकुब्ज) के राजा थे। क्षत्रियत्व के प्रति विरक्त होकर कठोर तप के प्रभाव से उन्होंने ब्राह्मणत्व और ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया था[1]।

मुरारि के अनुसार विश्वामित्र का आश्रम कौशिकी नदी के तट पर था। वे महान् आचार्य और कुलपति थे। अतः इस आश्रम में स्वाध्याय करने वाले छात्रों के अध्ययन की ध्वनि दूर तक सुनाई देती थी[2]। कौशिकी नदी आधुनिक कोसी ही है, जो पूर्वी नेपाल से निकल कर बिहार में बहती हुई बंगाल में गंगा में मिल जाती है।

'रामायण' की कथा के अनुसार यज्ञ में असुरों द्वारा बार-बार विघ्न उत्पन्न करने के कारण विश्वामित्र ने सहायता के लिये राम को दशरथ से

---

1. अन 2.34 ॥ 2 वही 2.48 ॥

मांगा था। वे वामन आश्रम होकर सिद्धाश्रम पहुँचे थे। विश्वामित्र का आश्रम ही सिद्धाश्रम कहलाता था। यह आश्रम गङ्गा-सरयू के सङ्गम पर अवस्थित था[1]। यहां से राम और लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र मिथिला गये थे।

वर्तमान समय में गङ्गा–सरयू का सङ्गम छपरा के समीप है। परन्तु प्राचीन काल में यह इससे काफी पहले था। सम्भवतः यह सङ्गम रामायण काल में बक्सर के समीप रहा होगा। अतः अनेक समालोचक आधुनिक बक्सर के समीप विश्वामित्र की स्थिति प्रतिपादित करते हैं[2]। यहां गंगा के पार दक्षिण में भयानक वन था, जिसमें ताड़का, मारीच आदि राक्षस निवास करते थे। बक्सर के समीप जहां विश्वामित्र का आश्रम कहा जाता है, वहां से प्राचीन समय के यज्ञकुण्ड तथा यज्ञ-सामग्री प्राप्त हुए हैं। बक्सर में रामरेखा घाट और रामेश्वर मन्दिर प्रसिद्ध हैं। बक्सर की स्थिति मुगलसराय से पटना रेलवे मार्ग पर पटना से काफी पहले है और यह बलिया से अधिक दूर नहीं।

विश्वामित्र बहुत भ्रमणशील थे, अतः उनके आश्रम अनेक स्थानों पर हो सकते हैं। उनका एक आश्रम यदि गंगा-सरयू संगम पर था, तो दूसरा आश्रम कौशिकी (कोसी) नदी के तट पर भी हो सकता है। उनका एक आश्रम कण्वाश्रम के समीप नडपित् वन में भी रहा होगा, जहां तप करते हुये उनका मेनका से संयोग हुआ और उससे शकुन्तला उत्पन्न हुई।

12. व्यास–

वेदों के सम्पादक, 'महाभारत' के रचयिता[3] और अठारह पुराणों के संग्रहकर्ता[4] के रूप में व्यास ऋषि प्राचीन भारतीय साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हैं। भारतवर्ष में अनेक स्थानों पर व्यास आश्रम के उल्लेख मिलते हैं।

व्यास ऋषि पराशर और सत्यवती के पुत्र थे। एक केवट की पुत्री सत्यवती हस्तिनापुर के समीप यात्रियों को गंगा के पार उतारने का कार्य करती थी। अपने आश्रम की ओर जाते हुए पराशर भी सत्यवती की नाव पर बैठे और उस पर आसक्त हो गये। उनके संयोग से व्यास का जन्म हुआ

1. रामायण बालकाण्ड 23.5–7 ॥
2. ज्योडिएमि पृ0 107, ऐना पृ0 864, प्राङ्मौर्य बिहार पृ0 59 ॥
3. बाभा पृ0 6 ॥ 4. वही पृ0 10 ॥

अतः व्यास का आश्रम मूल रूप से हस्तिनापुर के निकट ही गंगा के पार रहा होगा।

व्यास ऋषि के आश्रमों की स्थिति अनेक स्थानों पर प्रसिद्ध है। यमुना के तट पर बसी हुई वर्तमान कालपी के निकट व्यास आश्रम बताया जाता। यहां एक टीले का नाम व्यास टीला है। इस क्षेत्र को व्यास क्षेत्र कहते हैं। 'महाभारत' के वनपर्व में व्यासस्थली का उल्लेख हुआ है, जहां पुत्र के शोक से सन्तप्त व्यास ने देह को त्यागने का विचार किया था[1]। प्रसंग से से यह स्थान कुरुक्षेत्र के समीप प्रतीत होता है[2]।

गढवाल में दो स्थानों का सम्बन्ध व्यास ऋषि के साथ प्रसिद्ध है। इनमें पहला तो व्यासघाट है। यह गंगा के बायें तट पर गंगा-नयार संगम पर अवस्थित है। व्यासघाट की स्थिति देवप्रयाग से दक्षिण में 9 मील पर और ऋषिकेश से उत्तर में 30 मील पर है। इस स्थान पर व्यास मन्दिर है। इस क्षेत्र को व्यासऋषि का तपःक्षेत्र माना जाता है।

दूसरा स्थान व्यासगुहा है। गढवाल के प्रसिद्ध तीर्थ बदरीनाथ से वसुधारा की ओर जाने पर दो मील दूरी माणा (मणिभद्रपुर) ग्राम है। यहां एक गुहा को व्यास-गुहा कहा जाता है। इसमें महर्षि व्यास की मूर्ति प्रतिष्ठित है। प्रसिद्ध है कि इसी स्थान पर रह कर महर्षि व्यास ने 'महाभारत' की रचना की और पुराणों का संकलन तथा सम्पादन किया। व्यास-गुहा के समीप ही गणेश-गुहा है। प्रसिद्ध है कि गणेश ने व्यास ऋषि के लिपिक का कार्य किया था और उन दिनों वे इसी गणेश-गुहा में निवास करते थे।

13. शरभङ्ग–

भवभूति ने दण्डकारण्य में शरभङ्ग मुनि के आश्रम का वर्णन किया है। राम को वे साक्षात् भगवान् का अवतार मानते थे। राम का दर्शन करके शरभङ्ग ने अपने को कृतकृत्य मान कर अपने शरीर को यज्ञ की अग्नि में आहुत कर दिया[3]।

शरभङ्ग के आश्रम का उल्लेख वाल्मीकि और कालिदास ने किया है 'रामायण' के अनुसार शरभङ्ग का आश्रम दण्डकारण्य में था[4]। कालिदास ने

1. ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता।
पुत्रशोकाभिप्तेन देहत्यागे कृता मतिः। मभा वनपर्व 83.96 ॥
2. ऐना पृ0 884 ॥ 3. महा 5.9 ॥ 4. रामायण अरण्यकाण्ड 5.3 ॥

वर्णन किया है कि पुष्पक विमान पर बैठ कर आकाश मार्ग से अयोध्या की ओर जाते हुये राम ने शरभङ्ग के आश्रम की ओर संकेत किया था[1]। तुलसीदास ने भी इस आश्रम का संकेत किया है।

शरभङ्ग आश्रम की स्थिति बांदा जिले में कही जाती है। इलाहाबाद-जबलपुर रेलवे मार्ग पर प्रसिद्ध मानिकपुर रेलवे स्टेशन है। यहां 15 मील दूर टिकरिया स्टेशन से यह आश्रम 10 मील पर है। यहां भयानक वन्य मार्ग है। दूसरा मार्ग जैतवारा स्टेशन से होकर है। जैतवारा से शरभङ्ग आश्रम 15 मील है।

वर्तमान समय में इस आश्रम में एक कुण्ड है; जिसको विराधकुण्ड कहते हैं। समीप के वन को विराध वन कहा जाता है। पास में ही राममन्दिर है। कहा जाता है कि इसी स्थान पर शरभङ्ग ने राम के दर्शन करके अपने शरीर को यज्ञ की अग्नि में आहुत किया था।

14. सुतीक्ष्ण–

शरभङ्ग ऋषि से मिलकर राम सुतीक्ष्ण के पास गये थे। उनका आश्रम भी दण्डकारण्य में था[2]। यह शरभंग के आश्रम के समीप ही रहा होगा। 'रामायण' और 'रघुवंश' में इसका प्रसंग है।

'रामायण' के अनुसार चित्रकूट से दक्षिण की ओर जाते हुये राम पहले सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम में गये थे। यहां सुतीक्ष्ण द्वारा प्रार्थना करने पर वे उनके गुरु अगस्त्य के आश्रम में गये थे[3]। सुतीक्ष्ण ने राम को बताया कि अगस्त्य का आश्रम यहां से चार योजन दूर है। कालिदास ने वर्णन किया है कि अयोध्या लौटते हुए राम ने सुतीक्ष्ण को पञ्चाग्नि तप करते हुए पुष्पक विमान से देखा था। वे धूप में चारों ओर अग्नि प्रज्ज्वलित करके तपस्या में लीन थे[4]।

सुतीक्ष्ण के आश्रम की स्थिति शरभंग-आश्रम के समीप ही होनी चाहिये। इलाहाबाद-जबलपुर रेलवे मार्ग पर जैतवारा स्टेशन से लगभग 20 मील दूर सुतीक्ष्ण आश्रम है। शरभंग आश्रम से सीधा जाने पर यह वहां से 15 मील पड़ता है। वर्तमान समय में यहां एक राम-मन्दिर है।

---

1. अदः शरण्यं शरभङ्गनाम्नस्तपोवनं पावनमाहिताग्नेः। रघु 13.45 ॥
2. महा 5.9 ॥ 3. रामायण अरण्यकाण्ड 11.27–29 ॥
4. हविर्भुजामेधवतां चतुर्णां मध्ये ललाटन्तपसप्तसप्तिः।
   असौ तपस्यत्यपरस्तपस्वी नाम्ना सुतीक्ष्णः चरितेन दान्तः ॥ रघु 13.41 ॥

परिशिष्ट--I.

आलोच्य नाटक

1. दूतवाक्यम् — बलदेव आचार्य द्वारा सम्पादित भासनाटकचक्रम् प्रथम भाग से (चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी)-प्रथम संस्करण।
2. कर्णभारम्— वही
3. दूतघटोत्कचम् — वही
4. मध्यमव्यायोगम्— वही
5. पंचरात्रम् — वही
6. उरुभंगम्— वही
7. अभिषेकनाटकम्— वही
8. बालचरितम् - वही
9. अविमारकम्— बलदेव आचार्य द्वारा सम्पादित भासनाटकचक्रम् द्वितीय भाग से (चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी)—प्रथम संस्करण।
10. प्रतिमानाटकम्— वही
11. प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्— वही
12. स्वप्नवासवदत्तम् — वही
13. चारुदत्तम् — वही
14. मृच्छकटिकम् - शूद्रक–डा० श्रीनिवास द्वारा सम्पादित, साहित्य भण्डार, मेरठ (1976 ई0)
15. अभिज्ञानशाकुन्तलम् —कालिदास–डा० कृष्णकुमार द्वारा सम्पादित, प्रकाश बुक डिपो बरेली (1965 ई०)
16. विक्रमोर्वशीयम्—कालिदास–सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित कालिदास ग्रन्थावली से। अखिल भारतीय विक्रम परिषद् काशी द्वारा प्रकाशित (2019 विक्रमी)। तृतीय संस्करण

17. मालविकाग्निमित्रम्—कालिदास-पी. डी. शास्त्री द्वारा अनूदित, आत्मा-राम एण्ड सन्स दिल्ली (1964 ई०)

18. मुद्राराक्षसम्—विशाखदत्त–आर. एस. वलिम्बे द्वारा सम्पादित

19. देवीचन्द्रगुप्तम् विशाखदत्त-राघवन् द्वारा सम्पादित 'शृंगारप्रकाश' में उद्धृत (1963 ई०)

20. कौमुदीमहोत्सव – विज्जिका – रामकृष्ण द्वारा सम्पादित, त्रिवेन्द्रम (1912 ई0)

21. पद्मप्राभृतक—शूद्रक-डा0 मोतीचन्द्र और डा0 वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित 'शृंगारहाट' से, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय प्राइवेट लिमिटेड बम्बई (1959 ई0)

22. उभयाभिसारिका–वररुचि– वही

23. धूर्तविटसंवाद—ईश्वरदत्त- वही

24. पादताडितक – श्यामिलक– वही

25. प्रियदर्शिका—हर्ष–पं0 रामचन्द्र मिश्र की टीका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी (1955 ई0)

26. रत्नावली—हर्ष–डा0 शिवराज शास्त्री द्वारा सम्पादित, साहित्य भण्डार मेरठ (1968 ई0)

27. नागानन्द – हर्ष– पं0 बलदेव की टीका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी (1968 ई0)

28. वेणीसंहार—भट्टनारायण-डा0 शिवराज शास्त्री द्वारा सम्पादित, साहित्य भण्डार मेरठ (1972ई0)

29. मत्तविलास—महेन्द्रविक्रमवर्मा–श्री कपिलदेवगिरि की टीका, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी (1966 ई0)

30. महावीरचरितम्—भवभूति-वीरराघव की टीका, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई (1926 ई0)

31. मालतीमाधवम्—भवभूति – चन्द्रकला हिन्दी-संस्कृत टीका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी (1954 ई0)

32. उत्तररामचरितम्—भवभूति-ब्रह्मानन्द शुक्ल की टीका, साहित्य भण्डार मेरठ (1975 ई0)

33. आश्चर्यचूडामणि—शक्तिभद्र–पं0 रमाकान्त झा की टीका, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी (1966 ई0)

34. वीणावासवदत्तम्—शक्तिभद्र-जर्नल आफ ओरियन्टल रिसर्च मद्रास में प्रकाशित (1931 ई0)
35. रामाभ्युदय—यशोवर्मन्-वी. राघवन् कृत 'सम ओल्ड लॉस्ट प्लेज' में उद्धृत, अन्नामलाई विश्वविद्यालय प्रकाशन (1961 ई0)
36. अनर्घराघव—मुरारि-काव्यमाला सीरीज संख्या 5 (1937 ई0)
37, तापसवत्सराज—अनङ्गहर्ष-डा0 देवीदत्त शर्मा द्वारा सम्पादित, साहित्य भण्डार मेरठ (1969 ई0)
38. सुभद्राधनञ्जय—कुलशेखरवर्मन् - गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित, त्रिवेन्द्रम (1912 ई0)
39. तपतीसंवरण –कुलशेखरवर्मन्- वही (1911 ई0)
40. हनूमन्नाटक--दामोदर मिश्र–श्रीमोहनदास की टीका–क्षेमराज श्रीकृष्णदास वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस बम्बई (1966 ई0)
41. चण्डकौशिक—क्षेमीश्वर-श्री जगदीश मिश्र की टीका, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी (1965 ई0)
42. बालरामायण—राजशेखर – जीवानन्द विद्यासागर द्वारा सम्पादित (1910 ई0)
43. बालभारत – राजशेखर-श्री हरिदत्त शर्मा की टीका, चौखम्बा संस्कृत सीरीज वाराणसी (1969 ई0)
44. कर्पूरमञ्जरी— राजशेखर–श्री चुन्नीलाल शुक्ल द्वारा सम्पादित, साहित्य भण्डार (मेरठ 1972 ई0)
45. विद्धसालभञ्जिका—राजशेखर–श्री रमाकान्त त्रिपाठी की टीका, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी (1965 ई0)
46. कुन्दमाला—दिङ्नाग–श्री चुन्नीलाल शुक्ल द्वारा सम्पादित, साहित्य भण्डार मेरठ (1972 ई0)

परिशिष्ट--2

सन्दर्भ–पुस्तकें

वैदिक साहित्य–

ऋग्वेद
यजुर्वेद
तैत्तिरीय संहिता
वाजसनेयि संहिता
सामवेद
अथर्ववेद
ऐतरेय ब्राह्मण
गोपथ ब्राह्मण
शतपथ ब्राह्मण
तैत्तिरीय आरण्यक
कौशीतकि उपनिषत्

शास्त्रीय ग्रन्थ–

अमरकोष–अमरसिंह
अष्टाध्यायी-पाणिनि
कामसूत्र–वात्सायन-जयमङ्गलाटीकासहित
काव्यमीमांसा-राजशेखर-सी. डी. दलाल द्वारा सम्पादित, बड़ौदा (1924 ई.)
क्लासिकल डिक्शनरी
त्रिकाण्डशेष
नाट्यशास्त्र-भरत
बृहत्संहिता
मनुस्मृति

महाभाष्य–पतञ्जलि

वराहसंहिता–वराहमिहिर

शक्तिसङ्गमतन्त्र

शृङ्गारप्रकाश-भोज

संस्कृत–इंग्लिश डिक्शनरी–आप्टे

सिद्धान्तशिरोमणि

सुमङ्गलविलासिनी

बौद्ध और जैन ग्रन्थ–

अंगुत्तरनिकाय

दिग्घनिकाय

दिव्यावदान

महावंशपुराण

महावस्तु

संयुत्तनिकाय

पुराण–

अग्निपुराण

कूर्मपुराण

गरुडपुराण

देवीभागवतपुराण

पद्मपुराण

ब्रह्मपुराण

ब्रह्माण्डपुराण

भविष्यपुराण

भागवतपुराण

मत्स्यपुराण

मार्कण्डेयपुराण

वराहपुराण

वामनपुराण

विष्णुपुराण

विष्णुधर्मोत्तरपुराण

शिवपुराण
स्कन्दपुराण

काव्य–

कथासरित्सागर–सोमदेव
कादम्बरी–बाण
कालिदास ग्रन्थावली - पं0 सीताराम चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित
कुमारसम्भव - कालिदास
नैषधीयचरितम्–श्रीहर्ष
प्रसन्नराघव
बुद्धचरितम् - अश्वघोष
बृहत्कथाश्लोकसंग्रह
मंङ्गलस्तोत्र
महर्षिकुलवैभवम्–मधुसूदन ओझा
महाभारत–व्यास
मेघदूत - कालिदास
रघुवंश–कालिदास
राजतरङ्गिणी–कल्हण
रामचरितमानस–तुलसीदास
रामायण - बाल्मीकि
विक्रमाङ्कदेवचरितम् - बिल्हण
शिशुपालवध–माघ
शृङ्गारहाट–डा. मोतीचन्द्र और डा. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा सम्पादित
हर्षचरितम्–बाण

आधुनिक समालोचनात्मक ग्रन्थ–

अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया-स्मिथ-आक्सफोर्ड-प्रथम संस्करण
अशोक के शिलालेख
ऑन ह्वेनसांग्स ट्रेवल्स इन इण्डिया (629--644 ई0)--वाटर्स-थोमास, रायल एशियाटिक सोसाइटी (1904 और 1905)
आयने अकबरी
आर्कोओलोजिकल सर्वे आफ इन्डिया रिपोर्ट (1911–1912 ई0)
इन्डिया इन कालिदास–बी. एस. उपाध्याय–इलाहाबाद (1954 ई0)

इम्पीरियल गजेटियर आफ इन्डिया

एन्शिएन्ट इन्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन्स—पर्जीटर

एन्शिएन्ट इन्डिया एज डिस्क्राइब्ड बाई मेगास्थनीज एण्ड एरियन
जे. डब्लू. मेक्रन्डिल, लन्दन (1926 ई0)

एपिक इन्डिया—सी. बी. वैद्य–बम्बई (1923 ई0)

एपिग्राफिका इन्डिका

ऐतिहासिक नामावली—विजयेन्द्रकुमार माथुर– वैज्ञानिक तथा तकनीकी
शब्दावली आयोग, रामकृष्णपुरम् नई दिल्ली
(1969 ई0)

कल्चुरल हिस्ट्री फ्रॉम वायुपुराण—देवेन्द्रकुमार राजाराम पाटिल, पूना
(1946 ई0)

कार्पस इन्स्क्रिप्शनम इन्डिकेरम

कालिदास का भारत—भगवतशरण उपाध्याय–भारतीय ज्ञानपीठ काशी
(1965 ई0)

कालिदास की कृतियों में भौगोलिक स्थानों का प्रत्यभिज्ञान—
कैलाशनाथ द्विवेदी, साहित्य निकेतन
कानपुर (1970 ई0)

किन्नर देश में—राहुल सांकृत्यायन–प्रयाग (1962 ई0)

कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया भाग–1 (1922 ई0)

गिरिनार का शिलालेख

ग्रामर ऑफ दी द्रविडियन लैंग्वेजेज—काफवेल

ज्योग्राफी ऑफ अर्ली बुद्धिज्म—बी. सी. ला

ज्योग्राफिकल कान्सेप्ट्स इन एन्शिएन्ट इन्डिया—बेचन दुबे- राष्ट्रीय भूगोल
परिषद् वाराणसी (1967)

ज्योग्राफी ऑफ दी पुराणाज—एस. एम. अली; नई दिल्ली (1966 ई0)

डेवलपमेन्ट ऑफ ज्योग्राफिकल नॉलेज इन एन्शिएन्ट इन्डिया
—मायाप्रसाद त्रिपाठी (1970 ई0)

दी एज ऑफ इम्पीरियल गुप्ताज—आर. डी. बनर्जी (1933 ई0)

दी एन्शिएन्ट ज्योग्राफी ऑफ इन्डिया—अलेक्जेन्डर कनिंघम (1963 ई0)

दी एशियाटिक रिसर्चेज खण्ड-12, दि रिसर्चेज टु मानसरोवर

दी ज्योग्राफिकल डिक्सनरी ऑफ एन्शिएन्ट एण्ड मिडीवल इन्डिया—
नन्दलाल डे–कलकत्ता (1924 ई0)

दी डायनेस्टीज ऑफ दी कैनरिज डिस्ट्रिक्ट्स
पतञ्जलि-कालीन भारतवर्ष—प्रभुदयाल अग्निहोत्री–विहार राजभाषा परिषद् पटना (1963 ई0)
पाणिनि-कालीन भारतवर्ष—वासुदेवशरण अग्रवाल (सम्वत् 2012)
पुराण-विमर्श—बलदेव उपाध्याय–वाराणसी (1965 ई0)
पोलीटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शिएन्ट इन्डिया—एच. सी. चौधरी (1953 ई0)
प्राङ्मौर्य विहार— डा0 देवसहाय त्रिवेदी–पटना (1954 ई0)
प्राचीन भारत—डा0 राधाकुमुद मुकर्जी
प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल—विमलचरण लाहा–उत्तर-प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी लखनऊ (1972 ई0)
प्राचीन भारत का भौगोलिक स्वरूप—अवधविहारीलाल अवस्थी (1964ई0)
प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास—रांगेय राघव–दिल्ली प्रथम संस्करण
प्राचीन भारतीय साहित्य की साँस्कृतिक भूमिका—डा0 रामजी उपाध्याय
बुद्धिस्ट इण्डिया – रीज डेविड्ज (1950 ई0)
बोम्बे गजेटियर
भरहुत इन्स्क्रिप्शन्स—वरुआ और सिन्हा
भारत की जन-जातियां और संस्थायें—सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, देहरादून (1960 ई0)
भारत की भौगोलिक एकता—वासुदेवशरण अग्रवाल–प्रयाग (प्रथम संस्करण)
भारत-भूमि—चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार
भारत-भ्रमण—साधुचरण प्रसाद–बम्बई (1969 ई0)
भारतीय इतिहास की रूपरेखा—जयचन्द्र विद्यालङ्कार
मार्कण्डेयपुराण—पर्जीटर
मालिनी के वनों में—निधि विद्यालङ्कार–दिल्ली (1960 ई0)
रुद्रदामन् का शिलालेख
वैदिक इन्डेक्स—नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स–मैकडानल और कीथ (1912 ई0)
सैक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट-मैक्समूलर
स्कन्दपुराण के अन्तर्गत केदारखण्ड का भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन—गो0 प्र0 हटवाल, आगरा विश्वविद्यालय द्वारा प्रदत्त पी-एच.डी. (1962 ई0) का शोध-प्रबन्ध

स्टडीज इन इन्डियन एन्टीक्विटीज – एच. सी. राय चौधरी
स्टडीज इन दी ज्योग्राफी ऑफ एन्शिएन्ट एण्ड मिडीवल इन्डिया—
डी.सी. सरकार–दिल्ली (1960 ई0)
हिन्दू सभ्यता – राधाकुमुद मुकर्जी–कलकत्ता, प्रथम संस्करण
हिमालय दर्शन—कृष्णनारायण गोस्वामी–दिल्ली (1963 ई0)
हिस्टोरिकल ज्योग्राफी आफ एन्शिएन्ट इन्डिया— बी. सी. ला.

पत्रिकायें–

इन्डियन एन्टिक्विटीज वो0 II
इन्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली भाग–11
एनल्स आफ भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना भाग–2
एन्शिएन्ट रिसर्चेज वो0 12
कल्याण तीर्थाङ्क—गीता प्रेस, गोरखपुर वर्ष 31
कादम्बिनी (अक्टूबर 1962)
जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल (1925 ई0)
जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी (1894 तथा 1974 ई0)
जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी बोम्बे ब्रांच भाग–14
भारती–ए बुलेटिन आफ कॉलेज आफ इण्डोलॉजी,
का. हि. वि. वि.—वासुदेवशरण अग्रवाल वोल्यूम (1969–71)
भूगोल-पत्रिका प्रयाग—भुवनकोषांक (मई–जून–जुलाई 1931 ई0)

मुद्रित : गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी मुद्रणालय, हरिद्वार ।